वेद सुरभि

भारतीय संस्कृति के मार्गदर्शक सर्वश्रेष्ठ मन्त्र

सभी सज्जनों एवं विद्यार्थियों द्वारा अवश्य पठनीय

विधुशेखर त्रिवेदी I.A.S (अ. प्रा)

भारतीय संस्कृति के मार्गदर्शक सर्वश्रेष्ठ मन्त्र

वैदिक ज्ञान के प्रचार प्रसार हेतु
श्रीमती चम्पा देवी वैदिक संस्थान एवं
पं. उमादत्त त्रिवेदी वेद विद्यापीठ, 6B वृन्दावन, लखनऊ
द्वारा प्रकाशित

मुद्रक- विनायक ऑफसेट, लखनऊ

2019 प्रथम संस्करण 1000 प्रतियाँ

विधुशेखर त्रिवेदी
I.A.S (अ. प्रा)

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य- 160.00

ओ३म्

पूज्य पिता

स्व. पं. उमादत्त जी त्रिवेदी

एवं

स्नेहमयी पूज्या माँ

स्व. श्रीमती चम्पादेवी त्रिवेदी

की

पावन स्मृति

में

सादर समर्पित

विधुशेखर त्रिवेदी

निवेदन

शतंहस्त समाहंर सहंस्त्रहस्त सं किंर ।
कृ तस्यं कार्यस्यि चेह स्फातिं समावंह ।।

अथर्व.३।२४।५

सौ हाथों वाले बनकर सम्यक् रीति से धन का संग्रह करो तथा हज़ार हाथों वाले बनकर उसे सम्यक् रूप से फैला दो, दान करो । यहाँ, इस जीवन में अपने किये हुये कर्मों एवं अपने कर्तव्यों के क्षेत्र का अच्छी प्रकार से विस्तार करो।

वैदिक जीवन दर्शन में दान का अत्यन्त महत्व है तथा सभी प्रकार के दानों में वैदिक ज्ञान का दान सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्।। मनु.४।२३३

जल, अन्न, गौ, भूमि, तिल, सोना, घी आदि समस्त वस्तुओं के दानों से ब्रह्मदान अर्थात् वैदिक ज्ञान का दान श्रेष्ठ है।

श्री विधुशेखर त्रिवेदी, जो कि एक अवकाश प्राप्त I.A.S. अधिकारी हैं, ने वैदिक ज्ञान के प्रचार प्रसार हेतु अपना सर्वस्व दान करके पं. उमादत्त त्रिवेदी वेद विद्यापीठ की स्थापना की है जिसमें विद्यार्थियों के लिये निःशुल्क भोजन, आवास एवं शिक्षा की व्यवस्था की है। विद्यापीठ के सफल संचालन के लिये धन की अत्यन्त आवश्यकता है।

अस्तु सभी सज्जनों से विनम्र अनुरोध है कि पं. उमादत्त त्रिवेदी वेद विद्यापीठ के लिये यथा शक्ति दान देने की अनुकम्पा करें जिससे वैदिक ज्ञान के प्रचार प्रसार का पवित्र यज्ञ भली प्रकार सम्पन्न हो सके।

श्री मती प्रेमा त्रिवेदी
उपाध्यक्ष
पं. उमादत्त त्रिवेदी वेद विद्यापीठ
6B,वृन्दावन, रायबरेली रोड, लखनऊ

मकर संक्रान्ति
दिनाङ्क 15.01.2019

माता गुरुतरा भूमेः पिता उच्चतरश्च
खात्।
माता भूमि से भी महान होती है तथा पिता आकाश से भी
ऊँचा होता है।

स्व. पं. उमादत्त जी त्रिवेदी
एवं
स्व. श्रीमती चम्पादेवी त्रिवेदी

श्री विधु शेखर त्रिवेदी

एवं

श्रीमती प्रेमा त्रिवेदी

विषय सूची पृ.सं.

प्राक्कथन	1-26
दैनिक प्रार्थना एवं स्तुति	1-21
ब्रह्म	21-36
ओ३म्	36-41
गायत्री से सुख एवं ब्रह्मप्राप्ति	42-45
स्कम्भ	45-47
उच्छिष्ट ब्रह्म	47-49
विराट	50-52
प्रार्थना मन्त्र	52-65
ब्रह्मप्राप्ति	66-69
उपासना	70-77
परमात्मा का वर्णन	77-81
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु	81-84
स्वस्तिवाचन	84-91,380
शान्तिपाठ	91-99
सविता	99-103
इन्द्र	104-112 तथा 114-121
महानाम्नी ऋचायें	112-113
विष्णु	121-127
सरस्वती	127-129
सूर्य	129-137
सूर्य,विद्युत,अग्नि	137
सूर्य तथा चन्द्रमा	137-138
अग्नि	138-145
उषा	145-148
जीवात्मा	148-151
भगवान् पिता हैं, मित्र हैं	152-154
शिव तथा रुद्र	154-164

विषय सूची	पृ.सं.
दीर्घ जीवन	164-168
उन्नति का मार्ग	168-174
कर्म तथा तप	175
मनुष्य शरीर में देवता	175-178
शरीर के सप्तर्षि तथा ब्रह्म की स्थिति	179-185
भगवान् की शक्ति (देवी के रूप में वर्णन)	186-189
देवता	189-192
देवों की सुमति	193-195
सब के कल्याण की प्रार्थना	195
दान देने वाले के लिये प्रार्थना	195
ब्रह्मचर्य	196-200
प्राण	200-205
पृथिवी	205-212
जल	212-215
नदियाँ	215-220
वायु	220-222
पर्जन्य	223-224
वृष्टि	224
विवाह	224-234
पत्नी	234
वरुण	234-239
मित्र वरुण	240-241
व्यापक आनन्द की अनुभूति	241
यज्ञ	241-247
आत्मिक यज्ञ	248-249
यज्ञ से उन्नति तथा कामनाओं की पूर्ति	250-252
यज्ञ से स्वर्ग प्राप्ति	252
राष्ट्र के प्रति ब्राह्मणों का कर्तव्य	253-254

विषय	पृ.सं.
वेदवाणी	254-260
सूर्योदय से पूर्व उठने का लाभ	260
दक्षिणा	260-262
दान	262-265
भूखे को न खिलाकर स्वयं खाना पाप है	265-267
सत्य	267-270
ऋत	270-271
श्रद्धा	271-272
दुःस्वप्न का नाश	272
सप्त मर्यादायें	272
दुष्टों का नाश	273-279
सदाचार	279
सब को प्रणाम	279-280
विश्वेदेवाः	280-281
वाणी	281-283
पवित्रता	283-285
अग्निहोत्र	285-286
नास्तिकों के लिये भगवान् का कथन	287
एकत्र होकर साथ साथ स्तुति करना	287
आततायी का वध	288-289
पुरुषसूक्त	289-301
राष्ट्रीय जीवन	301-303
परिवार	303-305
सब के उपकार के लिये श्रेष्ठ कर्म करना	305-306
काम	306-310
इड़ा, सरस्वती, मही	310-312
यश	313-314
संसार का वर्णन	314-316

विषय सूची	पृ.सं.
सामाजिक समरसता	317
प्रेयसी की कामना	317-319
ऋण रहित होना	319-320
केन सूक्त	320-322
सूर्य की किरणों से रोगनाश तथा पवित्रता	322-323
गौ	323-327
दुःस्वप्न को हटाना	328
आकूति (संकल्प शक्ति)	328-330
अपवित्र लक्ष्मी को दूर हटाना	330
वैदिक जीवन	330-336
निष्पाप जीवन	336-341
पर्यावरण एवं सामाजिक व्यवस्था	341-343
ब्राह्मण की रक्षा	344-345
अतिथि	345-348
सोम	348-351
अभय	351-352
मेधा	352-355
विधवा स्त्री	355
मधुमय जीवन	355-357
सामधेनी ऋचायें	357-363
युगों तथा कल्प के वर्ष	363-365
मास, दिन तथा रात्रि	365-366
जुये की निन्दा	366
ईशावास्योपनिषद्	366-376
नासदीय सूक्त	376-379
जागृत तथा निष्पाप रहना	379-381
धन एवं कामना पूर्ण होने की प्रार्थना	381
श्रेष्ठ कर्म करने के लिये वीरता	381

विषय सूची	पृ.सं.
महत्वपूर्ण निर्वचन तथा शब्दों के अर्थ	382-384
अदिति	385-386
शिर में ज्ञान तथा यश	386-387

प्राक्कथन

चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेद इति।

गोपथ.ब्रा.पूर्व. २।१६

वेद चार हैं, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा ब्रह्मवेद। अथर्व वेद को ही यहाँ ब्रह्मवेद कहा गया है क्योंकि इसमें विशेष रुप से ब्रह्म का वर्णन किया गया है।

वेद शब्द 'विद् ज्ञाने' धातु से बना है। अतः वेद का अर्थ है ज्ञान। वास्तव में वेद वह ईश्वरीय ज्ञान है जो परमात्मा ने कृपा करके प्राणिमात्र के कल्याण के लिये हमें दिया है। एक अन्य विद् धातु सत्तार्थक है तथा एक तीसरी विद् धातु का अर्थ विचार है। इसके अतिरिक्त विद्लृ धातु भी है, जिसका अर्थ लाभ होता है। इन चारों धातुओं से करण तथा अधिकरण कारक में घञ् प्रत्यय करने से वेद शब्द सिद्ध होता है।

अतः जिसके श्रवण एवं अध्ययन से सत्य ज्ञान प्राप्त होता है, जिससे समस्त सुखों का लाभ होता है, जिससे मनुष्यों में श्रेष्ठ विचार उत्पन्न होते हैं तथा जो दिव्य ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण नित्य है, उसे वेद कहते हैं।

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता।।

जो प्रत्यक्ष अथवा अनुमान से नहीं जाना जा सकता, उसे वेद के द्वारा जाना जाता है, यही वेद की वेदता है।

जिस प्रकार भगवान् ने प्राणियों के जीवन के लिये वायु, जल, अग्नि तथा अन्न आदि की व्यवस्था की है, उसी प्रकार उसने अपनी सृष्टि के सर्वोत्तम प्राणी अर्थात् मनुष्य के लिये ज्ञान का प्रकाश किया है ताकि वह संसार के रहस्यों को यथार्थ रुप में जानकर अपना जीवन सफल बना सके।

वेदों में जहाँ एक ओर जीवन से सम्बन्धित अत्यन्त सामान्य एवं सरल तथ्यों का उल्लेख किया गया है, वहीं दूसरी ओर प्रकृति, जीव एवं

परमात्मा के गूढ़तम रहस्यों को भी प्रकाशित किया गया है। सम्पूर्ण ज्ञान होने के कारण उसमें छोटी से छोटी बातों को लेकर कठिन से कठिन एवं गूढ़ से गूढ़ विषयों का समावेश किया गया है, जिन्हें नियमानुसार अध्ययन करके तथा योग से प्राप्त होने वाली सूक्ष्म बुद्धि से जाना जा सकता है।

वेद का प्रमुख विषय ब्रह्म उसी प्रकार है जिस प्रकार मनुष्य जीवन का प्रमुख लक्ष्य मोक्ष है, किन्तु जिस प्रकार जीवन में मोक्ष से पूर्व धर्म, अर्थ एवं काम से सम्बन्धित कार्यों का समावेश होता है, उसी प्रकार वेदों में ब्रह्मज्ञान से पूर्व सब प्रकार के प्रकृति विज्ञान तथा अन्य समस्त विद्याओं, जिन्हें अपरा विद्या अथवा अविद्या कहा जाता है, का भी समावेश है क्योंकि वेदों को मनुष्य का सर्वाङ्गीण अभ्युदय अभीष्ट है, एकाङ्गी नहीं।

चारों वेदों में कुल २०,४१६ मन्त्र हैं।

ऋग्वेद	१०,५ ८९
यजुर्वेद	१९,७५
सामवेद	१८,७५
अथर्ववेद	५९,७७
	२०,४१६

ऋग्वेद दस मण्डलों में विभक्त है, यजुर्वेद में चालीस अध्याय हैं, सामवेद के दो भाग पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक हैं और अथर्व वेद बीस काण्डों में विभक्त है।

ज्ञान, कर्म, उपासना के अनुसार विचार करने पर ऋग्वेद का सम्बन्ध ज्ञान से, यजुर्वेद का कर्म अर्थात् यज्ञ आदि से, सामवेद का सम्बन्ध उपासना से तथा अथर्व वेद का ब्रह्मविद्या एवं जीवन के सभी पक्षों जैसे रोगों का उपचार तथा विभिन्न समस्याओं के निदान आदि से है।

किन्तु यह उल्लेखनीय है कि वेदों में कोई कठोर वर्गीकरण नहीं है और सब प्रकार के मन्त्र सभी वेदों में उपलब्ध हैं तथा अनेक विषयों के

महत्वपूर्ण मन्त्र यत्र तत्र बिखरे हुये हैं, जिन्हें ध्यान पूर्वक अध्ययन करके ही प्राप्त किया जा सकता है।

ऋक् शब्द से पादबद्ध मन्त्रों का, साम से गीति युक्त अर्थात् गाये जाने वाले मन्त्रों का तथा यजुः शब्द से गद्य रुप मन्त्रों का बोध होता है। ये तीन प्रकार के मन्त्र चारों वेदों में होने के कारण वेदों को त्रयी विद्या कहा जाता है।

गीतिषु सामाख्या। (जैमिनि. सू. २।१।३६)

निरुक्त १।७में कहा है ऋग् अर्चनी अर्थात् पदार्थों के गुणों को बताने वाली। ऋक् तथा ऋचा शब्द, 'ऋच् स्तुतौ' धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर सिद्ध होते हैं। ऋग्भिः शसन्ति। ऋचाओं से पदार्थों के गुणों का वर्णन करते हैं।

महर्षि जैमिनि ने लिखा है कि जिन मन्त्रों में अर्थ के उद्देश्य से पाद व्यवस्था की जाती है, उन्हें ऋचा कहा जाता है।

तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था।

मीमांसा. २।१।३५

तैत्तिरीय आरण्यक ३।१२।९।१-२ में कहा है-

ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्तमाहुः सर्वा गतिः याजुषी चैव सिद्धाः।
सर्वं तेजः सामरूप्यं ह शश्वत् सर्वं हेदं ब्रह्मणा हैव सृष्टम्।।

समस्त मूर्त पदार्थ ऋग्वेद से प्रसिद्ध होते हैं अर्थात् समस्त मूर्त पदार्थों का ज्ञान ऋग्वेद से होता है तथा सारी गतियाँ अर्थात् सारे कर्म यजुर्वेद से अथवा यजुः संज्ञक मन्त्रों से सिद्ध होते हैं।

यजुष् शब्द यज् धातु, जिसका अर्थ देवपूजा, संगतिकरण तथा दान होता है, से 'उसि' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। यजुर्वेद यज्ञ विद्या का प्रकाशक है। 'यजुभिः यजन्ति' यजुः मन्त्रों से पूजा अथवा यज्ञ करते हैं।

सामन् शब्द के तीन अर्थ हैं-

१. (सम्+आ) यह ऋचा के साथ समान परिमाण वाला है। छान्दोग्य

उपनिषद् में कहा गया है या ऋक् तत् साम जो ऋचा है वही साम है।

२. 'षो' अन्तकर्मणि धातु से 'मनिन्' प्रत्यय करने पर साम शब्द सिद्ध होता है। ज्ञान, कर्म, उपासना तीनों में उपासना अन्तिम है तथा साम उपासना से सम्बन्धित है। 'सामभिः स्तुवन्ति' साम से स्तुति अथवा उपासना करते हैं। तात्पर्य यह है कि सामवेद प्रमुख रुप से उपासना से सम्बन्धित है।

नैदान आचार्यों द्वारा साम की व्याख्या निम्न प्रकार की गयी है-

३. (सम+मन्) देवजनों ने इसे ऋचा के समान माना है। अतः इसका नाम साम है।

साम= (सा+अम)

१. 'सा' द्युलोक है तथा 'अम' पृथिवी लोक है, दोनों का समन्वय (सा+अम) साम है।

२. 'सा' ऋक् है तथा 'अमः' सामगान है, दोनों का समन्वय (सा+अम) साम अर्थात् उपासना है।

३. 'सा' सर्व शक्तिमान् परमेश्वर है, 'अमः' जीव है, दोनों का जिसमें सम्मिलन हो, वह (सा+अम) साम है।

मन्त्रों के अर्थ आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक, तीन प्रकार से किये जाते हैं। परमात्मा तथा शरीर में स्थित आत्मा से संबन्धित अर्थ आध्यात्मिक होता है, इन्द्र, अग्नि आदि देवताओं से संबन्धित (जैसे, इन्द्र वृत्रासुर संग्राम) आधिदैविक तथा भौतिक संसार से संबन्धित अर्थ आधिभौतिक कहलाते हैं।

सामवेद के सभी मन्त्र ऋग्वेद के ही हैं, लगभग ९० मन्त्र ही ऐसे हैं, जो ऋग्वेद की आश्वलायन शाखा में नहीं हैं किन्तु ये सभी मन्त्र भी शांखायन शाखा में मिलते हैं। इसीलिये कहा गया है 'या ऋक् तत्साम' (छान्दोग्य.उप. १।३।४) जो ऋग् है, वही साम है।

ऋचि अध्यूढं साम। (छान्दोग्य.उप. १।६।१)

साम ऋचा पर आधारित होते हैं।

वाणी और प्राण का जो सम्बन्ध है, वही ऋचा और साम का है।

वाक् च प्राणश्च, ऋक् च साम च। (छान्दोग्य.उप. १।७।१)

वाणी और प्राण क्रमशः ऋक् और साम हैं।

ऋग्वेद में कहा गया है, ज्ञानी इन्द्र के लिये बृहत् साम का गान करो।

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्। (ऋग्. ८।८९।१)

स्पष्ट है कि साम गान से परमात्मा की स्तुति, उपासना तथा प्रार्थना की जाती है। इसीलिये साम को प्राण कहा गया है।

गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' वेदों में मैं सामवेद हूँ।

वेद संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्, वैदिक वाङ्मय के ये चार विभाग हैं। संहिता में अपौरुषेय वेद मन्त्र, ब्राह्मण में ऋषियों द्वारा बताये गये मन्त्रों के अर्थ और विभिन्न यज्ञों में उनका विनियोग तथा आरण्यक एवं उपनिषदों में वेदों में उल्लिखित आध्यात्मिक ज्ञान का विस्तृत स्पष्टीकरण है, जिससे विद्वान् लोग वैदिक ज्ञान को यथा शक्ति समझ सकें।

यह महत्वपूर्ण है कि कुछ विद्वानों के मतानुसार संहिता तथा ब्राह्मण सम्मिलित रूप से वेद कहलाते हैं।

मन्त्रब्राह्मणं वेद इत्याचक्षते। (बौधा.गृ.सू. २।६।२)

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्। (बौ.गृ.सू. ३।२।६३, आप.परि. १।१।३१)

किन्तु वास्तव में यह कथन केवल कृष्ण यजुर्वेद के लिये ही सही है। शुक्ल यजुर्वेद में ब्राह्मण भाग नहीं है। ब्राह्मण ग्रन्थों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि यह मन्त्रों के अर्थों का स्पष्टीकरण और विनियोग आदि का ही वर्णन करते हैं।

इस विषय में स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है कि 'एक कात्यायन ऋषि को छोड़कर किसी अन्य ऋषि ने ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद के रूप में स्वीकार नहीं किया है'। उन्होंने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में इसका विस्तृत उल्लेख किया है, जो सही प्रतीत होता है।

वेदों के अध्ययन से पूर्व निम्नाङ्कित महत्वपूर्ण मान्यताओं, तथ्यों

तथा सिद्धान्तों को जानना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

१. वेद अपौरुषेय हैं। वेद, भगवान् की वाणी हैं। इनकी उत्पत्ति परमात्मा से हुयी है, किसी व्यक्ति से नहीं। वैदिक ज्ञान परब्रह्म द्वारा प्रदत्त ज्ञान है। यह तथ्य स्वयं वेद में ही कहा गया है-

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥

ऋग्. १०।९०।९, यजु. ३१।७
कृष्ण यजु. ३५।१०, अथर्व. १९।६।१३

(तस्मात् यज्ञात् सर्वहुत) सभी आहुतियाँ जिसके लिये दी जाती हैं, उस सर्वपूज्य, सर्वोपास्य, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ परब्रह्म से (ऋचः सामानि जज्ञिरे) ऋग्वेद तथा सामवेद उत्पन्न हुये, (छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात्) अथर्ववेद उससे उत्पन्न हुआ (यजुः तस्मात् अजायत) तथा उसी से यजुर्वेद उत्पन्न हुआ।

सर्वहुतः- सर्व हूयमान= सर्वपूज्य, सर्वोपास्य

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं,
स्कम्भम् तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥

अथर्व. १०।७।२०

(यस्मात् ऋचः अपातक्षन्) जिससे ऋचायें उत्पन्न हुयी हैं, (यजुः यस्मात् अपाकषन्) जिससे यजु मन्त्र प्रकट हुये हैं, (सामानि यस्य लोमानि) साम मन्त्र जिसके लोमों के सदृश हैं (अथर्वाङ्गिरसः मुखं) तथा अथर्व वेद जिसके मुख के समान है, (तं स्कम्भम् ब्रूहि) उस सर्वाधार के विषय में बताओ (कतमः स्वित् एव सः) कि वह कौन सा है? अथवा, (ब्रूहि कतमः स्वित् एव सः) कहो, वह कौन है ? उत्तर- (तं स्कम्भं) उसे सर्वाधार कहते हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण ५।५।६-७ में भी यह प्रकरण आया है।

प्रजापतिरकामयत प्रजायेय भूयान् स्यामिति, स तपोऽतप्यत, स तपस्तप्त्वेमाँल्लोकानसृजत पृथिवीमन्तरिक्षं दिवं, ताँल्लोकान्भयतपत्, तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतींष्यजायन्ताग्निरेव पृथिव्या अजायत, वायुरन्तरिक्षादादित्यो दिवस्तानि ज्योतींष्यभ्यतपत्, तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त, ऋग्वेद एवाग्नेरजायत, यजुर्वेदो वायोः, सामवेद आदित्यात्, तान् वेदानभ्यतपत् तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त, भूरित्येव ऋग्वेदादजायत, भुव इति यजुर्वेदात्, स्वरिति सामवेदात्।

ऐतरेय पंचम पंचिका २५।७

प्रजापति ने कामना की कि मैं प्रजोत्पादन के द्वारा बहुत हो जाऊँ। उन्होंने तप किया, उन्होंने तप करके इन लोकों को उत्पन्न किया, पृथ्वी को, अन्तरिक्ष को, द्युलोक को। पुनः उन तीनों लोकों को अभितप्त किया, भली प्रकार तपाया। उन अभितप्त लोकों से अग्नि, वायु और आदित्य रूपी तीन ज्योतियाँ उत्पन्न हुयीं। पृथ्वी से अग्नि, अन्तरिक्ष से वायु तथा द्युलोक से सूर्य। उन तीनों ज्योतियों को पुनः अभितप्त किया, उन अभितप्त ज्योतियों से तीन वेद उत्पन्न हुये। अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद तथा आदित्य से सामवेद। उन तीनों वेदों को पुनः अभितप्त किया, उन अभितप्त वेदों से तीन व्याहृतियाँ (शुक्राणि) उत्पन्न हुयीं। ऋग्वेद से भूः, यजुर्वेद से भुवः तथा सामवेद से स्वः नामक व्याहृति उत्पन्न हुयी।

इसीलिये इन वेदों का सम्बन्ध निम्न प्रकार माना जाता है-

वेद	ऋग्वेद	यजुर्वेद	सामवेद
महाव्याहृतियाँ	भूः	भुवः	स्वः
लोक	पृथिवी	अन्तरिक्ष	द्युलोक
विषय	ज्ञान	कर्म	उपासना

स्वामी दयानन्द जी के अनुसार सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अङ्गिरा, इन ऋषियों के हृदय में ज्ञान का प्रकाश किया, जिसके पश्चात् अन्य ऋषियों आदि को वेद का ज्ञान प्राप्त हुआ।

२. एक ही मन्त्र के अनेक भिन्न भिन्न सही अर्थ हो सकते हैं। निम्नाङ्कित महत्वपूर्ण मन्त्र इसका एक उदाहरण है-

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश।।

यजु. १७।९१, ऋग्.४।५८।३

गोपथ ब्राह्मण पूर्व २।१६ के अनुसार इस मन्त्र में यज्ञ पुरुष के भिन्न भिन्न अवयवों का वर्णन निम्न प्रकार किया गया है।

(चत्वारि अस्य शृङ्गा) चत्वारि शृङ्गाः इति एते वै वेदाः उक्ताः। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद, ये उसके चार सींग अथवा शीर्षस्थ अवयव हैं। (त्रयः अस्य पादाः) त्रयः पादाः इति सवनानि एव। तीन सवन, इसके तीन पाद अथवा चरण हैं, प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन तथा सायं सवन अर्थात् प्रातः काल में किया जाने वाला यज्ञ, मध्याह्न में किया जाने वाला यज्ञ तथा सायंकाल में किया जाने वाला यज्ञ, यही इसके तीन पाद अथवा चरण हैं। (द्वे शीर्षे) द्वे शीर्षे इति ब्रह्मौदन प्रवर्ग्यो एव। ब्रह्मौदन तथा प्रवर्ग्य (यज्ञाग्नि) इसके दो शिर हैं। (सप्त हस्तासः अस्य) सप्त हस्तासः अस्य इति छन्दांसि एव। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् तथा जगती, वेद के ये प्रमुख सात छन्द, इसके सात हाथ हैं क्योंकि इन्हीं से समस्त क्रियायें होती हैं।

(त्रिधा बद्धः) त्रिधा बद्ध इति मन्त्रः कल्पः ब्राह्मणम्। मन्त्र, कल्प तथा ब्राह्मण, इन तीन प्रकार से बंधा हुआ, (वृषभः रोरवीति) एषः वृषभः ह वै तत् रोरवीति। सुखों की वर्षा करने वाला यह श्रेष्ठ यज्ञ पुरुष प्रिय एवं कल्याणकारी शब्द करता है।

(यत् यज्ञेषु शस्त्राणि ऋग्भिः, यजुर्भिः सामभिः ब्रह्मभिः शंसति इति) यज्ञों में स्तोत्र अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के मन्त्रों का जो पाठ किया जाता है, वही इस बलवान् यज्ञ पुरुष का शब्द है।

(महः देवः मर्त्यान् आविवेश) इत एषः ह वै महान् देवः यद् यज्ञः एष मर्त्यान् आविवेश। यह यज्ञ रूपी महान् पूजनीय देव सभी मरणधर्मा प्राणियों में सब ओर से व्याप्त है अर्थात् यह महान् देव समस्त प्राणियों का कल्याण करने वाला है।

वृषभ शब्द 'वृषु सेचने' धातु से बना है। अतः यहाँ इसका अर्थ है सुख की वर्षा करने वाला। इसके अतिरिक्त वृषभ का अर्थ श्रेष्ठ तथा बलवान् भी होता है।

निरुक्त परिशिष्ट १३।७ में यास्काचार्य जी ने इस मन्त्र का अर्थ निम्न प्रकार किया है-

(चत्वारि श्रृङ्गेति वेदा वा एते उक्ताः) चार वेद ही इसके चार सींग हैं, (त्रयो अस्य पादाः इति सवनानि त्रीणि) यज्ञ के तीन सवन ही इसके तीन पाद हैं, (द्वे शीर्षे प्रायणीयोदयनीये) प्रायणीय अर्थात् यज्ञ के प्रारम्भिक कार्य तथा उदयनीय अर्थात् यज्ञ के अन्तिम कार्य इसके दो शिर हैं। (सप्त हस्तासः सप्त छन्दांसि) गायत्री आदि सात छन्द इसके सात हाथ हैं।

(त्रिधा बद्धः त्रेधा बद्धः मन्त्र ब्राह्मण कल्पैः) मन्त्र, ब्राह्मण तथा कल्प से तीन प्रकार से बंधा हुआ, (वृषभो रोरवीति) सुख की वर्षा करने वाला यह श्रेष्ठ देव शब्द करता है, (रोरवणमस्य सवनक्रमेण ऋग्भिर्यजुर्भिः सामभिः) सवनों के क्रम से ऋग्, यजु तथा साम मन्त्रों का पाठ ही इसका शब्द करना है। यज्ञ रूपी यह महान् देव मनुष्यों में प्रविष्ट होता है अर्थात् मनुष्यों द्वारा यज्ञ किया जाता है, यजन किया जाता है।

महर्षि पतञ्जलि द्वारा महाभाष्य अध्याय १ में इस मन्त्र का निम्नाङ्कित प्रसिद्ध अर्थ किया गया है-

नाम, आख्यात, उपसर्ग एवं निपात रूपी चार सींगों वाला, भूत, भविष्यत्, वर्तमान रूपी तीन पादों वाला, नित्य अनित्य शब्द रूपी दो

शिरों वाला, क्रिया, विभक्तियों रूपी सात हाथों वाला तथा हृदय, कण्ठ एवं मुख, इन तीन स्थानों पर तीन प्रकार से बंधा हुआ, सब पर सुखों की वर्षा करने वाला शब्द रूपी यज्ञ पुरुष मधुर कल्याणकारी ध्वनि करता है तथा समस्त प्राणियों में व्याप्त रहता है।

३. मन्त्र के साथ जिन ऋषियों के नाम का उल्लेख होता है, वे मन्त्रों के रचयिता नहीं, प्रत्युत उनके दृष्टा हैं। सभी प्राचीन श्रेष्ठ विद्वानों का यही निश्चित मत है किन्तु आजकल विदेशी विद्वानों से प्रभावित कुछ वेद विरोधी मूर्ख लोग इन ऋषियों को मन्त्रों का रचयिता मानकर सनातन वैदिक मान्यता तथा वैदिक मर्यादा का अपमान करते हैं।

४. केवल सत्य में ही श्रद्धा रखनी चाहिये। आस्था अथवा श्रद्धा के नाम पर असत्य बातों पर कभी भी श्रद्धा अथवा विश्वास नहीं करना चाहिये।

(तेज एव श्रद्धा सत्य आज्यम्) श्रद्धा तेज अथवा अग्नि है, सत्य घृत है।

श्रद्धा में सत्य की आहुति दिया जाना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सत्य के बिना श्रद्धा केवल निरर्थक अन्धभक्ति हो जाती है।

अश्रद्धामनृते दधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः

यजुर्वेद, १९।७७

प्रजापति ने असत्य में अश्रद्धा एवं सत्य में श्रद्धा को स्थापित किया है।

अतएव हमें केवल सत्य में ही श्रद्धा रखना चाहिये, असत्य में नहीं,चाहे वह कितना ही आकर्षक क्यों न प्रतीत हो रहा हो।

५. वेद स्वतः प्रमाण हैं जबकि अन्य सभी शास्त्र तथा पुस्तकें परतः प्रमाण हैं, उनके कथन की सत्यता के लिये प्रमाण की आवश्यकता होती है। अतः यदि किसी शास्त्र अथवा ग्रन्थ में वेद के विरुद्ध कोई बात कही गयी है तो उसे सत्य नहीं माना जा सकता।

अर्थ कामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ।।

मनु. २।१३

जो धन सम्पत्ति के लोभ तथा काम अर्थात् विषय वासना के भोगों में लिप्त नहीं होता, उसी को धर्म का ज्ञान होता है। धर्म को जानने की इच्छा करने वालों के लिये वेद ही परम प्रमाण हैं।

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयञ्च वेदशास्त्रमितिस्थितिः।।(मनु. १२।९४)

देव, पितर तथा मनुष्यों के लिये वेद सनातन चक्षु हैं, मार्गदर्शक हैं तथा वे संशय, तर्क एवं प्रमाण की आवश्यकता से परे हैं क्योंकि वेद स्वतः प्रमाण हैं, इनकी इयत्ता असीम है। यह वेद की मर्यादा है।

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः।।

मनु. २।११

जो व्यक्ति हेतु शास्त्र (तर्क शास्त्र) का आश्रय लेकर असत्य एवं अनुचित तर्कों द्वारा वेद का अनादर करे, उस नास्तिक एवं वेद निन्दक का सभी सज्जनों द्वारा बहिष्कार कर दिया जाना चाहिये।

वेदों के महत्व आदि के विषय में कृपया लेखक की पुस्तक 'ईशावास्योपनिषद्' देखने का कष्ट करें।

६. परमात्मा केवल एक है, विद्वान् उसे अनेक भिन्न भिन्न नामों से बुलाते हैं। ब्रह्म, इन्द्र, विष्णु, शिव, परमात्मा, रुद्र, ईश्वर आदि अलग अलग देवता नहीं हैं, प्रत्युत एक परमात्मा के ही नाम हैं। यह वैदिक धर्म का मूल सिद्धान्त है और इसे अच्छी तरह से समझ लेना चाहिये, हृदयङ्गम कर लेना चाहिये।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो
दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वद-
न्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

अथर्व. ९।१०।२८, ऋग्. १।१६४।४६

ईश्वर एक ही है। उसी को विद्वान् लोग बहुत प्रकार से, अनेक नामों से वर्णन करते हैं। उसी को इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य सुपर्ण, गरुत्मान्, यम तथा मातरिश्वा कहते हैं।

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यो देवानां नामधा एक एव तꣳ संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या।।

अथर्व. २।१।३ (पाठभेद) ऋग्. १०।८२।३

यजु. १७।२७

(यो नः पिता) जो हमारा पिता, पालन कर्ता तथा रक्षा करने वाला, (जनिता) जन्म देने वाला, (विधाता) जगत् का निर्माण करने वाला तथा कर्मों के अनुसार फल देने वाला है, (यः विश्वा भुवनानि) जो समस्त लोकों तथा (धामानि वेद) स्थानों को जानता है, (यः एकः एव) जो केवल एक ही है और जो (देवानां नामधा) समस्त देवों का नाम धारण करता है अर्थात् अग्नि, वायु, आदित्य आदि देवों के नाम भी जिसके लिये प्रयोग किये जाते हैं, (क्योंकि ये देव वास्तव में उसके द्वारा प्रदत्त शक्ति का ही प्रयोग करते हैं) (तं सं प्रश्नम्) उसी उत्तम प्रकार से प्रश्न किये जाने योग्य परमात्मा के प्रति (अन्या भुवना यन्ति) समस्त भुवन पहुँचते हैं अर्थात् समस्त लोक लोकान्तर उसी में समर्पित हैं, उसी पर आधारित हैं तथा अन्त में उसी में लीन हो जाते हैं।

इससे स्पष्ट है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि भिन्न भिन्न देवता नहीं हैं, प्रत्युत् एक परमात्मा के ही भिन्न भिन्न नाम हैं। यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि अग्नि, वायु, मित्र, वरुण, आदित्य, चन्द्रमा आदि के अर्थ प्रत्येक स्थान पर परमात्मा नहीं होते, प्रत्युत मन्त्र के सन्दर्भ के अनुसार बदल जाते हैं। केवल ओ३म् ही ऐसा शब्द है, जिसका ब्रह्म से भिन्न अन्य कोई अर्थ नहीं है।

एको देव: सर्व भूतेषु गूढः,

सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।

कर्माध्यक्ष: सर्वभूताधिवास:,

साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।

श्वेताश्वतर उपनिषद्, ६।११

(एक: देव: सर्व भूतेषु गूढः) वह देव केवल एक है तथा समस्त प्राणियों एवं पदार्थों में अन्तर्यामी रूप से स्थित है। गूढ का तात्पर्य यह है कि वह सब भूतों में स्थित होते हुये भी देखा नहीं जा सकता। वह (सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा) सर्वव्यापी और सब प्राणियों का अन्तरात्मा है, (कर्माध्यक्ष: सर्वभूताधिवास:) समस्त प्राणियों के कर्मों का फल देने वाला है तथा समस्त प्राणियों का आधार है, समस्त प्राणी उसी में निवास करते हैं, जिसके कारण उसे जगन्निवास कहा जाता है। (साक्षी चेता केवलो निर्गुण: च) वह सभी प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों को तथा समस्त संसार के सम्पूर्ण व्यापार को देखने वाला है तथा स्वयं निर्लिप्त, विशुद्ध एवं ज्ञानस्वरुप होते हुये वह समस्त प्राणियों को चेतना, प्रेरणा एवं ज्ञान प्रदान करने वाला है और सत्व, रज तथा तम इन तीनों गुणों से ऊपर है।

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रुपं रुपं प्रतिरुपो बभूव।

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रुपं रुपं प्रतिरुपो बहिश्च।।

कठोपनिषद्, २।२।१०

जिस प्रकार संसार में प्रविष्ट एक ही वायु नाना रुपों वाली वस्तुओं में प्रवेश करके उन्हीं के समान रूप वाला हो जाता है, उसी प्रकार सब प्राणियों का अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुये भी समस्त प्राणियों में उन्हीं के समान रुपवाला होकर उनके अन्दर तथा बाहर स्थित रहता है।

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः

प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ।।

गीता. ११।३९

आप ही वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजापति तथा प्रपितामह हैं। आपके लिये सहस्रों बार प्रणाम हो, आपको पुनः पुनः नमन एवं प्रणाम।

यद्यपि मनुष्य जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष हैं,उन सभी के विषय में सम्यक ज्ञान एवं मार्ग दर्शन वेदों में दिया गया है फिर भी वेदों का प्रमुख उद्देश्य पुरुष के लिये पवित्र जीवन व्यतीत करते हुये परमात्मा को जानना तथा प्राप्त करना है।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते।।

अथर्व. ९।१०।१८ (पाठभेद), ऋग्.१।१६४।३९

(ऋचः) समस्त ऋचायें, समस्त वेद मन्त्र (व्योमन् व्योमनि व्योम सदृशे) आकाश के समान सर्वव्यापक अथवा (वि ओमन्) विशेष रूप से रक्षा करने वाले उस (परमे) सर्वोत्कृष्ट (अक्षरे) ओ३म् वाच्य अविनाशी परब्रह्म में आश्रित हैं तथा उसी का प्रतिपादन, वर्णन एवं गुणगान करते हैं, (यस्मिन् विश्वे देवाः अधि निषेदुः) जिसमें समस्त देव आश्रित होकर स्थित हैं। (यः तत् न वेद) जो उस परमात्मा को नहीं जानता, अथवा जिसने वेदों का अध्ययन करके भी उसे नहीं जाना, (ऋचा किं करिष्यति) वह ऋचाओं से क्या करेगा अर्थात् उसके वेदाध्ययन से क्या लाभ? (ये तत् विदुः) जो विद्वान् उसे जानते हैं, (ते इत्) वे ही (इमे सम् आसते) उस परब्रह्म में सम्यक् रूप से स्थित होते हैं, ब्रह्म साक्षात्कार करके मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

कठोपनिषद् में भी स्पष्ट रूप से कहा है कि समस्त वेद उस ओ३म् वाच्य ब्रह्म का ही वर्णन करते हैं, उसी का निरूपण एवं प्रतिपादन करते हैं।

सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदꣳसंग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

कठोनिषद्, १।२।१५

समस्त वेद जिस परम पद का प्रतिपादन करते हैं, समस्त तप जिसको प्राप्त करने के साधन हैं, जिसको प्राप्त करने की इच्छा से साधक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं, वह पद तुम्हें संक्षेप में बताता हूँ, वह ओ३म् है।

इसी को जीवात्मा का जन्म मृत्यु के चक्र से मुक्ति प्राप्त करना, मोक्ष प्राप्त करना कहा जाता है।

समस्त ब्रह्माण्ड में परमेश्वर का ही एक मात्र प्रकाश है, उसी के प्रकाश से सूर्यादि सब प्रकाशित होते हैं, अतः परमात्मा ही मुख्य देव है, महादेव है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं,
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं,
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

मुण्डकोपनिषद् २।२।१०, श्वेताश्वतर उपनिषद्, ६।१४, कठोपनिषद् २।२।१५

वहाँ न सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्रमा, न तारागण, ये बिजलियाँ भी वहाँ प्रकाशित नहीं होतीं, फिर यह अग्नि वहाँ कैसे प्रकाशित हो सकता है? उस परब्रह्म के प्रकाशित होने से ही यह सूर्यादि उसके प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। उसी के प्रकाश से यह समस्त जगत् प्रकाशित होता है, आलोकित एवं सुशोभित होता है।

इसीलिये एक मात्र परमेश्वर की ही उपासना करनी चाहिये, अन्य किसी दवता अथवा व्यक्ति की नहीं।

<u>देवता</u>

वैदिक ज्ञान के सम्बन्ध में देवता शब्द का अर्थ समझना आवश्यक है। देवता का अर्थ है-

देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा, द्युस्थानो भवतीति वा। यो देवः सा देवता।

निरुक्त. ७।४।१५

दान, दीपन या द्योतन करने से अथवा द्युस्थानीय होने से देव कहा जाता है। दाता, प्रदीपक, द्योतक या द्युस्थानीय पदार्थ को देव कहा जाता है।

इसीलिये भारतीय संस्कृति में माता-पिता, आचार्य तथा विद्वानों को देवता कहा जाता है।

यो देवः सा देवता। जो देवः है, वही देवता है।

वेद में प्रमुख रूप से तैंतिस देवता माने जाते हैं। आठ वसु, बारह आदित्य और ग्यारह रुद्र, यज्ञ तथा प्रजापति।

संख्या	नाम
८	वसु (पृथिवी, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, द्युलोक, सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्र
११	रुद्र (दश प्राण एवं जीवात्मा)
१२	आदित्य (संवत्सर के बारह मास)
१	इन्द्र
१	प्रजापति
३३	

वेद में देवताओं का उल्लेख निम्न प्रकार है-

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्याऽऽदेवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता।।

यजु. १४।२०

अग्नि देवता, वायु देवता, सूर्य देवता, चन्द्रमा देवता, (वसवः देवताः) आठ वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा तथा नक्षत्र, (रुद्रा देवताः) ग्यारह रुद्र अर्थात् रुलाने वाले, दश प्राण तथा जीवात्मा, जो शरीर से निकलने के समय प्रियजनों को रुलाते हैं, (आदित्याः देवताः) वर्ष के बारह मास, मरुत देवता, विश्वेदेव देवता, बृहस्पति देवता, इन्द्र देवता तथा (वरुणः देवता) वरुण देवता।

बारह आदित्यों के नाम हैं- त्वष्टा, सविता, भग, सूर्य, पूषा, विष्णु, विश्वानर, वरुण, केशी (केशिनः), वृषाकपि, यम तथा अज एकपात्। (निघण्टु. ५।६)

वेद मन्त्रों को भी देवता कहा जाता है।

पुरुषविद्या नित्यत्वात्कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रो वेदे। (निरु. १।२)

पुरुष की समस्त विद्यायें अनित्य होने के कारण उनसे परम कल्याण एवं मोक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती, कर्म सिद्धि कराने वाले तो वेद में उल्लिखित मन्त्र ही हैं।

मनुष्य अल्पज्ञ है, अतः उसका ज्ञान अपरिपूर्ण तथा परिवर्तनशील होने के कारण अनित्य है। ऐसे सन्दिग्ध एवं अपूर्ण ज्ञान से कभी भी सत्कर्मों की सिद्धि नहीं हो सकती। वेद सर्वज्ञ परमेश्वर का ज्ञान होने से पूर्ण एवं नित्य हैं। वैदिक ज्ञान तीनों कालों में एक सा रहता है और वेद सब सत्य विद्याओं के भण्डार हैं। अतः वेद मन्त्र अश्वमेध यज्ञ से लेकर शिल्प पर्यन्त सभी कर्मों तथा मोक्ष की सिद्धि कराने वाले हैं। इसीलिये महर्षि यास्काचार्य ने देवता शब्द को मन्त्र के पर्यायवाची शब्द के रुप में प्रयुक्त किया है।

तेषां मनुष्यवद् देवताभिधानम्। (निरु. १।२)

जिस प्रकार मनुष्यों की भाषा में शब्दों का प्रयोग होता है, उसी प्रकार देवता अर्थात् मन्त्र में भी होता है।

स्वामी दयानन्द जी ने ऋग्वेद भाष्य भूमिका (वेद विषयविचारः) में लिखा है-

कर्मकाण्डे देवता शब्देन वेदमन्त्राणां ग्रहणम् गायत्र्यादीनि छन्दांसि ह्यग्न्यादिदेवताख्यान्येव गृह्यन्ते। तेषां कर्मकाण्डादि विधेर्द्योतकत्वात्।

कर्म काण्ड अर्थात् यज्ञ क्रिया में मुख्य करके देवता शब्द से वेद मन्त्रों का ही ग्रहण किया जाता है और जो गायत्र्यादि छन्द हैं, वे ही देवता कहलाते हैं क्योंकि वे ही कर्मकाण्ड आदि विधि के द्योतक हैं और उन्हीं से सब अर्थों का यथावत प्रकाश होता है।

मन्त्र

मन्त्राः मननात्। (निरुक्त. ७।१२)

मन्यन्ते ज्ञायन्ते सर्वाः सत्यविद्याः यैस्ते मन्त्राः अर्थात् जिनसे समस्त सत्य विद्याओं का ज्ञान होता है, वे मन्त्र होते हैं। मन्त्र शब्द मन् ज्ञाने धातु से बना है, अतः मनन का अर्थ जानना भी होता है।

मन्त्र तथा छन्द पर्यायवाची शब्द हैं। यह उल्लेखनीय है कि श्रुति, वेद तथा निगम भी पर्यायवाची हैं। अष्टाध्यायी में छन्द, मन्त्र और निगम, ये तीनों शब्द वेदों के लिये प्रयुक्त किये गये हैं।

निगम का निर्वचन निम्न प्रकार है-

निगच्छन्ति नितरां जानन्ति प्राप्नुवन्ति वा,
सर्वा विद्या यस्मिन् स निगमो वेदो मन्त्रश्चेति।

ऋग्वेद भाष्य भूमिका (वेद विषयविचारः)

जिससे सारे पदार्थों के यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति हो सके अथवा सारी विद्यायें जिसमें हैं वह निगम, वेद अथवा मन्त्र है।

यह उल्लेखनीय है कि मन्त्र के सम्बन्ध में देवता शब्द का एक अन्य अर्थ भी है-

या तेनोच्यते सा देवता। (सर्वानुक्रमणी ५)

मन्त्र द्वारा जिस विषय को कहा जाता है वही उस मन्त्र का देवता होता है अर्थात् मन्त्र का जो प्रतिपाद्य विषय होता है उसे उस मन्त्र का देवता कहा जाता है। उदाहरणार्थ 'अग्निमीले पुरोहितम्' इस मन्त्र में अग्नि का वर्णन है, अतः इस मन्त्र का देवता अग्नि है किन्तु यह उल्लेखनीय है कि आध्यात्मिक अर्थ करने पर सभी मन्त्रों का देवता ओङ्कार अथवा ब्रह्म ही होता है क्योंकि वही वेदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है।

ऋक्सर्वानुक्रमणी में आचार्य कात्यायन ने लिखा है 'ओङ्कारः सर्वदेवत्यः परामेष्ठ्यो वा ब्राह्मो दैव आध्यात्मिकः'। आध्यात्मिक अर्थ में सब ऋचाओं का देवता ओङ्कार, परमेष्ठी अथवा ब्रह्म होता है।

९. मन्त्रों में आये कतिपय ऋषियों के नाम किसी व्यक्ति विशेष के नाम नहीं हैं, वास्तव में वे यौगिक शब्द हैं। उदाहरणार्थ-

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्।। यजु. ३।६२

(जमदग्नेः त्र्यायुषं) हमारे चक्षु की दृष्टि शक्ति की तिगुनी आयु हो, (कश्यपस्य त्र्यायुषं) हमारे नासारन्ध्र अर्थात् घ्राणशक्ति तथा प्राणशक्ति की तिगुनी आयु हो, (क्योंकि नाक के नथुनों से ही प्राण का आना जाना होता है।) (यत् देवेषु त्र्यायुषं) देवों में जो तिगुनी आयु होती है, (तत् नः अस्तु त्र्यायुषं) वह तिगुनी आयु हमें प्राप्त हो।

यहाँ चक्षु तथा नासारन्ध्र ज्ञानेन्द्रियों के प्रतीक हैं। देवों का अर्थ इन्द्रियाँ भी होता है। इस प्रकार सभी ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों की तिगुनी आयु तथा उनके दिव्य शक्तियों से सम्पन्न होने की प्रार्थना की गयी है।

अनेक भाष्यकारों ने त्र्यायुषं का अर्थ त्रिविध आयु अर्थात् बाल्यावस्था, तारुण्य और वार्धक्य किया है किन्तु स्वामी दयानन्द जी ने इसका अर्थ तिगुनी आयु अर्थात् तीन सौ वर्ष की आयु किया है, जो उचित प्रतीत होता है।

जमदग्नि का अर्थ नेत्र तथा कश्यप का अर्थ प्राण भी होता है।

कश्यपः पश्यको भवति। यत्सर्वं परिपश्यति इति सौम्यात्।

तैत्तिरीय आरण्यक. १।८।८

कश्यप का अर्थ है सबको देखने वाला सूर्य। इसे वर्ण व्यत्यय के आधार पर 'पश्यक' से निष्पन्न माना गया है।

यज्ञ में आहुति देने वाले अधिकांश मन्त्र इस पुस्तक में सम्मिलित नहीं किये गये हैं। उनके लिये कृपया लेखक की पुस्तक यज्ञानुराग देखने का कष्ट करें।

श्रीसूक्त को भी इस पुस्तक में सम्मिलित नहीं किया गया है क्योंकि वह वेद का भाग नहीं है, बल्कि ऋग्वेद के अन्त में खिल सूक्त अर्थात् बाद में लिखे हुये सूक्त के रूप में दिया गया है। इसमें यजुर्वेद का केवल एक ही मन्त्र ३९।४ है।

वैदिक वाङ्मय

महर्षि पतञ्जलि महाभाष्य (पस्पशाह्निक) में लिखते हैं-

चत्वारो वेदाः सांगाः सरहस्याः बहुधा भिन्नाः। एक शतमध्वर्युशाखाः। सहस्रवर्त्मा सामवेदः एक विंशतिधा बाह् वृच्यम्। नवधाथर्वणो वेदः।

वेद चार हैं। वे अंग तथा रहस्य के साथ अनेक रूपों में भिन्न हुये हैं। यजुर्वेद की १०१, सामवेद की १०००, ऋग्वेद की २१ और अथर्ववेद की ९ शाखायें हैं।

इस समय ऋग्वेद की केवल एक ही शाखा प्रचलित है, जिसे शाकल संहिता कहा जाता है। यह दश मण्डलों में विभक्त है, जिसके कारण निरुक्त में इसे दशतयी भी कहा गया है। ऋग्वेद में १०१७सूक्त हैं। इसके अतिरिक्त अष्टम मण्डल में बालखिल्य सूक्त हैं, जो सम्भवतः ऋग्वेद के भाग नहीं हैं। इन पर सायणाचार्य का भाष्य भी उपलब्ध नहीं है। स्वामी दयानन्द जी ने इस विषय में कुछ नहीं लिखा है।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार ऋग्वेद के अक्षरों की संख्या ४,३२,००० है, जो कलियुग के वर्षों की भी संख्या है।

महाभाष्य के अनुसार यजुर्वेद की १०१ शाखायें थीं किन्तु इस समय यजुर्वेद की केवल दो प्रमुख संहितायें उपलब्ध हैं, शुक्ल यजुर्वेद तथा कृष्ण यजुर्वेद। जिनमें उत्तर भारत में शुक्ल यजुर्वेद तथा दक्षिण भारत में कृष्ण यजुर्वेद का प्रचलन है।

शुक्ल यजुर्वेद की दो प्रमुख शाखायें हैं, एक माध्यन्दिन अथवा वाजसनेयि संहिता और दूसरी काण्व संहिता।

कृष्ण यजुर्वेद को तैत्तिरीय संहिता भी कहते हैं। इसमें वेद मन्त्रों के

साथ ब्राह्मण भाग भी मिश्रित है, जब कि शुक्ल यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण पूर्ण रूप से अलग एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसमें अनेक मन्त्रों की व्याख्या एवं विनियोग के साथ साथ महत्वपूर्ण शब्दों के अर्थ तथा निर्वचन दिये गये हैं। शतपथ ब्राह्मण आध्यात्मिक ज्ञान का महत्वपूर्ण कोष है। बृहदारण्यक उपनिषद् इसी का अन्तिम भाग है।

तैत्तिरीय संहिता को आपस्तम्ब भी कहा जाता है।

सामवेद की एक सहस्त्र शाखाओं में से इस समय तीन शाखायें ही उपलब्ध हैं, कौथुमी, राणायणीय तथा जैमिनीय। ताण्ड्य ब्राह्मण तथा छान्दोग्य उपनिषद् कौथुमी शाखा से ही सम्बन्धित हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् १।३।२२ में साम शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गयी है- **'सा च अमश्च इति तत्सामनः सामत्वम्'**। सा का अर्थ है ऋचा और अम् का अर्थ है संगीत का स्वर, यही साम का सामत्व है।

कौथुमी शाखा का प्रचार प्रमुख रूप से उत्तर भारत तथा गुजरात में, राणायणीय का महाराष्ट्र में और जैमिनीय का कर्णाटक में है। जैमिनीय ब्राह्मण को तवलकार ब्राह्मण भी कहा जाता है, केनोपनिषद् इसी से सम्बद्ध है। कौथुमी शाखा में १८७५ मन्त्र हैं। लगभग ९० मन्त्रों को छोड़कर, सामवेद के शेष सभी मन्त्र ऋग्वेद में उपलब्ध हैं। इनमें कहीं कहीं पाठान्तर है। इसीलिये कहा जाता है कि सामवेद के मन्त्र ऋग्वेद के मन्त्रों पर आधारित हैं, **'ऋचि अध्यूढं साम गीयते'**। प्राचीन काल में उत्सवों एवं सभी शुभ अवसरों पर विशेष रूप से यज्ञ की समाप्ति पर साम गान किया जाता था किन्तु दुर्भाग्य से आज सामगान के ज्ञाता ब्राह्मण कहीं कहीं ही उपलब्ध हैं। हमारे पतन की पराकाष्ठा है कि अब सामगान का स्थान् अश्लील फिल्मी गानों ने ले लिया है।

सामवेद पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक, दो भागों में विभक्त है। पूर्वार्चिक में ६ अध्याय हैं, इनमें पञ्चम अध्याय का नाम पवमान पर्व है।

अथर्व वेद के लिये मन्त्रों में कहीं छन्द, कहीं ब्रह्म तथा कहीं अथर्वाङ्गिरस शब्दों का प्रयोग हुआ है। अथर्व वेद का प्रकाशन सर्वप्रथम १८५६ में बर्लिन से हुआ था। महाभाष्य के अनुसार अथर्व वेद की ९

शाखायें थीं। इस समय उपलब्ध शौनक शाखा में २० काण्ड तथा ५९७७ मन्त्र हैं।

वेदाङ्ग-

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष

उपाङ्ग अथवा दर्शन-

पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा (वेदान्त), योग, सांख्य, वैशेषिक, न्याय

उपवेद-

आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व वेद, अर्थ वेद

ब्राह्मण-

ब्राह्मण ग्रन्थों में निम्नाङ्कित चार ब्राह्मण प्रमुख हैं।

ऋग्वेद का ऐतरेय ब्राह्मण, यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण, सामवेद का ताण्ड्य ब्राह्मण तथा अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण।

आरण्यक-

इनमें वेदों के दार्शनिक पक्ष की विशद विवेचना है। ब्रह्मविद्या एवं प्राण विद्या इनका महत्वपूर्ण विषय है। अधिकांश आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थों के अन्तिम भाग हैं।

नवनीतं यथा दध्नो मलयाच्चन्दनं यथा।
आरण्यकं च वेदेभ्य औषधिभ्योऽमृतं यथा।।

महाभारत. ३३१।१

जैसे दधि से नवनीत, मलयगिरि से चन्दन और औषधियों से अमृत प्राप्त किया जाता है, उसी प्रकार वेदों से आरण्यक ले लिया जाता है।

शुक्ल यजुर्वेद का बृहदारण्यक, शतपथ ब्राह्मण का अन्तिम भाग है और बृहदारण्यक उपनिषद् के रूप में प्रसिद्ध है।

कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय आरण्यक। इसका एक भाग तैत्तिरीय उपनिषद् के रूप में प्रसिद्ध है।

ऐतरेय आरण्यक- ऐतरेय ब्राह्मण का अन्तिम भाग है।

मैत्रायणीय आरण्यक ही मैत्रायणीय उपनिषद् के रूप में विद्यमान है।

सम्प्रति केवल ६ आरण्यक ही उपलब्ध हैं।

१.	ऋग्वेद के दो आरण्यक हैं-	ऐतरेय तथा शाखायन आरण्यक
२.	शुक्ल यजुर्वेद-	बृहदारण्यक
३.	कृष्ण यजुर्वेद-	तैत्तिरीय आरण्यक
४.	मैत्रायणीय शाखा का-	मैत्रायणीय आरण्यक
५.	सामवेद की कौथुमीय शाखा -	छान्दोग्योपनिषद्, जिसमें आरण्यक भाग मिला हुआ है।
६.	सामवेद-	तलवकार आरण्यक

ब्राह्मण गन्थ वस्तुतः वेद मन्त्रों के व्याख्यान रूप हैं, जिसमें मन्त्रों का विनियोग, यज्ञ क्रिया का निरुपण तथा नियम एवं महत्वपूर्ण शब्दों के निर्वचन, अर्थ आदि अत्यन्त सुन्दर तथा रोचक शैली में बताये गये हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है और उनका वर्णन कुछ शब्दों में सीमित नहीं किया जा सकता। वस्तुतः यह ग्रन्थ ज्ञान के भण्डार हैं, जिनके बिना वेद मन्त्रों का सही अर्थ समझना लगभग असम्भव है।

दुर्भाग्य से इन ग्रन्थों में अनेक स्थनों पर बहुत अधिक मिलावट है, जो स्पष्ट दिखायी देती है। इसका कारण है हमारा सामाजिक पतन।

शतपथ ब्राह्मण का प्रकाशन सर्वप्रथम डा. वेबर द्वारा वर्ष १८५५ में किया गया था। इस समय इसी को प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। विभिन्न वेदों के ब्राह्मण इस प्रकार हैं-

वेद	ब्राह्मण	प्रवचन कर्ता ऋषि
१. ऋग्वेद-	ऐतरेय ब्राह्मण	महिदास ऐतरेय,
संपादन-	वर्ष १८६३ में अंग्रेजी अनुवाद सहित मार्टिन हॉग द्वारा संपादित तथा मुम्बई से प्रकाशित	
	शांखायन अथवा कौषीतकि ब्राह्मण	शांखायन अथवा कोषीतकि
२. शुक्ल यजुर्वेद-	शतपथ ब्राह्मण	महर्षि वाजसनेय, याज्ञवल्क्य

संपादन- डा. वेबर द्वारा संपादित तथा वर्ष १८५५ में प्रकाशित

३. कृष्ण यजुर्वेद- तैत्तिरीय ब्राह्मण वैशम्पायन के शिष्य तित्तिर

संपादन- कलकत्ता से १८६२ में राजन्द्र लाल मिश्र द्वारा प्रकाशित

४. सामवेद (कौथुम शाखा)- ताण्ड्य महाब्राह्मण। शेष आठ ब्राह्मण, अनु ब्राह्मण अर्थात् ब्राह्मण सदृश माने जाते हैं। षडविंश ब्राह्मण कदाचित् ताण्ड्य ब्राह्मण का ही भाग अथवा परिशिष्ट है। इन ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रत्येक स्थान पर सत्य, ज्ञान तथा तपस्या पर बल दिया गया है। उदाहरणार्थ-

ऋत पात्रमसि। (ताण्ड्य ब्रा. १।२।३)

त्रिषत्या हि देवा। (ताण्ड्य ब्रा. १।१।९)

वही देवत्व प्राप्त कर सकते हैं, जिनके मन, वाणी तथा कर्म तीनों सत्य होते हैं।

५. अथर्व वेद (पैप्पलाद शाखा)- गोपथ ब्राह्मण

उपनिषद्-

भारतीय परम्परा के अनुसार उपनिषदों की संख्या १०८ है किन्तु इनमें निम्नाङ्कित उपनिषद् ही विशेष महत्वपूर्ण हैं।

१. ईशावास्योपनिषद्- शुक्ल यजुर्वेद काण्व संहिता
२. बृहदारण्यकोपनिषद्- शुक्ल यजुर्वेद वाजसनेयि संहिता
३. कठोपनिषद्- कृष्ण यजुर्वेद संहिता
४. तैत्तिरीयोपनिषद्- कृष्ण यजुर्वेद संहिता
५. मैत्रायणी उपनिषद्- कृष्ण यजुर्वेद संहिता
६. श्वेताश्वतरोपनिषद्- कृष्ण यजुर्वेद संहिता
७. ऐतरेयोपनिषद्- ऋग्वेद
८. प्रश्नोपनिषद्- अथर्व वेद
९. मुण्डकोपनिषद्- अथर्व वेद
१०. माण्डूक्योपनिषद्- अथर्व वेद
११. केनोपनिषद्- सामवेद
१२. छान्दोग्योपनिषद्- सामवेद

उपरि लिखित उपनिषदों के अलावा जो शेष उपनिषद् हैं, उनमें कुछ भाग तो वेदानुसार हैं किन्तु उनका शेष भाग वेदों पर आधारित न होकर भिन्न भिन्न विद्धानों तथा समुदायों के अस्वीकार्य विचारों पर आधारित है। अतः उन्हें वेदान्त नहीं कहा जा सकता।

अपने पूज्य पिता पं. उमादत्त जी त्रिवेदी वैद्य, शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य तथा पूज्या माँ श्रीमती चम्पा देवी की स्मृति में इस पुस्तक को लिखने का मेरा प्रमुख उद्देश्य वेदों के विषय में समाज में व्याप्त अनेक भ्रान्तियों का निराकरण करना है। इसमें दिये हुये लगभग ८०० महत्वपूर्ण मन्त्रों से विद्यार्थियों, सामान्य सज्जनों तथा विद्धानों, सभी को वैदिक धर्म एवं सभ्यता के वास्तविक रूप का ज्ञान होगा।

मन्त्रों से स्पष्ट है कि वैदिक धर्म में सत्य, पवित्रता, ज्ञान, सदाचार, ओजस्विता, वीरता, शत्रुनाश, प्राणिमात्र से प्रेम, त्याग तथा परोपकार आदि श्रेष्ठ मानवीय गुणों के साथ केवल ब्रह्म की ही उपासना का विधान है और मोक्ष अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति जीवन का परम लक्ष्य है। वैदिक जीवन में असत्य, अधर्म, दुराचार तथा व्यक्ति पूजा आदि दुर्गुणों का पूर्ण निषेध है।

इसमें सन्देह नहीं कि वैदिक ज्ञान एवं संस्कृति के अनुसार चलने से ही देश का कल्याण होगा।

अतः ८८ वर्ष की आयु पूर्ण करके अपने जीवन के सायंकाल में सामाजिक पतन के अन्धकार को दूर करने के लिये वैदिक ज्ञान की इस पुस्तक रूपी ज्योति को प्रकाशित करने का प्रयास कर रहा हूँ।

इस श्रेष्ठ कार्य में मेरी धर्मपत्नी श्रीमती प्रेमा त्रिवेदी ने अपनी वृद्धावस्था में अत्यन्त कष्ट उठाते हुये भी मुझे निरन्तर प्रोत्साहित किया है

और अपना भरपूर सहयोग दिया है, जिसके लिये मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

मेरे प्रिय शिष्य, श्री रोहित मिश्र, वेद विभूषण, शास्त्री, M.A ने इस पुस्तक की कम्प्यूटर टाइपिंग एवं कम्पोज़िंग आदि अनेक कठिन कार्यों को अपने अध्ययन के साथ साथ जिस तत्परता, मनोयोग एवं परिश्रम के साथ सम्पन्न किया है, उसके लिये उन्हें सहस्रों आशीर्वाद। भगवान् से प्रार्थना है कि वह उनके जीवन को सब प्रकार से सफल, सुखद एवं समृद्ध बनायें।

—0—

मकर संक्रान्ति विधुशेखर त्रिवेदी I.A.S (अ.प्रा.
१५|०१|२०१९

दैनिक प्रार्थना एवं स्तुति के मन्त्र

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।।

अथर्व वेद १०।८।१

(यः भूतं च भव्यं च) जो भूत भविष्य तथा वर्तमान (यः सर्वं अधितिष्ठति) सब का अधिष्ठाता है, सबका स्वामी है, (यस्य च केवलं स्वः) और जिसका केवल प्रकाशमय तथा आनन्दमय स्वरुप ही है अर्थात् जो केवल प्रकाश स्वरुप तथा सुखस्वरुप है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है।

यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।।

अथर्व. १०।७।३२

(यस्य भूमिः प्रमा) पृथिवी जिसकी पादस्थानीय है (अन्तरिक्षं उत उदरम्) तथा अन्तरिक्ष जिसके उदर के समान है, (यः दिवं मूर्धानं चक्रे) जिसने द्युलोक को अपने मूर्धा अर्थात् शिर के रूप में बनाया है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है ।

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।।

अथर्व.१०।७।३३

(सूर्यः पुनर्णवः चन्द्रमाः च) सूर्य तथा पुनः पुनः नवीन होने वाला चन्द्रमा (यस्य चक्षुः) जिसके नेत्र के समान हैं (यः अग्निं आस्यं चक्रे) तथा जिसने अग्नि को अपने मुख के रूप में बनाया है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है ।

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।।

अथर्व. १०।७।३४

(यस्य वातः प्राणापानौ) वायु जिसका प्राण और अपान है, (अङ्गिरसः चक्षुः अभवन्) प्रकाश देने वाली किरणें जिसके चक्षु के समान हैं, (यः दिशः प्रज्ञानीः चक्रे) तथा जिसने दिशाओं को अपने कानों के रूप में बनाया है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है।

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

यजु०,१६।४१

(नमःशम्भवाय च मयोभवाय च) सांसारिक सुख उत्पन्न करने वाले सुखस्वरूप तथा मोक्ष सुख के प्रदाता परमानन्द स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है; (नमः शङ्कराय च मयस्कराय च) हर्ष, उल्लास एवं लौकिक सुख के प्रदाता तथा मोक्ष के परम आनन्द के प्रदाता परब्रह्म को नमस्कार है; (नमः शिवाय च शिवतराय च) मङ्गलमय, कल्याणकारी तथा परम कल्याणकारी देवाधि देव महादेव को नमस्कार है।

शं सुखं भावयति इति शंभवः। अथवा,
शं सुखं भवत्यस्मादिति शंभवः॥

भगवान् सुख देते हैं अथवा भगवान् से सुख प्राप्त होता है इसलिये भगवान् शंभव हैं।

शं सुखं करोति इति शङ्करः।
मयो मोक्ष सुखं करोति इति मयस्करः॥

भगवान् सुखी करते हैं इसलिये शंकर हैं। भगवान् मोक्ष, सुख देते हैं इसलिये मयस्कर हैं।

शिवः कल्याण रूपो शान्तो निर्विकारः।

शिव कल्याण रुप हैं,कल्याण करने वाले हैं, शान्त हैं, निर्विकार हैं।

गायत्री मन्त्र

(ओ३म्) भूर्भुवः स्वः तत्संवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्यं धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयांत् ।।

ऋग्. ३।६२।१०, यजु. ३६।३, ३।३५,२२।९ तथा ३०।२
साम. उत्तरा. १३।४।१ क्र. सं. १४६२

(ओ३म्) हे अन्तर्यामी ! हमारे हृदय, मन, प्राण तथा आत्मा में वसने वाले, सर्वव्यापक, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान परमपिता परमात्मा ! (भूः=सत्) हे सर्वाधार ! (भुवः=चित्) हे ज्ञान स्वरूप, सर्वज्ञ ! हमारे समस्त दुःखों को दूर करने वाले (स्वः=आनन्द) हे सुख स्वरुप! परम आनन्द को देने वाले, (भूर्भुवः स्वः) हे सच्चिदानन्द! (तत् सवितुः देवस्य) सकल ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने वाले, उसका पालन पोषण करने वाले तथा उसे प्रेरणा देने वाले उस सविता देव के, परब्रह्म के (वरेण्यं भर्गः) वरण करने योग्य, श्रेष्ठ, कल्याणकारी पापनाशक तेज का हम (धीमहि) ध्यान करते हैं, उपासना करते हैं तथा उसके ज्योतिर्मय स्वरूप को अपने अन्तःकरण में धारण करते हैं । (धियो यो नः) जो परब्रह्म हमारी बुद्धि, वाणी तथा कर्मों को (प्रचोदयात्) कल्याणकारी मार्ग पर प्रेरित करे। अथवा, हे प्रभो! हमारी बुद्धि, वाणी तथा कर्मों को कल्याणकारी मार्ग पर प्रेरित कीजिये ।

महा मत्युंजय मन्त्र

त्र्यंम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुंष्टि वर्धनम् ।
उर्वारुकमिंव बन्धंनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतांत् ।।

यजु. ३।६० (पाठभेद) ऋग्. ७।५९।१२

(सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम्) जीवन की सुगन्धि अर्थात् मनुष्य द्वारा किये गये पुण्य कर्मों की सुगन्धि, उसकी यश, सुरभि एवं आत्मा तथा शरीर की पुष्टि और धन धान्य आदि का संवर्धन करने वाले (त्र्यम्बकं) तीन नेत्रों वाले रुद्र अर्थात् दुष्टों को रुलाने वाले एवं सज्जनों का कल्याण करने वाले भगवान् शिव की हम (यजामहे) उपासना करते हैं तथा यह

प्रार्थना करते हैं कि वह हमें (मृत्यो: बन्धनात् मुक्षीय) मृत्यु के बन्धन से उसी प्रकार मुक्त कर दें (उर्वारुकं इव) जिस प्रकार पका हुआ खरबूजा अपनी लता से मुक्त हो जाता है (मा अमृतात्) किन्तु हमें अमृत से, मोक्ष से मुक्त न करें अर्थात् हमें अमृतत्व प्रदान करें, मोक्ष प्रदान करें।

भगवान् को त्र्यम्बक अर्थात् तीन नेत्रों वाला इसलिये कहा जाता है कि वह भूत, भविष्य वर्तमान तथा पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक तीनों को भली प्रकार देखते हैं और इस त्रिगुणात्मिका सृष्टि की रचना कर उसके प्रादुर्भाव, स्थिति एवं प्रलय तीनों को पूर्ण रूपेण नियन्त्रित करते हैं। अथवा, (त्र्यम्बक: त्रिनयन: त्रीणि चन्द्र सूर्याग्निरूपाणि नयनानि यस्य) चन्द्र, सूर्य तथा अग्नि रूपी तीन तेज हैं, नेत्रों के समान जिसके, ऐसे भगवान् त्र्यम्बक हैं।

यथा वृक्षस्य संपुष्पितस्य दूराद्गन्धो वात्येवं पुण्यस्य कर्मणो दूराद्गन्धो वाति (तै.आ.१०।९) जिस प्रकार सुगन्धित फूलों से भरे हुये वृक्ष की सुगन्धि दूर से ही आती है उसी प्रकार पुण्य कर्मों की सुगन्धि भी दूर से ही आती है।

अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म् ।
होता॑रं रत्न॒धात॑मम् ॥

साम. पूर्वार्चिक, क्र. सं. ६०५, ऋग्.१।१।१

(पुरोहितम्) यज्ञ आदि प्रत्येक श्रेष्ठ कार्य में जिन्हें आगे रखा जाता है अथवा सृष्टि से पूर्व अव्यक्त कारण प्रकृति को धारण करने वाले (यज्ञस्य देवम्) यज्ञ के द्वारा जिनका अर्चन एवं पूजन किया जाता है, ऐसे यज्ञ को उत्पन्न एवं प्रकाशित करने वाले, स्वयं प्रकाशमान् तथा समस्त ब्रह्माण्ड को आलोकित करने वाले (ऋत्विजम्) ऋतु ऋतु में अर्थात् सदैव पूजनीय तथा उपासना किये जाने योग्य अथवा, उत्पत्ति के समय स्थूल सृष्टि को रचने वाले (होतारम्) समस्त पदार्थों एवं सुखों को देने वाले, समस्त प्रार्थनाओं को सुनने वाले तथा यज्ञों को सम्पन्न कराने वाले, (रत्न धातमम्) समस्त प्रकार के रत्नों तथा सूर्य, चन्द्र आदि रमणीय

पदार्थों को धारण करने वाले (अग्निम् ईळे) प्रकाश स्वरुप परब्रह्म की हम स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना करते हैं ।

अग्न आ यांहि वीतयें गृणानो हृव्यदांतये ।
नि होतां सत्सि बर्हिषिं ।।

साम.पूर्वा. १।१, उत्तरा. २।१, क्र. सं. १ तथा ६६०,

ऋग्. ६।१६।१०

(अग्ने) हे प्रकाश स्वरुप परब्रह्म ! (गृणानः) हमारे द्वारा स्तुत किये हुये, (होता) हमें सब कुछ देने वाले दाता, आप (वीतये) हमें प्रकाश, ज्ञान एवं समृद्धि देने के लिये तथा (हव्य दातये) अन्न आदि समस्त सुखकारी पदार्थ उपलब्ध कराने के लिये (आयाहि) आइये और (बर्हिषि नि सत्सि) हमारे द्वारा बिछाये गये कुश के आसन पर तथा हमारे हृदयाकाश में विराजिये ।

सहस्रंशीर्षा पुरुंषः सहस्राक्षः सहस्रंपात् ।
स भूमिंᳬसर्वतंस्पृत्वाऽत्यंतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।।

अथर्व. १९।६।१ (पाठभेद) यजु.३१।१
ऋग्.१०।९०।१, (पाठभेद) साम.पूर्वा. ६।४।३ क्र.सं.६१७, (पाठभेद)

वह परम पुरुष हज़ारों शिर,हज़ारों नेत्रों तथा हज़ारों पैरों वाला है। वह इस भूमि को, ब्रह्माण्ड को (सर्वतः स्पृत्वा) सब ओर से घेरकर, आच्छादित करके दश अङ्गुल के आकार वाले अथवा नाभि से दश अङ्गुल ऊपर स्थित हृदय में, अथवा दशाङ्गुलम् अर्थात् ब्रह्माण्ड के अन्दर तथा उसके बाहर भी स्थित है ।

ब्रह्माण्ड को दशाङ्गुलम् इसलिये कहते हैं कि यह पञ्च महाभूत अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथिवी तथा इनकी तन्मात्रायें, क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध से बनता है ।

वेदाहमेतं पुरुंषं महान्तं-
मादित्यवंर्णं तमंसः परस्तांत् ।-

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति,

नान्यः पन्थां विद्यतेऽयनाय ।।

यजुर्वेद. ३१।१८

(अहम् एतम् आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् महान्तं पुरुषं वेद) मैं उस आदित्य वर्ण वाले अर्थात् अज्ञान एवं अन्धकार से परे प्रकाश स्वरुप, महान पुरुष को जानता हूँ । (तम् एव विदित्वा मृत्युं अति एति) उसी को जानकर ज्ञानी भक्त मृत्यु को पार करता है, (अयनाय अन्यः पन्था न विद्यते) मोक्ष के लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है ।

विश्वतंश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो

विश्वतोबाहुरुत विश्वतंस्पात् ।

सं बाहुभ्यां धमति सं पतंत्रै-

र्द्यावाभूमी जनयंन्देव एकः ।।

यजुर्वेद. १७।१९, ऋग्. १०।८१।३

(विश्वतः चक्षुः उत विश्वतः मुखः) सब ओर नेत्रों वाला, सब ओर मुख वाला, (विश्वतः बाहुः उत विश्वतः पात्) सब ओर बाहों तथा सब ओर पैरों वाला अर्थात् सब का दृष्टा, श्रोता, ज्ञाता एवं सर्व शक्तिमान् सर्वगतः, सर्वव्यापक, (देव एकः) वह एक मात्र देव अर्थात् परमात्मा (द्यावा भूमी) द्युलोक तथा पृथिवी आदि लोकों को (पतत्रैः जनयन्) गतिशील परमाणुओं आदि से, उत्पन्न करता हुआ (बाहुभ्याम् सं धमति) अपने अनन्त बाहुबल से, अपने पराक्रम से संसार को सम्यक् रुप से प्राप्त होता है अर्थात् संसार में व्याप्त होकर तथा उसे आधार देकर स्थित रहता है ।

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू

रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।

तमेव विद्वान्न बिंभाय

मृत्योरात्मानं धीरंमजरं युवानम् ।।

अथर्ववेद. १०।८।४४

वह परब्रह्म कामना रहित, धैर्यवान, प्रज्ञावान, अमर, स्वयम्भू, रस अर्थात् आनन्द से ओत प्रोत तथा किसी भी प्रकार की न्यूनता से रहित अर्थात् सब प्रकार से पूर्ण है। उस धीर, अजर तथा सदैव तरुण रहने वाले परमात्मा को जानकर ही मृत्यु का भय दूर होता है।

ऋतावांनं वैश्वांनरमृतस्य ज्योतिंषस्पतिंम्।

अजंस्त्रं घर्ममीमहे।।

साम. उत्त. १८।४(३)।१, क्र.सं. १७०८, यजु. २६।६ (पाठभेद), अथर्व. ६।३६।१

(ऋतावानं) सत्यस्वरुप, सत्य नियमों के रक्षक तथा (ऋतस्य ज्योतिषः पतिम्) सत्य रूपी ज्योति के स्वामी एवं रक्षक (वैश्वानरस्य) समस्त मनुष्यों को ले जाने वाले, उन्हें जीवन, चेतना, प्रेरणा एवं गति देने वाले (अजस्त्रं घर्मं) निरन्तर प्रकाशित होने वाले अखण्ड ज्योति स्वरुप परमात्मा की (ईमहे) हम उपासना करते हैं, उनसे प्रार्थना करते हैं।

विश्वान् नरान् नयति इति वैश्वानरः। विश्व एनं नरा नयन्तीति वा।

निरुक्त. ७।६।२०।३

समस्त मनुष्यों को ले जाता है, गति देता है अथवा सब मनुष्य इसको प्राप्त करते हैं।

आध्यात्मिक अर्थ में वैश्वानर का अर्थ परमात्मा होगा।

अग्ने नयं सुपथां राये अस्मा-

न्विश्वांनिदेव वयुनांनि विद्वान् ।

युयोध्युस्मज्जुंहुराणमेनो

भूयिंष्ठां ते नमं उक्तिं विधेम ।।

यजुर्वेद. ४०।१६, ५।३६ तथा ७।४३, ऋग्. १।१८९।१

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म ! (अस्मान् राये सुपथा नय) हमें धन, ऐश्वर्य तथा सर्वतोमुखी अभ्युदय के लिये सुपथ अर्थात् अच्छे मार्ग से ले चलिये। हे देव ! आप हमारे (विश्वानि वयुनानि विद्वान्) समस्त कर्मों, विचारों तथा मन के भावों को जानने वाले हैं (अस्मत् जुहुराणम् एनः युयोधि) हम से कुटिलता पूर्ण पापों को अलग कर दीजिये (ते भूयिष्ठां नम उक्तिं विधेम) हम आपको बारम्बार प्रणाम करते हुये आपकी श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक स्तुति तथा उपासना करते हैं।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥

यजु. १।५

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म! (व्रतपते) आप हमारे व्रत की रक्षा करने वाले हैं, (व्रतं चरिष्यामि) मैं व्रत का आचरण करूँगा। (तत् शकेयम्) मुझे उसके लिये शक्ति दीजिये ताकि मैं व्रत पर आचरण कर सकूँ। (तत् मे राध्यताम्) मेरा वह व्रत आप पूर्ण कराइये। (इदं अहम् अनृतात् सत्यं उपैमि) व्रत यह है कि मैं असत्य से सत्य को प्राप्त होता हूँ।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥

ऋग्. ५।८२।५, यजुर्वेद. ३०।३

(सवितः देव) समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले तथा उसका पालन पोषण करने वाले, उसे चेतना एवं प्रेरणा देने वाले सविता देव, हे परब्रह्म ! (विश्वानि दुरितानि परा सुव) हमारे समस्त दुःखों तथा अवगुणों को हमसे दूर कर दीजिये (यद् भद्रं तत् नः आसुव) और जो हमारे लिये कल्याणकारी हो, उसे हमारे पास लाइये, हमें प्राप्त कराइये।

हमारा कल्याण किसमें है, यह भगवान् ही जानता है। इससे सुन्दर और कोई प्रार्थना क्या हो सकती है ? यह समर्पण तथा भक्ति की चरम सीमा है।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य

जातः पतिरेकंऽआसीत्।

स दांधार पृथिवीं द्यामुतेमां

कस्मै देवायं हविषां विधेम।।

यजु. १३।४,२३।१,२५।१०, अथर्व.४।२।७, ऋग्.१०।१२१।१

(हिरण्यगर्भः अग्रे समवर्तत) सूर्य, चन्द्र आदि प्रकाशमान पदार्थों को गर्भ के समान अपने अन्दर धारण करने वाला प्रकाशस्वरुप परब्रह्म ही सृष्टि के पूर्व में था तथा (भूतस्य एकः जातः पतिः आसीत्) समस्त प्राणियों एवं पदार्थों का एक मात्र प्रसिद्ध स्वामी एवं रक्षक था और है। (सः इमाम् पृथिवीं उत् द्याम् दाधार) उस ईश्वर ने इस पृथिवी तथा द्युलोक आदि को धारण किया है। (कस्मै देवाय हविषा विधेम) ऐसे सुख स्वरुप परमात्मा की हम अपने अन्तःकरण से भक्तिपूर्वक उपासना करें।

य आंत्मदा बंलदा यस्य विश्वं

उपासंते प्रशिषं यस्यं देवाः ।

यस्यं छायामृतं यस्यं मृत्युः

कस्मै देवायं हविषां विधेम ।।

अथर्व. ४।२।१, (पाठभेद) ऋग्. १०।१२१।२, यजुर्वेद. २५।१३

जो हमें आत्मिक ज्ञान एवं आत्मिक तथा शारीरिक बल देने वाला है, समस्त विश्व जिसकी उपासना करता है, सभी देव तथा विद्वान् जिसकी आज्ञा का, जिसके अनुशासन का पालन करते हैं, जिसकी छायां, जिसका आश्रय अथवा जिसकी कृपा ही अमृत है और जिसकी अकृपा ही मृत्यु है, ऐसे सुखस्वरुप परब्रह्म की हम अपने अन्तःकरण से भक्तिपूर्वक अनन्यभाव से अर्चना एवं उपासना करें।

य: प्राणतो निमिषतो महित्वैक

इद्राजा जगतो बभूव ।

य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पद:

कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

अथर्व. ४।२।२, (पाठभेद), ऋग्. १०।१२१।३, यजुर्वेद. २३।३, २५।११

(य:) जो (प्राणत: निमिषत: जगत:) प्राणधारी तथा पलक झपकाने वाले समस्त प्राणियों का (महित्वा) अपनी महिमा से (एक: इत् राजा बभूव) एक अकेला ही स्वामी है और (य:) जो (अस्य द्विपद: चतुष्पद: ईशे) इस संसार के द्विपद (दो पैरों वाले) तथा चतुष्पद (चार पैरों वाले) अर्थात् समस्त प्राणियों पर शासन करता है, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) ऐसे सुखस्वरूप परमात्मा की हम अपने अन्त:करण से भक्तिपूर्वक उपासना करें ।

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य

समुद्रꣳ रसया सहाहु: ।

यस्येमा: प्रदिशो यस्य बाहू

कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

अथर्व. ४।२।५, (पाठभेद), ऋग्. १०।१२१।४, यजुर्वेद. २५।१२

(यस्य महित्वा इमे हिमवन्त:) जिसकी महिमा से ये हिम मण्डित पर्वत स्थित हैं, (यस्य रसया सह समुद्रं आहु:) नदियों के साथ समुद्र जिसकी महिमा का गान करते हैं (इमा: प्रदिशा: यस्य बाहू) तथा ये दिशायें एवं उप दिशायें जिसकी बाहों की भाँति फैली हुयी हैं, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) ऐसे सुखस्वरूप परमात्मा की हम अपने अन्त:करण से श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक उपासना करें।

मा मां हिꣳसीज्जनि॒ता यः पृथि॒व्या
यो वा॒ दिवꣳ स॒त्यधर्मा॒ व्यानट् ।
यश्चा॒पश्च॒न्द्राः प्रथ॒मो ज॒जान॒
कस्मै दे॒वाय ह॒विषा विधेम ।।

ऋग्. १०।१२१।९, (पाठभेद), यजुर्वेद. १२।१०२

(मा मा हिंसीत् जनिता यः पृथिव्या) जो पृथिवी को उत्पन्न करने वाला है, वह प्रजापति मुझे किसी प्रकार से दण्डित न करे, मुझे किसी प्रकार की वेदना, कष्ट अथवा दुःख न दे (यः वा सत्यधर्मा दिवं व्यानट्) तथा सत्य का धारण करने वाला जो परमात्मा द्युलोक का सृजन करके उसमें व्याप्त रहता है, (च यः प्रथमः आपश्चन्द्राः जजान) तथा जिस सर्वश्रेष्ठ एवं सर्व प्रथम प्रकट होने वाले परमात्मा ने मनुष्यों को तथा सुख देने वाले जल को उत्पन्न किया है, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस सुखस्वरुप परब्रह्म की हम श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक अपने अन्तःकरण से उपासना करें ।

(मनुष्या वा आपश्चन्द्राः) मनुष्य आपश्चन्द्र हैं क्योंकि (मनुष्या एव हि यज्ञेनाप्नुवन्ति चन्द्रलोकं पितृमार्गानुसारिणः) मनुष्य ही पितृमार्ग का अनुसरण करते हुये यज्ञ के द्वारा चन्द्रलोक को प्राप्त करते हैं। अथवा, (यः च आपः चन्द्राः प्रथमः जजान) यश्च चन्द्राः आह्लादिका जगत्कारणभूता आपो जलानि प्रथमः आदिभूतः सन् जजानोत्पादितवान् तद्द्वारा मनुष्यानुत्पादितवानित्यर्थः। सर्व प्रथम प्रकट होने वाले जिस परमात्मा ने सुख देने वाले उस जल को उत्पन्न किया, जिससे जगत् की उत्पत्ति होती है और फिर जल से मनुष्यों को उत्पन्न किया ।

शतपथ ब्राह्मण ७।३।१।२०

येन॒ द्यौरु॒ग्रा पृथि॒वी च॑ दृ॒ढा
येन॒ स्वस्तभि॒तं येन॒ नाकः ।-

यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

ऋग्. १०।१२१।५, यजुर्वेद. ३२।६

(येन द्यौः उग्रा पृथिवी च दृढा) जिसने द्युलोक तथा तीक्ष्ण स्वभाव वाले सूर्य आदि देवों एवं दृढ पृथिवी को धारण कर रखा है, (येन स्वः स्तभितं येन नाकः) जिसने सुख तथा विशेष सुखपूर्ण स्थान अर्थात् स्वर्ग तथा मोक्ष को धारण कर रखा है, (यः अन्तरिक्षे रजसः विमानः) जो अन्तरिक्ष में विशेष मान अर्थात् गति से युक्त, समस्त लोक लोकान्तरों को धारण करता है तथा उन्हें गति देता है, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) ऐसे सुखस्वरूप परब्रह्म की हम अपने अन्तःकरण से श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक उपासना एवं स्तुति करें ।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा
जातानि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं
स्याम पतयो रयीणाम् ।।

अथर्व. ७।८०।३,(पाठभेद) यजु. २३।६५,(पाठभेद) ऋग्.१०।१२१।१०

(प्रजापते) समस्त प्राणियों की रक्षा करने वाले तथा उनके स्वामी हे परमात्मा ! (ता एतानि विश्वा जातानि) उन, इन समस्त उत्पन्न हुये प्राणियों एवं पदार्थों का (त्वत् अन्यः न परि बभूव) आपके अतिरिक्त अन्य कोई स्वामी नहीं है अर्थात् केवल आप ही इस विश्व को नियन्त्रण में रखने में समर्थ हैं, सर्वोपरि हैं । (यत् कामाः ते जुहुमः) जिन जिन कामनाओं के साथ हम आपकी शरण में आयें, आपकी उपासना करें (तत् नः अस्तु) हमारी वे समस्त कामनायें पूर्ण हों, हमारे मनोवाञ्छित फल एवं उद्देश्य हमें प्राप्त हों, (वयं स्याम पतयो रयीणाम्) तथा हम लोग समस्त प्रकार के धनों एवं ऐश्वर्यों के स्वामी हों ।

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता
धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशा-
नास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ।।

यजु. ३२।१०

(यत्र देवाः) जिस परमेश्वर में सभी विद्वान् लोग (अमृतम् आनशानः) मोक्ष अथवा अमृतत्व का उपभोग करते हुये (तृतीये धामन् अधि ऐरयन्त) तृतीय धाम अर्थात् परमात्मा के सर्वश्रेष्ठ परम धाम में स्वच्छन्द विचरण करते हैं, (सः नः बन्धुः) वही हमारा बन्धु है, (जनिता) वही हमें जन्म देने वाला हमारा पिता है, (सः विधाता) वही हमें धारण करने वाला, हमारा पालन पोषण करने वाला तथा हमारे कर्मों के फलों का विधान करने वाला है और (धामानि वेद भुवनानि विश्वा) वही समस्त लोक लोकान्तरों तथा स्थानों आदि को जानने वाला है ।

देव का अर्थ देवता के साथ साथ विद्वान् भी होता है ।

विद्वांसो हि देवाः (शतपथ ब्राह्मण)

शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्वति ।
मा ते युयोम संदृशः ।।

अथर्व. ७।६८।३

(सरस्वति) हे सरस्वति ! (नः शिवा शंतमा सुमृडीका भव) हमारे लिये मंगलकारी, अत्यन्त कल्याणकारी तथा उत्तम सुख देने वाली होइये। (ते संदृशः मा युयोम) आपकी कृपा दृष्टि एवं सम्यक् दर्शन से हम कभी वञ्चित न हों ।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धिया वसुः ।।

साम. पूर्वा. २।१०।५ क्र. सं. १८९, यजु. २०।८४, ऋग्. १।३।१०

(पावका नः सरस्वती) सरस्वती हमें पवित्र करने वाली तथा (वाजेभिः अन्नैः) अन्न आदि पदार्थों से युक्त होने के कारण (वाजिनीवती अन्नवती) अन्नपूर्णा हैं। (धियावसुः कर्मवसुः) बुद्धि तथा ज्ञान पूर्वक किये गये श्रेष्ठ कर्मों से धन देने वाली सरस्वती अथवा, (धियावसुः) बुद्धि ही जिनका धन है, ऐसी सरस्वती (यज्ञं वष्टु यज्ञं वहतु) हमारे यज्ञ, हमारे श्रेष्ठ एवं शुभ कर्मों का वहन करें, उसे सुशोभित करें, सफल करें।

वश कान्तौ

वाग्वै धियावसुः।

ऐतरेय. आर. १।१।४

अम्बिंतमे नदींतमे देविंतमे सरंस्वति।
अप्रशस्ताइंव स्मसि प्रशंस्तिमम्ब नस्कृधि।।

ऋग्. २।४१।१६

(नदीतमे) ज्ञान की श्रेष्ठतम सरिता स्वरुप अथवा श्रेष्ठतम सरिता के समान पवित्र एवं सुखी करने वाली, (अम्बितमे) हे श्रेष्ठ माँ तथा (देवितमे) हे सर्वश्रेष्ठ देवि सरस्वति ! (अप्रशस्ता इव स्मसि) हम अप्रशस्त अर्थात् अयोग्य अथवा अप्रशंसनीय के समान हैं, (अम्ब) हे माँ ! (नः प्रशस्तिम् कृधि) हमें ज्ञान एवं समृद्धि देकर प्रशंसनीय बनाइये।

धाता दंधातु नो रयिमीशांनो जगंतस्पतिंः।
स नंः पूर्णेनं यच्छतु।।

अथर्ववेद. ७।१८।१

(धाता जगतः पतिः ईशानः) सबका धारण एवं पालन पोषण करने वाले, समस्त संसार के स्वामी एवं रक्षक तथा सभी पर शासन एवं नियन्त्रण करने वाले प्रभु (नः रयिं दधातु) हमें धन एवं ऐश्वर्य दें। (स नः पूर्णेन यच्छतु) वह हमें सब कुछ पूर्णरूपेण दें अर्थात् हमारा सम्पूर्ण अभ्युदय करें, हमें सब प्रकार का सुख, समृद्धि एवं वैभव दें तथा हमारा सब प्रकार से कल्याण करें।

'पूर्णेन यच्छतु' शब्दों का प्रयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कितनी सुन्दर है यह प्रार्थना।

दिवो विष्ण उत वां पृथिव्या

महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात्।

हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैरा

प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात्॥

यजुर्वेद ५।१९ (पाठभेद), अथर्ववेद. ७।२७।८

(विष्ण) हे विष्णु ! (दिव: उत पृथिव्याः) द्युलोक तथा पृथिवी से और (महः उरोः अन्तरिक्षात्) महान विस्तृत अन्तरिक्ष से (बहुभिः वसव्यैः हस्तौ प्रणस्व) बहुत से अर्थात् अनेक प्रकार के तथा बहुत बड़ी मात्रा में धनों को अपने दोनों हाथों मे भर लीजिये (दक्षिणात् उत सव्यात्) और अपने दायें तथा बायें, दोनों हाथों से (आ प्रयच्छ) हमें प्रदान कीजिये।

कैसी श्रेष्ठ प्रार्थना है यह!

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि

चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे।

पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां

स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम्॥

ऋग्. २।२१।६

(इन्द्र) हे इन्द्र !, हे प्रभो ! (अस्मे श्रेष्ठानि द्रविणानि) हमें श्रेष्ठ धन, (दक्षस्य चित्ति) कर्म करने का सामर्थ्य एवं उत्साह तथा सत्कर्म का ज्ञान और (सुभगत्वं) सौभाग्य (धेहि) दीजिये, (रयीणां पोषं तनूनां अरिष्टिं) धन एवं ऐश्वर्य का पोषण तथा शरीरों की निरोगिता दीजिये (वाचः स्वाद्मानं अह्नाम् सुदिनत्वं) एवं वाणी की मधुरता तथा दिनों की उत्तमता दीजिये अर्थात् हमारे जीवन के प्रत्येक दिन को उत्तम बनाइये।

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहोमयि धेहि ॥

यजु. १९।९

हे प्रभो ! (तेज: असि तेज: मयि धेहि) आप तेजस्वी हैं, मुझ में तेज को धारण कीजिये, (वीर्यं असि वीर्यं मयि धेहि) आप पराक्रम से युक्त हैं, मुझ में पराक्रम धारण कीजिये अथवा मुझे पराक्रम दीजिये, (बलं असि बलं मयि धेहि) आप बल से युक्त हैं, मुझे बल दीजिये, (ओजः असि ओजः मयि धेहि) आप ओजस्वी हैं, मुझ में ओज अर्थात् कान्ति को धारण कीजिये, (मन्यु: असि मन्युं मयि धेहि) आप दुष्टों पर क्रोध करने वाले हैं, मुझ में उस क्रोध को धारण कीजिये, अर्थात् मुझे भी शत्रु पर क्रोध करने की क्षमता दीजिये, (सह: असि सह: मयि धेहि) आप शक्ति से युक्त हैं, शत्रु का पराभव करने वाले हैं, शत्रु का पराभव करने की वह शक्ति मुझे दीजिये।

ओज: कान्ति: । सहो बलम् । मन्यु: क्रोध: ।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत॑ꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

यजुर्वेद. ३६।२४

(देवहितं) परब्रह्म द्वारा स्थापित,देवों का हित करने वाला (तत्) वह (शुक्रं) पवित्र, पाप रहित, प्रकाशमान (चक्षु:) आदित्य रूपी जगत का चक्षु (पुरस्तात् उच्चरत्) सृष्टि के आदि काल से ही ऊपर उदित हुआ है।

अथवा, (तत् चक्षुः वह परब्रह्म समस्त संसार का चक्षु है, सबका मार्ग दर्शक है, सब को ज्ञान एवं प्रकाश देने वाला है, (देवहितम्) वह

विद्वानों का हित करने वाला है, (शुक्रम्) शुद्ध स्वरूप है (पुरस्तात् उत् चरत) तथा अनादि काल से सबके ऊपर अपने दिव्य स्वरूप में स्थित है। (त्रिपाद् ऊर्ध्व उदैत् पुरुष: – यजुर्वेद)।

परमात्मा की कृपा से हम (पश्येम शरद: शतं) सौ वर्षों तक देखें, (जीवेम शरद: शतं) सौ वर्षों तक जीवित रहें, (शृणुयाम शरद: शतं) सौ वर्षों तक सुनें, (प्र ब्रवाम शरद: शतं) सौ वर्षों तक ठीक प्रकार बोल सकें, (अदीना: स्याम शरद: शतं) सौ वर्षों तक दीनता को प्राप्त हुये बिना, स्वाभिमान एवं सम्मान पूर्वक रहें, (भूय: च शरद: शतात्) तथा सौ वर्षों से भी अधिक समय तक हृष्ट पुष्ट होकर सुखी जीवन व्यतीत करें।

स नं: पितेवं सूनवेऽग्ने सूपायनो भंव।
सचंस्वा न: स्वस्तयें ।।

ऋग्. १।१।९, यजुर्वेद. ३।२४

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म ! (पितेव सूनवे) जिस प्रकार पिता अपने पुत्र के लिये सुगमता से प्राप्त होने योग्य होता है, उसी प्रकार (स नः वह आप हमें (सूपायनो) (सु+उपायनः सुखेन उपैतुं शक्य:) सुख से प्राप्त होने योग्य तथा सुख पहुँचाने वाले (भव) होइये और (सचस्वा न: स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये हमें श्रेष्ठ कर्मों से सम्बद्ध कीजिये, हमारे ऊपर कृपा दृष्टि रखिये।

सचत इति सेवमानस्य। निरुक्त. ३।४।२१

सेवन करने वाले कृपालु।

तमीशांनं जगंतस्तस्थुषस्पतिं
धियञ्जिन्वमवंसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदंसामसंद्वृधे
रंक्षिता पायुरदंब्ध: स्वस्तयें ।।

ऋग्. १।८९।५, यजुर्वेद. २५।१८

(वयम्) हम (जगत: तस्थुष: पतिम्) चराचर जगत् का पालन

पोषण तथा रक्षा करने वाले, (धियं जिन्वम्) बुद्धि को पवित्र करने वाले, उसे प्रसन्न एवं तृप्त करने वाले, (तम् ईशानम्) सब पर शासन करने वाले उस ईश्वर का (अवसे हूमहे) अपनी रक्षा के लिये आह्वान करते हैं, (यथा पूषा) जिससे कि सब का पोषण करने वाले पूषा देव (नः वेदसाम् वृधे) हमारे ज्ञान, धन एवं ऐश्वर्य की वृद्धि तथा (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये (अदब्धः रक्षिता पायुः असत्) आलस्य रहित एवं अपराजित होकर हमारी रक्षा करने वाले तथा हमारा पालन करने वाले हों।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः

स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।

स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमिः

स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

ऋग्. १।८९।६, साम. उत्त. २१।९।३ क्र. सं. १८७५, यजु. २५।१९

(वृद्धश्रवाः) महान यश तथा प्रचुर अन्न एवं धन वाले (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (नः स्वस्ति) हमारे लिये कल्याणकारी हों, (स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः) सर्वज्ञ तथा सबका पालन पोषण करने वाले परमात्मा हमारा कल्याण करें, (अरिष्टनेमिः) कभी नष्ट न होने वाले दृढ़ वज्र को धारण करने वाले तथा (ताक्ष्र्यः) भक्तों के प्रयोजनों को शीघ्र पूर्ण करने वाले प्रभु (नः स्वस्ति) हमारा कल्याण करें, (स्वस्ति नः बृहस्पतिः दधातु) सूर्य चन्द्र आदि महान देवों एवं महान शक्तियों के स्वामी परब्रह्म हमारे लिये सुख एवं कल्याण को धारण करें।

श्रवः श्रवणीयं यशः अर्थात् श्रवण करने योग्य यश। **वृद्धश्रवाः वृद्धं प्रभूतं श्रवः श्रवणीयं यशः अन्नं धनं कीर्ति वा यस्य सः**। महान अन्न धन तथा यश है जिनका, वह परमात्मा वृद्धश्रवाः हैं। (ताक्ष्र्यः—**तूर्ण अर्थ रक्षति इति ताक्ष्र्यः**, निरुक्त १०।३।१७, हमारी प्रार्थना एवं प्रयोजन को शीघ्र पूरा करने वाले परमात्मा ताक्ष्र्य हैं।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा

भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभि-

र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ।।

ऋग्.१।८९।८, (पाठभेद), साम. उत्त. २१।९।२ क्र. सं. १८७४, यजु.२५।२१

(यजत्राः देवाः) हे यजनीय देवो! (भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम) हम अपने कानों से कल्याणकारी तथा प्रिय वचनों को सुनें, (भद्रं पश्येम अक्षभिः) हम अपनी आँखों से कल्याणकारी तथा मनोहारी दृश्यों को देखें तथा (स्थिरैः अङ्गैः) हृष्ट पुष्ट अङ्गों से युक्त (तनूभिः) शरीरों से हम (तुष्टुवांसः) परमात्मा की स्तुति करते हुये (देवहितं) देवों एवं विद्वानों के लिये हितकारी (यदायुः) जो हमारी आयु है, (वि अशेमहि) उसे भली प्रकार प्राप्त करें अर्थात् हम अपने जीवन पर्यन्त देवों एवं विद्वानों का हित रक्षण करते रहें ।

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं

बृहस्पतिर्मे तद्दधातु । शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ।।

यजुर्वेद. ३६।२

(मे) मेरे (चक्षुषः) नेत्र की तथा (हृदयस्य) हृदय एवं अन्तःकरण तथा बुद्धि की (यत्) जो (छिद्रम्) न्यूनता अथवा दोष है (वा) तथा मेरे (मनसः) मन की (अतितृण्णम्) जो व्याकुलता है, (मे तत्) मेरे उस दोष को, न्यूनता को (बृहस्पतिः) सूर्य आदि महान देवों के स्वामी परमात्मा (दधातु) पूर्ण करें, ठीक करें। (भुवनस्य यः पतिः) समस्त संसार का जो स्वामी एवं रक्षक है, (शं नः भवतु) वह परमेश्वर हमारे लिये कल्याणकारी हो ।

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा ।

शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ।।

अथर्व. १९।९।६, (पाठभेद) ऋग्.१।९०।९, यजु. ३६।९

(मित्रः नः शं) सब का प्रिय मित्र जगदीश्वर, हमारे लिये कल्याणकारी हो, (शं वरुणः) सर्व साक्षी तथा सर्वश्रेष्ठ परमात्मा हमारे लिये कल्याणकारी हो। (शं नः भवतु अर्यमा) न्यायकारी ईश्वर हमारे लिये कल्याणकारी हो। (बृहस्पतिः) वेदवाणी एवं महान ब्रह्माण्ड का रक्षक (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर (नः शम्) हमारे लिये कल्याणकारी हो, (उरुक्रमः विष्णुः नः शम्) महान पराक्रम वाला सर्वव्यापक परमात्मा हमारे लिये कल्याणकारी हो।

व्याप्नोतीति विष्णुः। सर्वव्यापक होने से भगवान् का नाम विष्णु है।

शं नो वातः पवताᳬ शं नस्तपतु सूर्यः।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु॥

यजुर्वेद. ३६।१०

(शं नः वातः पवताम्) वायु हमारे लिये सुखकारी होकर बहे, (शं नः तपतु सूर्यः) सूर्य हमारे लिये सुखकारी होकर तपे, (शं नः कनिक्रदत् देवः) कड़कड़ाने वाला विद्युत् देव हमारे लिये सुखकारी हो (पर्जन्यः अभि वर्षतु) तथा मेघ हमारे ऊपर चारों ओर से सुखकारी वर्षा करें।

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु
शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु
शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः॥

अथर्व. १९।१०।८, (पाठभेद) ऋग्. ७।३५।८

(शं नः सूर्यः उरुचक्षा उदेतु) विस्तृत तेज एवं प्रकाश वाला सूर्य हमारे लिये सुखकारी होकर उदित हो, (शं नः चतस्रः प्रदिशो भवन्तु) चारों दिशायें एवं प्रदिशायें हमारे लिये सुखकारी हों। (शं नः पर्वताः ध्रुवयः भवन्तु) अचल पर्वत हमारे लिये शान्ति एवं सुख देने वाले हों, (शं नः सिन्धवः) नदियाँ एवं समुद्र हमारे लिये सुखकारी हों (शं उ नः सन्तु आपः) तथा जल हमारे लिये शान्ति एवं सुख देने वाले हों।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ।।

यजु.३६।१७

(द्यौः शान्तिः) द्युलोक हमें शान्ति प्रदान करे, अन्तरिक्ष हमें शान्ति प्रदान करे (पृथिवी शान्तिः) पृथिवी हमें शान्ति प्रदान करे, (आपः शान्तिः) जल हमें शान्ति प्रदान करें, (ओषधयः शान्तिः) ओषधियाँ हमें शान्ति प्रदान करें, (वनस्पतयः शान्तिः) वनस्पतियाँ हमें शान्ति प्रदान करें, (विश्वे देवाः शान्तिः) समस्त देव एवं विद्वान् हमें शान्ति प्रदान करें, (ब्रह्म शान्तिः) ब्रह्म तथा वेद हमें शान्ति प्रदान करें, (सर्वं शान्तिः) समस्त जगत हमें शान्ति प्रदान करे (शान्तिः एव शान्तिः) चारों ओर शान्ति ही शान्ति हो (सा शान्तिः मा एधि) तथा वह परम शान्ति मुझे प्राप्त हो ।

ब्रह्म

ब्रह्मं जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि
सीमतः सुरुचो वेन आवः।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः
सतश्च योनिमसतश्च वि वः।।

साम. पूर्वा. ३।३।९, क्र.सं. ३२१, यजु. १३।३
अथर्व. ४।१।१ तथा ५।६।१

(प्रथमं पुरस्ताद्) सृष्टि की आदि से भी पहले अर्थात् अनादि काल से ज्ञान स्वरूप, सर्वज्ञ तथा सबको उत्पन्न करने वाला ब्रह्म प्रकट हुआ, उसने (वेनः सुरुचः) अपने मेधावी, कमनीय तथा शोभनीय रूप से प्रकाशित परम तेज को (सीमतः) सर्वत्र मर्यादा पूर्वक (वि+आवः व्यावः व्यवृणोत) फैलाया। (बुध्न्या विष्ठाः अस्य उपमाः) आकाश में विविध

स्थानों में स्थित सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह तथा नक्षत्रादि जिसकी उपमा स्वरुप हैं, (सः) उस ब्रह्म ने (सतः च असतः च योनिम्) सत् और असत् अर्थात् स्थूल एवं सूक्ष्म, व्यक्त एवं अव्यक्त पदार्थों की योनि अर्थात् उत्पत्ति की कारण भूत प्रकृति को (वि वः) विशेष रूप से विस्तृत किया अर्थात् अनेक रुपों में परिवर्तित करके उसका सर्वत्र विस्तार किया।

यद्यपि सत् शब्द मुख्य रूप से परमात्मा के लिये प्रयोग किया जाता है (ओ३म् तत् सत्), सत् तथा असत् के अनेक अर्थ हैं-

सत्- व्यक्त अर्थात् जो प्रत्यक्ष रूप से प्रकट है।

असत्- अव्यक्त, जो प्रकट नहीं है।

सत्- अविनाशी

असत्- नाशवान्

सामान्य भाषा में सत् का अर्थ है अच्छा और असत् का अर्थ है बुरा। जैसे 'असतो मा सद्गमय' आदि।

मृत्युर्वै तमो ज्योतिरमृतं। शतपथ. १४।४।३।३२

अन्धकार मृत्यु है, ज्योति अमृत है।

पाप्मानं मृत्युम्। शतपथ.१४।४।३।११

पाप मृत्यु रुपी है, मृत्यु के समान है।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ।।

श्वेताश्वतर उप. ४।४।२, यजु. ३२।१

वही अग्नि है, वही सूर्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है, वही शुक्र है, वही जल है, वही प्रजापति है तथा वही ब्रह्म है।

यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि उपरोक्त अनेक नामों से एक ब्रह्म का ही बोध होता है। स्पष्ट है कि वेद में बहु देवता वाद नहीं है, केवल एक ब्रह्म की ही उपासना का विधान है। इसी आधार पर गीता ११।३९ में कहा गया है-

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ।।

आप ही वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजापति तथा प्रपितामह हैं। आपके लिये सहस्त्रों बार प्रणाम हो, आपको पुनः पुनः नमन एवं प्रणाम।

वेनस्तत्पंश्यन्निहिंतं गुहा सद्यत्रविश्वं भवत्येकंनीडम्। तस्मिंन्निदꣳ सं च वि चैंतिसर्वꣳ स ओतःप्रोतंश्च विभूः प्रजासुं।।

अथर्व. २।१।१ (पाठभेद), यजु. ३२।८

(वेनः) ज्ञान के प्रकाश से युक्त श्रद्धावान् पुरुष (तत् सत्) उस अविनाशी नित्य परमात्मा को (निहितं गुहा पश्यत्) हृदय की गुहा में स्थित देखता है (यत्र विश्वं भवति एक नीडं) जहाँ, जिस परमात्मा में समस्त विश्व एक घोंसले में रहने वाले प्राणियों की तरह एक रूप हो जाता है। (तस्मिन् इदं सर्व सं एति च) प्रलयावस्था में वह विश्व उस परमात्मा में लीन हो जाता है (च वि एति) तथा सृष्टि उत्पत्ति के समय उससे अलग हो जाता है (स विभूः) वह सर्वत्र एवं सर्व व्यापक परमात्मा (प्रजासु ओतः प्रोतः च) प्रजाओं में ताने बाने की तरह ओत प्रोत है।

(यत्र विश्वं भवति एक नीडं) का तात्पर्य यह है कि पक्षियों के घोंसले के समान, जिसमें एक प्रकार के ही पक्षी रहते हैं, परमात्मा एक ऐसा आश्रय स्थान है, जिसमें समस्त विश्व, समस्त प्राणी एक रूप हो जाते हैं। परमात्मा के समक्ष समस्त प्राणी एक समान हैं, उनमें कोई भिन्नता नहीं है क्योंकि सभी उसकी सन्तान हैं।

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आंविवेश भुवंनानि विश्वा। प्रजापंतिः प्रजयां सꣳ रराणस्त्रीणि ज्योतींꣳषि सचते स षोडशी।।

यजु. ८।३६, ३२।५ (पाठभेद)

(यस्मात् परः अन्यः न जातः अस्ति) जिससे श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं है,(यः आविवेश भुवनानि विश्वा) जो समस्त लोक लोकान्तरों तथा समस्त

प्राणियों एवं पदार्थों में व्याप्त हो रहा है, (सः षोडशी) सोलह कलायें उत्पन्न करने वाला वह (प्रजापतिः प्रजया संरराणः) प्रजापति समस्त प्रजाओं अर्थात् प्राणियों के साथ सम्यक् रूप से रमण करता हुआ, उन्हें रमाता हुआ तथा स्वयं उनमें रमता हुआ (त्रीणि ज्योतींषि सचते) सूर्य, विद्युत एवं अग्नि, इन तीन ज्योतिओं को उत्पन्न करके धारण करता है।

प्रश्नोपनिषद् में षोडश कलाओं का वर्णन निम्न प्रकार है-

ब्रह्म ने (१) प्राण को उत्पन्न किया तथा प्राण से

२. श्रद्धा
३. आकाश
४. वायु
५. अग्नि
६. जल
७. पृथिवी
८. इन्द्रिय
९. मन तथा
१०. अन्न को उत्पन्न किया और अन्न से
११. वीर्य
१२. तप
१३. मन्त्र
१४. कर्म
१५. लोक तथा लोकों में
१६. नाम

इन्द्रं मि॒त्रं वरु॑णम॒ग्निमा॑हु॒रथो॑
दि॒व्यः स सु॑प॒र्णो ग॒रुत्मा॑न्।
एक॒ं सद्विप्रा॑ बहु॒धा वद॑-
न्त्य॒ग्निं य॒मं मा॑त॒रिश्वा॑नमाहुः ॥

अथर्व. ९।१०।२८, ऋग्. १।१६४।४६

(एकं सत्) अविनाशी ब्रह्म एक ही है। उसी का विद्वान् लोग बहुत

प्रकार से, अनेक नामों से वर्णन करते हैं। उसी को इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य सुपर्ण, गरुत्मान्, यम तथा मातरिश्वा कहते हैं।

इससे स्पष्ट है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि भिन्न भिन्न देवता नहीं हैं, प्रत्युत् एक परमात्मा के ही भिन्न भिन्न नाम हैं। यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि अग्नि, वायु, मित्र, वरुण, आदित्य, चन्द्रमा आदि के अर्थ प्रत्येक स्थान पर परमात्मा नहीं होते, प्रत्युत मन्त्र के सन्दर्भ के अनुसार बदल जाते हैं।

ब्रह्मंणा भूमिर्विहिंता ब्रह्म द्यौरुत्तंरा हिता।
ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिंक्षं व्यचो हितम्।।

अथर्व. १०।२।२५

(ब्रह्मणा भूमिः विहिता) ब्रह्म के द्वारा यह पृथिवी विशेष प्रकार से स्थापित की गयी है, (ब्रह्म द्यौः उत्तरा हिता) ब्रह्म ने द्युलोक को ऊपर रखा है (च ब्रह्म इदं अन्तरिक्षं) तथा ब्रह्म ने ही इस अन्तरिक्ष को (ऊर्ध्वं तिर्यक् व्यचः हितम्) ऊपर, तिरछा तथा चारों ओर फैला हुआ स्थापित किया है।

यो विद्यात्सूत्रं वितंतं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रंस्य यो विद्यात्स विंद्याद् ब्राह्मंणं महत्।।

अथर्व. १०।८।३७

(यः विततं सूत्रं विद्यात्) जो उस सर्वत्र फैले हुये सूत्र को जानता है, (यस्मिन् इमाः प्रजाः ओताः) जिसमें ये प्रजायें पिरोई हुई हैं और (सूत्रस्य सूत्रं यः विद्यात्) जो उस सूत्र के सूत्र को भी जानता है, (सः महत् ब्राह्मणं विद्यात्) वह उस महान् ब्रह्म को जानता है।

सूत्रात्मा वायु अथवा समष्टि प्राण ही वास्तव में वह सूत्र है जिसमें यह समस्त प्राणी पिरोये हुये हैं और इस विश्व प्राण का सूत्र वह ज्येष्ठ ब्रह्म है।

वायुर्वै गौतम तत्सूत्रम्। वायुना वै गौतम सूत्रेणायं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि संदब्धानि भवन्ति। शतपथ. १४।६।७।६

हे गौतम! वह सूत्र वायु है। इसी वायु रूपी सूत्र के द्वारा यह लोक परलोक और सब भूत बंधे हुये हैं।

प्रजापंतिश्चरति गर्भे अन्तरजांयमानो बहुधा वि जांयते। तस्य योनिं परिंपश्यन्ति धीरास्तस्मिंन्ह तस्थुर्भुवंनानि विश्वां।।

अथर्व. १०।८।१३ (पाठभेद), यजु. ३१।१९

(प्रजापतिः चरति गर्भे अन्तः) प्रजापति गर्भ के अन्दर प्रवेश करता है तथा (अजायमानः बहुधा विजायते) अजायमान होते हुये भी बहुत प्रकार से जन्म लेता है। (तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीराः) उसके स्वरूप को धीर पुरुष भली प्रकार देखते हैं। (तस्मिन् ह तस्थुः भुवनानि विश्वा) उसी परमात्मा में समस्त लोक स्थित हैं।

मंत्र के अन्तिम अंश से यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ प्रजापति का अर्थ परमात्मा है, प्राण अथवा जीवात्मा नहीं।

त्वं स्त्री त्वं पुमांनसि त्वं कुंमार उत वां कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेनं वञ्चसि त्वं जातो भंवसि विश्वतोमुखः।।

श्वेता. उप. ४।३, अथर्व. १०।८।२७

हे परमात्मन् ! (त्वं स्त्री) आप ही स्त्री हैं, (त्वं पुमान् असि) आप ही पुरुष हैं, (त्वं कुमारः) आप ही कुमार हैं (उत वा कुमारी) और आप ही कुमारी हैं। (त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि) आप ही वृद्ध होने पर दण्ड के सहारे चलते हैं और (त्वं जातः) और आप ही अनेक प्रकार से संसार में उत्पन्न होकर (भवसि विश्वतो मुखः) समस्त प्रकार के मुखों वाले, समस्त प्रकार के रूपों वाले होते हैं।

अग्निः परेषु धामंसु कामो भूतस्य भव्यंस्य।
सम्राडेको वि रांजति।।

साम. उत्त. १८।४।३(३) क्र. सं. १७१०,
यजु. १२।११७ (पाठभेद), अथर्व ६।३६।३

(भूतस्य भव्यस्य) भूत, भविष्य (तथा वर्तमान) के प्राणि मात्र का (काम्यः) प्रायणीय अर्थात् उनकी कामना का विषय, उनकी कामनाओं को पूर्ण करने वाले, (अग्निः) सब का अग्रणी प्रकाश स्वरूप परमेश्वर ही (परेषु धामसु) दूर दूर के स्थानों में भी (सम्राट् एकः) विश्व के एक मात्र सम्राट् के रूप में (विराजति) विशेष रूप से शोभायमान हो रहा है।

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति।।

यजु. ४०।४

(एकं अनेजत् मनसः जवीयः) परमात्मा केवल एक है, वह कम्पन रहित अथवा अचल होते हुये भी मन से भी अधिक वेगवान् है। (एनत् देवाः न आप्नुवन्) उस ब्रह्म को देव अथवा इन्द्रियाँ प्राप्त नहीं कर सकतीं अर्थात् अगोचर होने के कारण वह चक्षु आदि इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता, (पूर्व अर्षत्) वह सर्वत्र पहले से ही पहुँचा हुआ है अथवा वह सबसे पुरातन है और सबको (ऋष=गति) गति, स्फूर्ति एवं प्रेरणा देने वाला है। (तत् तिष्ठत् धावतः अन्यान् अत्येति) वह स्थिर रहते हुये भी अन्य सभी दौड़ने वालों से आगे निकल जाता है। (तस्मिन् अपः मातरिश्वा दधाति) उस ब्रह्म में अथवा उसके आधार से ही, वायु जलों को मेघादि के रूप में धारण करता है अथवा उसके आधार से ही (मातरि+श्वा) माता के गर्भ में रहने वाला जीवात्मा (अपः) पूर्ण जन्म के क्षय न हुये अपशिष्ट कर्मों को (दधाति) धारण करता है।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्यतदुसर्वस्यास्य बाह्यतः।।

यजु. ४०।५

(तत् एजति) वह चलता है, (तत् न एजति) वह नहीं चलता है। (तत् दूरे तत् उ अन्तिके) वह दूर है और वह समीप है, (तत् अस्य सर्वस्य अन्तः) वह इस सब के अन्दर है (तत् उ अस्य सर्वस्य बाह्यतः) और वह इस सब के बाहर भी है

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।

यजु. ४०।८

वह सर्वव्यापक, वीर्यवान्, सर्वशक्तिमान्, तेजस्वी, शरीर रहित, निराकार, किसी प्रकार के घाव अथवा छिद्र आदि से रहित, अक्षत, स्नायु तन्तु आदि से रहित, पवित्र, निर्मल, पाप रहित, क्रान्तदर्शी, सर्वज्ञ, सर्वदृष्टा, त्रिकालदृष्टा, सब प्राणियों के मनों की वृत्तियों को जानने वाला, (परिभूः) सर्वोपरि, सर्वनियन्ता, (स्वयंभूः) स्वयं ही प्रकट होने वाला, स्वयं अपनी ही सत्ता तथा शक्ति से स्थित रहने वाला (शाश्वतीभ्यः समाभ्यः) शाश्वत रूप से अनादि काल से (याथा तथ्यतोर्थान् व्यदधात्) ठीक ठीक, यथायोग्य, यथार्थ भाव से समस्त पदार्थों अथवा कार्यों की व्यवस्था करता है।

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥

ऋग्वेद,१०।९०।२, (पाठभेद), अथर्ववेद,१९।६।४,(पाठभेद), यजुर्वेद,३१।२
सामवेद पूर्वाचिक, ६।४।५-६, क्र. सं. ६१९ (पाठभेद)

भूत, वर्तमान तथा भविष्य में, जो कुछ था, जो कुछ है और भविष्य में जो कुछ होगा, वह सब पुरुष ही है, ब्रह्म ही है। वह उस अमृतत्व अर्थात् जीवात्मा का भी ईश्वर है, स्वामी है, जो शरीर में अन्न के साथ बढ़ता है।

आत्मा शरीर में व्याप्त रहता है और शरीर अन्न से बढ़ता है किन्तु आत्मा के बिना शरीर नहीं बढ़ सकता अतः मन्त्र में आलंकारिक ढंग से आत्मा को ही अन्न के साथ बढ़ने वाला कहा गया है।

अथर्व वेद.१९।६। ४ में 'यदन्ने नाति रोहति' के स्थान पर 'यदन्येनाभवत्सह' है।

(यत् अन्येन सह अभवत्) जो दूसरे के साथ अर्थात् दूसरे मरणधर्मा

शरीर के साथ होता है। इसका तात्पर्य भी आत्मा से ही है क्योंकि यह नाशवान् शरीर के साथ जन्म लेता है और आजीवन उसके साथ रहता है।

एतावा॑नस्य महि॒मातो॒ ज्याया॑ँश्च॒ पूरु॑षः ।
पादो॑ऽस्य॒ विश्वा॑ भू॒तानि॑ त्रि॒पाद॑स्या॒मृतं॑ दि॒वि ।।

अथर्व.१९।६।३(पाठभेद) यजु. ३१।३,
साम पूर्वा. ६।४।६ क्र सं. ६२०, ऋग्वेद,१०।९०।३,

(एतावान् अस्य महिमा) यह समस्त ब्रह्माण्ड उसकी महिमा है, इस विश्व से केवल उसकी महिमा का बोध होता है।(च पूरुषः अतः ज्यायान्) वह पुरुष तो इससे कहीं अधिक महान् और श्रेष्ठ है, (विश्वा भूतानि अस्य पादः) समस्त चराचर जगत् केवल उसका एक पाद है, एक अंश है। (अस्य त्रिपाद् अमृतं दिवि) उसके तीन पाद द्युलोक में अपने अमृत स्वरुप में स्थित हैं।

त्रि॒पादू॒र्ध्व उदै॒त्पुरु॑षः॒ पादो॑ऽस्ये॒हाभ॑व॒त् पुनः॑।
त॒तो विष्व॒ङ् व्य॑क्रामत्साशनानश॒ने अ॒भि ।।

ऋग्वेद, १०।९०।४, यजुर्वेद,३१।४

उस परब्रह्म के एक अंश से उत्पन्न होने वाली यह सृष्टि परिवर्तित होती रहती है, पुनः पुनः उत्पन्न एवं लय होती रहती है किन्तु उसके तीन पाद अर्थात् वह पूर्ण पुरुष अपने अमृत स्वरूप में सदा अविकारी, अपरिवर्तनीय, आनन्दमय एवं ध्रुव होकर (ऊर्ध्व) सबके ऊपर प्रकाशित रहता है।

यो नः॑ पि॒ता ज॑नि॒ता यो वि॑धा॒ता धामा॑नि॒ वेद॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑। यो दे॒वानां॑ नाम॒धा एक॑ ए॒व तꣳ स॑म्प्र॒श्नं भुव॑ना यन्त्य॒न्या।।

अथर्व. २।१।३ (पाठभेद) ऋग्. १०।८२।३
यजु. १७।२७

(यो नः पिता) जो हमारा पिता, पालन कर्ता तथा रक्षा करने वाला, (जनिता) जन्म देने वाला, (विधाता) जगत् का निर्माण करने वाला तथा कर्मों के अनुसार फल देने वाला है, (यः विश्वा भुवनानि) जो समस्त लोकों तथा (धामानि वेद) स्थानों को जानता है, (यः एकः एव) जो केवल एक ही है और जो (देवानां नामधा) समस्त देवों का नाम धारण करता है अर्थात् अग्नि, वायु, आदित्य आदि देवों के नाम भी जिसके लिये प्रयोग किये जाते हैं, (क्योंकि ये देव वास्तव में उसके द्वारा प्रदत्त शक्ति का ही प्रयोग करते हैं) (तं सं प्रश्नम्) उसी उत्तम प्रकार से प्रश्न किये जाने योग्य परमात्मा के प्रति (अन्या भुवना यन्ति) समस्त भुवन पहुँचते हैं अर्थात् समस्त लोक लोकान्तर उसी में समर्पित हैं, उसी पर आधारित हैं तथा अन्त में उसी में लीन हो जाते हैं।

भगवान् के विषय में किसी ज्ञानी से प्रश्न पूछने पर ही उसके विषय में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः।।

गीता. ४।३४

विनम्रता पूर्वक प्रणाम करके, भली प्रकार प्रश्न पूछकर तथा सेवा करके तत्वदर्शी ज्ञानियों से ज्ञान प्राप्त करो। वे ज्ञानी तुम्हें ज्ञान का उपदेश करेंगे।

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेकं एव नमस्योऽ विक्ष्वीड्यः। तं त्वां यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम्।।

अथर्व. २।२।१

(यः दिव्यः गन्धर्वः) जो पृथिवी आदि को धारण करने वाला है, (भवनस्य पतिः) जो समस्त जगत् का स्वामी है, (विक्षु एक एव नमस्यः ईड्यः च) संसार में जो केवल एक ही नमस्कार किये जाने तथा स्तुति

किये जाने योग्य है, ऐसे (दिव्य देव) दिव्य देव, हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म! (तं त्वा यौमि ब्रह्मणा) उस आपसे मैं ज्ञान के द्वारा संयुक्त होता हूँ। (ते नमः अस्तु) आपके लिये प्रणाम हो, (दिवि ते सधस्थम्) आपका स्थान द्युलोक में है, परम व्योम में है।

गन्धर्वः- (गाँ पृथिवीं धारयतीति गन्धर्वः) निरु. १।१

स हि दिवः स पृथिव्या ऋतस्था,
महीं क्षेमं रोदसी अस्कभायत्।
महान् मही अस्कभायद् वि,
जातो द्यां सद्म पार्थिवं च रजः।।

अथर्व. ४।१।४

(स हि दिवः) वही द्युलोक को तथा (स पृथिव्याः ऋतस्था) वही पृथिवी को अपने सत्य नियमों से स्थित रखने वाला है, उसी ने (मही रोदसी) महान् द्युलोक और पृथिवी को (क्षेमं अस्कभायत्) समस्त प्राणियों के घर के समान धारण किया हुआ है। (महान् जातः) प्रकट हुये उस महान् देव ने (महीं द्यां सद्म पार्थिवं रजः च) महान् द्युलोक, अन्तरिक्ष तथा हमारे विस्तृत निवास रूपी पृथिवी को (वि अस्कभायत्) पृथक् पृथक् धारण किया हुआ है।

प्र यो जज्ञे विद्वानस्य बन्धु-
र्विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति।
ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार मध्या-
न्नीचैरुच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ।।

अथर्व. ४।१।३

(यः प्र जज्ञे) जो ज्ञान स्वरूप ब्रह्म सर्व प्रथम प्रकट हुआ, (अस्य बन्धुः विद्वान्) जो विद्वान् उसका बन्धु होता है, उसका कृपा पात्र होता है, वह (विश्वा देवानां जनिता विवक्ति) समस्त देवों के जन्मों के, उनकी

उत्पत्ति आदि के विषय में सत्य विवरण का कथन करता है। (ब्रह्म ब्रह्मणः उज्जभार) परब्रह्म से ब्रह्म अर्थात् समस्त वेद तथा सत्य ज्ञान का प्रकाश हुआ है तथा (मध्यात् नीचैः उच्चैः स्वधा अभि प्र तस्थौ) उसके मध्य से, निम्न भाग से और उच्च भाग से उसकी धारक शक्तियाँ सब ओर से फैली हुयी हैं।

महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे।
तस्मिञ्छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः।।

अथर्व. १०।७।३८

(सलिलस्य पृष्ठे) इस गतिशील संसार के आधार के रूप में, (भुवनस्य मध्ये महत् यक्षं) ब्रह्माण्ड के मध्य में एक महान पूजनीय देव है, जो (तपसि क्रान्तं) अपने ज्ञानमय तप तथा ऐश्वर्य में सर्वश्रेष्ठ है। (तस्मिन् ये उ के च देवाः श्रयन्ते) जो कोई भी देव हैं, दिव्य शक्तियाँ हैं, वह उसमें उसी प्रकार आश्रित हैं जैसे, (वृक्षस्य स्कन्धः परितः शाखा इव) वृक्ष की शाखायें उसके स्कन्ध अथवा तने (जड़ से ऊपर के मोटे भाग) के चारों ओर आश्रित होती हैं।

सलिल- गतिशील संसार- सृगतौ

यक्ष पूजायाम्- पूजनीय

तपसि- तप में।

तपसि- तप ऐश्वर्यो यस्य ज्ञानमयं तपः- उपनिषद्

सहः बल नाम।

निघण्टु. २।९

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते।।

अथर्व. ९।१०।१८ (पाठभेद), ऋग्.१।१६४।३९

(ऋचः) समस्त ऋचायें, समस्त वेद मन्त्र (व्योमन् व्योमनि व्योम

सदृशे) आकाश के समान सर्वव्यापक अथवा (वि ओमन्) विशेष रूप से रक्षा करने वाले उस (परमे) सर्वोत्कृष्ट (अक्षरे) ओ३म् वाच्य अविनाशी परब्रह्म में आश्रित हैं तथा उसी का प्रतिपादन, वर्णन एवं गुणगान करते हैं, (यस्मिन् विश्वे देवाः अधि निषेदुः) जिसमें समस्त देव आश्रित होकर स्थित हैं। (यः तत् न वेद) जो उस परमात्मा को नहीं जानता, अथवा जिसने वेदों का अध्ययन करके भी उसे नहीं जाना, (ऋचा किं करिष्यति) वह ऋचाओं से क्या करेगा अर्थात् उसके वेदाध्ययन से क्या लाभ? (ये तत् विदुः) जो विद्वान् उसे जानते हैं, (ते इत्) वे ही (इमे सम् आसते) उस परब्रह्म में सम्यक् रूप से स्थित होते हैं, ब्रह्म साक्षात्कार करके मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

कठोपनिषद् में भी स्पष्ट रूप से कहा है कि समस्त वेद उस ओ३म् वाच्य ब्रह्म का ही वर्णन करते हैं, उसी का निरूपण एवं प्रतिपादन करते हैं।

सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद् वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदꣳसंग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ।।

कठोनिषद्, १।२।१५

समस्त वेद जिस परम पद का प्रतिपादन करते हैं, समस्त तप जिसको प्राप्त करने के साधन हैं, जिसको प्राप्त करने की इच्छा से साधक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं, वह पद तुम्हें संक्षेप में बताता हूँ, वह ओ३म् है ।

पूर्णात्पूर्णमुदंचति पूर्णं पूर्णेनं सिच्यते।
उतो तदद्य विंद्याम यतस्तत्पंरिषिच्यतें।।

अथर्व. १०।८।२९

(पूर्णात्) पूर्ण ब्रह्म से (पूर्णम् उदचति) यह पूर्ण संसार उत्पन्न होता है (पूर्णं) तथा पूर्ण ब्रह्माण्ड (पूर्णेन सिच्यते) उस पूर्ण ब्रह्म द्वारा सींचा जाता है, उसी के द्वारा प्रवाहित जीवन रस से इसका पालन पोषण होता है (उतो) और (तत् अद्य) आज हम उसे (विद्याम) जानें, उसे जानने का प्रयास करें, (यतः) जिससे (तत्) वह संसार अथवा संसार रूपी वृक्ष (परि सिच्यते)

सब ओर से, सब प्रकार से सींचा जाता है।

ब्रह्म जिज्ञासा का कैसा सुन्दर मन्त्र है यह, जिसमें इस संसार को पूर्ण कहा गया है। जो लोग इस जगत् को मिथ्या कहते हैं, उन्हें यह मन्त्र ध्यान पूर्वक पढ़ना चाहिये।

एको देव: सर्व भूतेषु गूढ:, सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्ष: सर्वभूताधिवास:, साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥

श्वेताश्वतर उपनिषद्, ६।११

(एक: देव: सर्व भूतेषु गूढ:) वह देव केवल एक है तथा समस्त प्राणियों एवं पदार्थों में अन्तर्यामी रूप से स्थित है। गूढ का तात्पर्य यह है कि वह सब भूतों में स्थित होते हुये भी देखा नहीं जा सकता । वह (सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा) सर्वव्यापी और सब प्राणियों का अन्तरात्मा है, (कर्माध्यक्ष: सर्वभूताधिवास:) समस्त प्राणियों के कर्मों का फल देने वाला है तथा समस्त प्राणियों का आधार है, समस्त प्राणी उसी में निवास करते हैं, जिसके कारण उसे जगन्निवास कहा जाता हैं। (साक्षी चेता केवलो निर्गुण: च) वह सभी प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों को तथा समस्त संसार के सम्पूर्ण व्यापार को देखने वाला है तथा स्वयं निर्लिप्त, विशुद्ध एवं ज्ञानस्वरूप होते हुये वह समस्त प्राणियों को चेतना, प्रेरणा एवं ज्ञान प्रदान करने वाला है और सत्व, रज तथा तम इन तीनों गुणों से ऊपर है।

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।।

कठोपनिषद्. २।२।१०

जिस प्रकार संसार में प्रविष्ट एक ही वायु नाना रूपों वाली वस्तुओं में प्रवेश करके उन्हीं के समान रूप वाला हो जाता है, उसी प्रकार सब प्राणियों का अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुये भी समस्त प्राणियों में उन्हीं के समान रूपवाला होकर उनके अन्दर तथा बाहर स्थित रहता है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं,
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं,
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।

मुण्डकोपनिषद् २।२।१०,
श्वेताश्वतर उपनिषद्, ६।१४, कठोपनिषद् २।२।१५

वहाँ न सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्रमा, न तारागण, ये बिजलियाँ भी वहाँ प्रकाशित नहीं होतीं, फिर यह अग्नि वहाँ कैसे प्रकाशित हो सकता है ? उस परब्रह्म के प्रकाशित होने से ही यह सूर्यादि उसके प्रकाश से प्रकाशित होते हैं । उसी के प्रकाश से यह समस्त जगत् प्रकाशित होता है, आलोकित एवं सुशोभित होता है ।

अशब्दमस्पर्शमरुपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ।।

कठोपनिषद् १।३।१५

जो शब्द अथवा वाणी से परे है, जिसे स्पर्श नहीं किया जा सकता जिसका कोई रूप नहीं है, जो अविनाशी है, जिसे जिह्वा से नहीं चखा जा सकता, जो नित्य है, गन्ध रहित है, अनादि है, अनन्त है, जो महत्तत्व से श्रेष्ठ तथा ध्रुव है, उस परब्रह्म को जानकर ही मृत्यु के मुख से छुटकारा प्राप्त होता है ।

परब्रह्म को जानना, उसके समीप पहुँचना उपासना से ही सम्भव है। इसके लिये साधक को निरन्तर जागरूक रह कर तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान अर्थात् ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण समर्पण एवं अनन्य भक्ति की आवश्यकता होती है।

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ।।

श्वेताश्वतर उप. ३।२०, कठोपनिषद्. १।२।२०

हृदय रूपी गुहा में रहने वाला परमात्मा सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म और महान् से भी महान् है। उस परमात्मा की महिमा को कामना एवं शोक रहित साधक, परमेश्वर की कृपा से ही देख पाता है।

ओ३म्

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर । क्लिबे स्मर । कृतꣳ स्मर ।।

यजुर्वेद, ४०।१५

(वायु: अनिलं अमृतम्) मृत्यु के समय यह प्राण वायु अमृत अर्थात् अविनाशी कारण रूप समष्टि वायु में विलीन हो जाता है (अथ इदं शरीरम् भस्मान्तं) और इस शरीर का अन्त भस्म के रूप में हो जाता है। (ओ३म् कृतो स्मर) हे कर्म करने वाले जीव! ओ३म् का स्मरण करो। (क्लिबे स्मर) अपनी सामर्थ्य की वृद्धि के लिये ओ३म् का स्मरण करो। (कृतं स्मर) अपने द्वारा किये गये कर्मो का स्मरण करो।

ओ३म् क्रतो स्मर ।

हे कर्म करने वाले जीव! ओ३म् का स्मरण करो।

ओ३म् का ज्ञान, उसका जप तथा उसकी साधना ही पुरुष के परम कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है।

आद्यं यत्त्र्यक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मिन्प्रतिष्ठिता ।
स गुह्योऽन्यस्त्रिवृद्वेदो यस्तं वेद स वेदवित् ।। मनु. ११।२६५

संसार का आदि कारण, तीन अक्षर वाला जो 'ओ३म्' वाच्य ब्रह्म है, जिसमें समस्त त्रयी विद्या अर्थात् वेदविद्या प्रतिष्ठित है, वह स्वयं ही गुह्य अर्थात् अदृश्य त्रिवृत् वेद है जो उस परब्रह्म को जानता है, वही वेदवित् है।

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ।।

कठोपनिषद्, १।२।१६

यह अक्षर ही, यह अविनाशी ओ३म् ही ब्रह्म है, यह अक्षर ही सर्वश्रेष्ठ है। इस अक्षर को ही जानकर, जो जिस वस्तु की इच्छा करता है, वह उसको प्राप्त हो जाती है अर्थात् इसके ज्ञान तथा इसकी उपासना से पुरुष को अभीष्ट फल एवं कामना की प्राप्ति होती है।

एतदालम्बनः श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ।।

कठोपनिषद्, १।२।१७

यह ओ३म् ही श्रेष्ठ आलम्बन है, यही आलम्बन सर्वश्रेष्ठ है । इस आश्रय को, आलम्बन को भली प्रकार ज्ञानपूर्वक जानकर, प्राप्त कर, पुरुष ब्रह्मलोक में महिमान्वित होता है।

ओमित्येदक्षरमिदः सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव । यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ।।

माण्डूक्य उपनिषद्, १

(ओम् इति) ओ३म् (एतद् अक्षरं) यह अविनाशी ब्रह्म है । (इदं सर्वं तस्य उपव्याख्यानम्) यह सब, सारा संसार उसी का विस्तार है, उसी की महिमा है । (भूतं भवत् भविष्यत्) भूत, वर्तमान तथा भविष्य (इति सर्वं ओङ्कारः एव) यह सब ओङ्कार ही है (च यत् अन्यत् त्रिकाल अतीतम्) और इसके अतिरिक्त तीनों कालों से जो बाहर है, (तद् अपि ओङ्कार एव) वह भी ओङ्कार ही है।

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ।

माण्डूक्य उपनिषद्, ६ ।।

(एषः सर्वेश्वरः) यह ओ३म् सर्वेश्वर है, (एषः सर्वज्ञः) यह सर्वज्ञ है, (एषः अन्तर्यामी) यह सब में अन्तर्यामी रूप से स्थित है, (एषः सर्वस्य योनिः) यह समस्त जगत् के उत्पन्न होने का कारण है और (हि) निश्चय ही (भूतानाम् प्रभवाप्ययौ) यह समस्त प्राणियों एवं पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का कारण है ।

ओमिति ब्रह्म। ओमितीदꣳसर्वम्।

तैत्तिरीय उपनिषद, १।८

ओ३म् यह ब्रह्म है। यह समस्त संसार ओ३म् है, उसी का रूप है उसी की महिमा है, कण कण में उसी की सत्ता प्रतिभासित हो रही है।

अध्यात्मम् आत्मभैषज्यम् आत्मकैवल्यम् ओङ्कारः ।

गोपथ ब्राह्मण, पूर्वभाग १, कण्डिका, ३० ।।

ओङ्कार अध्यात्मम्, आत्मभैषज्य तथा आत्मकैवल्य है ।

अध्यात्मम्– ओ३म् आत्मज्ञान का अधिकरण अर्थात् आधार है। ओ३म् का ध्यान करने से आत्म ज्ञान प्राप्त होता है ।

आत्मभैषज्यम्– ओ३म् आत्मा का औषध है । इसके जप, ध्यान तथा चिन्तन से आत्मा के समस्त दोष दूर हो जाते हैं और आत्मा पूर्णरूपेण निर्मल हो जाता है ।

आत्मकैवल्यम्– ओ३म् का ध्यान आत्मा को मोक्ष देने वाला है ।

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ।।

मुण्डक उपनिषद्, २।२।४

(प्रणवः धनुः) ओंकार को धनुष, (शरः आत्मा) आत्मा को वाण (ब्रह्म तत् लक्ष्यम् उच्यते) तथा ब्रह्म को उसका लक्ष्य कहा जाता है । अतः (अप्रमत्तेन शरवत्) आलस्य रहित होकर अपने आत्मा को वाण के सदृश

ब्रह्म रूपी लक्ष्य में (वेद्धव्यम्) बींधना चाहिये तथा (तन्मयः भवेत्) उस ब्रह्म में तन्मय हो जाना चाहिये।

इस प्रकार भक्ति पूर्वक किये गये ओ३म् के जप तथा ध्यान से और श्रेष्ठ कर्मों एवं ज्ञान की सहायता तथा करुणामय भगवान् की कृपा से मनुष्य निश्चित रूप से ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है।

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् देवं पश्येन्निगूढवत् ।।

श्वेताश्वतरोपनिषद्, १।१।१४

(स्वदेहम्) अपने शरीर को (अरणि) नीचे की अरणि, (च प्रणवं उत्तरारणिम् कृत्वा) तथा ओङ्कार को ऊपर की अरणि बनाकर (ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्) ध्यान के द्वारा निरन्तर मन्थन रूपी अभ्यास करके (निगूढवत्) अरणि में छिपे हुये अग्नि की भाँति हृदय में गूढरूप से स्थित (देवं पश्येत्) परमेश्वर का साक्षात् दर्शन करे।

ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ।।

गीता १७।२३

(ॐ तत् सत् इति ब्रह्मणः त्रिविधः निर्देशः स्मृतः) ॐ, तत्, सत् इन तीन प्रकार से सच्चिदानन्द घन ब्रह्म का निर्देश किया गया है। उसी के द्वारा सृष्टि के आदि काल में ब्राह्मण, वेद तथा यज्ञों की रचना की गयी है।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ।।

गीता, १७।२४

अतः ब्रह्मवादियों की, वेद के विद्वानों की शास्त्र विधि से नियत की हुयी यज्ञ, दान तथा तप की क्रियायें सदा ओ३म् के उच्चारण के साथ ही प्रारम्भ होती हैं।

वास्तव में सभी वेदानुकूल श्रेष्ठ कर्म तथा वेद मन्त्रों का पाठ ओ३म् का उच्चारण करने के उपरान्त ही किये जाने का विधान है।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ।।

गीता, ८।१३

जो पुरुष 'ॐ', इस एकाक्षर ब्रह्म का उच्चारण करते हुये तथा (माम्) मुझको अर्थात् भगवान् को स्मरण करते हुये शरीर त्याग करके जाता है, वह परम गति को प्राप्त करता है।

सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद् वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदꣳसंग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ।।

कठोनिषद्, १।२।१५

समस्त वेद जिस परम पद का प्रतिपादन करते हैं, समस्त तप जिसको प्राप्त करने के साधन हैं, जिसको प्राप्त करने की इच्छा से साधक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं, वह पद तुम्हें संक्षेप में बताता हूँ, वह ओ३म् है।

तस्य वाचकः प्रणवः ।

योगदर्शन, समाधि पाद, २७ ।

उस परब्रह्म का वाचक प्रणव अथवा ओ३म् है । परब्रह्म तथा ओ३म् का यह वाच्य-वाचक सम्बन्ध कृत्रिम नहीं प्रत्युत नित्य है।

वास्तव में ओ३म् ही भगवान् का सर्वश्रेष्ठ एवं मुख्य नाम नाम है।

तज्जपस्तदर्थभावनम्।

योगदर्शन, समाधि पाद, २८ ।।

प्रणव अथवा ओ३म् का ध्यानपूर्वक एकाग्र चित्त से तथा भक्तिभाव से जप करना चाहिये और उसी की भावना, उसी का विचार श्रद्धापूर्वक अपने हृदय, मन तथा बुद्धि में स्थिर करना चाहिये।

अवतेष्टिलोपश्च ।

उणादि कोष, प्रथम पादः, सूत्र, १४२

इस सूत्र के अनुसार 'अव रक्षणे' धातु से मन प्रत्यय करने पर ओ३म् शब्द सिद्ध होता है तथा इसके साथ कार 'प्रत्यय' करने पर ओंकार शब्द

निष्पन्न होता है।

स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है-

अवतीत्योम् आकाशमिव व्यापकत्वात्खम्, सर्वेभ्यो बृहत्वाद् ब्रह्म। सत्यार्थ प्रकाश (प्रथम समुल्लास)

रक्षा करने से ओम्, आकाशवत् व्यापक होने से खम् तथा सबसे बड़ा होने से ब्रह्म, ईश्वर के नाम हैं।

जन्माद्यस्य यतः। वेदान्त दर्शन, १।१।२

इस संसार का जन्म आदि अर्थात् उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय जिससे होती है वह ब्रह्म है।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्तितद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्मेति ।।

तैत्तिरीय उपनिषद्, ३।१

निश्चय ही ये सब प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिसके सहारे जीवित रहते हैं तथा अन्त में इस लोक से प्रयाण करते हुये जिसमें प्रवेश करते हैं, उसको जानने की इच्छा करो, वह ब्रह्म है।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म ।।

यजु. ४०।१७

(सत्यस्य मुखम् हिरणमयेन पात्रेण अपिहितम्) सत्य का मुख हिरणमय पात्र से ढंका हुआ है, (यो असौ आदित्ये पुरुषः) जो वह आदित्य में पुरुष है अर्थात् पूर्ण परमात्मा है, (सः असौ अहम्) वही (असौ) प्राणों में रहने वाला मैं (जीवात्मा) हूँ। (ओ३म् खं ब्रह्म) आकाश के समान सर्वव्यापक ब्रह्म ओ३म् है, अर्थात् ओ३म् पद वाच्य है।

गायत्री से सांसारिक सुख एवं ब्रह्म प्राप्ति

स्तुता मयां वरदा वेंदमाता
प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानांम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविंणं ब्रह्मवर्चसम्।
मह्यं दत्वा व्रंजत ब्रह्मलोकम् ।।

अथर्व.१९।७१।१

(मया वरदा प्रचोदयन्तां द्विजानां पावमानी वेदमाता स्तुता) मेरे द्वारा वर देने वाली, श्रेष्ठ प्रेरणा देने वाली तथा द्विजों को पवित्र करने वाली वेदमाता अर्थात् ज्ञान की माँ गायत्री की स्तुति की गयी। यह माँ (मह्यं आयुः, प्राणं, प्रजां, पशुं, कीर्तिं, द्रविणं, ब्रह्मवर्चसं दत्वा ब्रह्मलोकं व्रजत) मुझे पूर्ण आयु, स्वस्थ एवं शक्तिशाली प्राण तथा इन्द्रियाँ, उत्तम सन्तान, पशु,कीर्ति, धन एवं ब्रह्मतेज देकर अन्त में ब्रह्मलोक को ले जाती है।

अथवा, (हे माँ!) मुझे इस जीवन में पूर्ण आयु, स्वस्थ एवं शक्तिशाली प्राण तथा इन्द्रियाँ, उत्तम सन्तान, पशु, धन, कीर्ति एवं ब्रह्मतेज देकर अन्त में ब्रह्मलोक को ले जाओ।

यहाँ वेदमाता का अर्थ वेदों की माँ नहीं, प्रत्युत ज्ञान की माँ है।

यह है गायत्री मन्त्र की महिमा तथा उसकी उपासना का फल। यह वेद वाक्य है, स्वयं परब्रह्म की कल्याणमयी वाणी है, अतः इसमें संशय का कोई स्थान नहीं है।

इस प्रकार स्वयं वेद में ही यह स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रणव सहित गायत्री के जप से न केवल आध्यात्मिक उन्नति होती है, न केवल स्वर्ग तथा मोक्ष की ही प्राप्ति होती है, प्रत्युत इससे समस्त श्रेष्ठ सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के साथ साथ ज्ञान, लौकिक ऐश्वर्य,कीर्ति, धन, सन्तान,स्वस्थ जीवन एवं दीर्घ आयु की भी प्राप्ति होती है और अन्त में यह दिव्य ज्ञानस्वरुपा माँ अपने उपासक को ब्रह्मलोक की प्राप्ति कराती है।

(ओ३म्) भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

ऋग्. ३।६२।१०, यजु. ३६।३, ३।३५,२२।९ तथा ३०।२
साम. उत्तरा. १३।४।१ क्र. सं. १४६२

(ओ३म्) हे अन्तर्यामी ! हमारे हृदय, मन, प्राण तथा आत्मा में वसने वाले, सर्वव्यापक, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान परमपिता परमात्मा ! (भूः=सत्) हे सर्वाधार ! (भुवः=चित्) हे ज्ञान स्वरूप, सर्वज्ञ ! हमारे समस्त दुःखों को दूर करने वाले (स्वः=आनन्द) हे सुख स्वरुप! परम आनन्द को देने वाले, (भूर्भुवः स्वः हे सच्चिदानन्द! (तत् सवितुः देवस्य) सकल ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने वाले, उसका पालन पोषण करने वाले तथा उसे प्रेरणा देने वाले उस सविता देव के, परब्रह्म के (वरेण्यं भर्गः वरण करने योग्य, श्रेष्ठ, कल्याणकारी पापनाशक तेज का हम (धीमहि) ध्यान करते हैं, उपासना करते हैं तथा उसके ज्योतिर्मय स्वरूप को अपने अन्तःकरण में धारण करते हैं । (धियो यो नः) जो परब्रह्म हमारी बुद्धि, वाणी तथा कर्मों को (प्रचोदयात्) कल्याणकारी मार्ग पर प्रेरित करे। अथवा, हे प्रभो! हमारी बुद्धि, वाणी तथा कर्मों को कल्याणकारी मार्ग पर प्रेरित कीजिये ।

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत् ।
तदित्यृचाऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ।।

मनु.२।७७

परमेष्ठी प्रजापति ने ऋक्, यजु तथा साम रुपी त्रयी विद्या से इस सावित्री ऋचा का एक एक पाद दुहकर निकाला है। गायत्री मन्त्र का प्रथम पाद, **'तत्सवितुर्वरेण्यम्'**, द्वितीय पाद, **'भर्गो देवस्य धीमहि'** तथा तृतीय पाद, **'धियो यो नः प्रचोदयात्'** है।

एतदक्षरमेतांच जपन् व्याहृतिपूर्विकाम् ।
सन्ध्योर्वेदविद् विप्रो वेद पुण्येन युज्यते ।।

मनुस्मृति, २।७८

(एतत् अक्षरम्) इस अविनाशी परब्रह्म के वाचक ओ३म् तथा (व्याहृति पूर्विकाम् एताम् च सन्ध्यो: जपन्) भू:, भुव:, स्व: इन महाव्याहृतियों के साथ गायत्री मन्त्र का दोनों सन्ध्याओं में जप करते हुये, (वेद विद् विप्र: वेद पुण्येन युज्यते) वेदज्ञ विप्र वेदाध्ययन के पुण्य से युक्त होता है।

ओङ्कारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्यया: ।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम् ।।

मनुस्मृति ,२।८१

जिसमें भू: भुव: स्व: इन तीन अव्यय महाव्याहृतियों के सहित आदि में ओङ्कार है, उस तीन पाद वाली सावित्री अथवा गायत्री को वेद का मुख समझना चाहिये।

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायाम: परं तप: ।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते ।।

मनुस्मृति ,२।८३

ओङ्कार परब्रह्म है, प्राणायाम परम तप है, सावित्री से श्रेष्ठ कुछ नहीं है तथा मौन रहने से सत्य भाषण श्रेष्ठ है ।

अनेक स्मृतियों तथा पुराणों में भी इसी प्रकार का कथन है ।

जपतां जुह्वतां नित्यं च प्रयतात्मनाम् ।
ऋषीणां परमं जप्यं गुह्यमेतन्नराधिप ।।

महाभारत, अनुशासन पर्व, ७४०।१५

हे राजन् ! यह गायत्री, जप परायण, होमनिष्ठ तथा सदा सावधान चित्त वाले ऋषियों का परम जप्य एवं गुप्त मन्त्र है।

यानपात्रे च याने च प्रवासे राजवेश्मनि ।
परां सिद्धिमवाप्नोति सावित्रीं ह्युत्तमां पठन् ।।

महाभारत, अनुशासन पर्व १५०।६८

(यानपात्रे च) जहाज़ में (याने च) अथवा अन्य किसी सवारी में बैठकर (प्रवासे) विदेश में अथवा (राजवेश्मनि) राजद्वार में (उत्तमां हि

सावित्रीं पठन्) उत्तम गायत्री मन्त्र का जप करने वाला व्यक्ति (परांसिद्धिं अवाप्नोति) परम सिद्धि को प्राप्त करता है। तात्पर्य यह है कि यात्रा करते समय अथवा राजकीय कार्यों में कठिनायी उत्पन्न होने पर, गायत्री जप से सफलता प्राप्त होती है और कठिनाइयाँ समाप्त हो जाती हैं।

हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे।
तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो हृदये शुचिः ।।

शङ्ख स्मृति, १२।१२

(नरकार्णवे पततां हस्तत्राण प्रदा देवी) यह दिव्य गायत्री, नरक रुपी समुद्र में गिरने वालों को हाथ पकड़कर बचाने वाली है। (तस्मात् हृदये शुचिः ब्राह्मणः तां नित्यं अभ्यसेत्) अतः ब्राह्मण को शुद्ध हृदय से उस गायत्री का नित्य अभ्यास करना चाहिये, उसकी उपासना करनी चाहिये।

स्कम्भ

यस्य त्रयंस्त्रिंशद्देवा अङ्गे सर्वे समाहिताः।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ।।

अथर्व. १०।७।१३

(सर्वे त्रयः त्रिंशत् देवाः) सभी तैंतिस देव (यस्य अङ्गे समाहिताः) जिसके शरीर में समाहित हैं, (तं स्कम्भं ब्रूहि) उस सर्वाधार के विषय में बताओ कि (कतमः स्वित् एव सः) वह कौन सा है? अथवा, (ब्रूहि कतमः स्वित् एव सः) कहो, वह कौन है ? उत्तर- (तं स्कम्भं) उसे सर्वाधार कहते हैं।

ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम्।
यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिम्।
ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः।।

अथर्व. १०।७।१७

(ये पुरुषे ब्रह्म विदुः) जो पुरुष अथवा जीवात्मा में स्थित ब्रह्म को जानते हैं, (ते विदुः परमेष्ठिनम्) वे परमेष्ठी को जानते हैं। (प्रकृति और आत्मा में, आत्मा अथवा पुरुष श्रेष्ठ है, परम है अतः आत्मा में स्थित ब्रह्म

का नाम परमेष्ठी है तथा प्रजाओं का पालन एवं संरक्षण करने के कारण ब्रह्म का नाम प्रजापति है।) (यो वेद परमेष्ठिनम् यश्च वेद प्रजापतिम्) जो परमेष्ठी को जानते हैं तथा जो प्रजापति को जानते हैं (ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुः) और जो ज्येष्ठ ब्रह्म को जानते हैं, (ते स्कम्भम् अनु संविदुः) वे उस सर्वाधार को सम्यक् रूप से जानते हैं।

तात्पर्य यह है कि वह परब्रह्म ही परमेष्ठी है, वही प्रजापति है और वही समस्त ब्रह्माण्ड का एक मात्र आधार है, सर्वाधार है, जिसका यहाँ स्कम्भ के रूप में वर्णन किया गया है।

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं,
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥

अथर्व. १०।७।२०

(यस्मात् ऋचः अपातक्षन्) जिससे ऋचायें उत्पन्न हुयी हैं, (यजुः यस्मात् अपाकषन्) जिससे यजु मन्त्र प्रकट हुये हैं, (सामानि यस्य लोमानि) साम मन्त्र जिसके लोमों के सदृश हैं (अथर्वाङ्गिरसः मुखं) तथा अथर्व वेद जिसके मुख के समान है, (तं स्कम्भम् ब्रूहि) उस सर्वाधार के विषय में बताओ (कतमः स्वित् एव सः) कि वह कौन सा है? अथवा, (ब्रूहि कतमः स्वित् एव सः) कहो, वह कौन है ? उत्तर- (तं स्कम्भं) उसे सर्वाधार कहते हैं।

यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः।
भूतं च यत्र भव्यं च सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥

अथर्व. १०।७।२२

जिसमें बारह आदित्य, एकादश रुद्र तथा आठ वसु समाहित हैं, जिसमें भूत, भविष्य, वर्तमान तथा समस्त लोक प्रतिष्ठित हैं, (तं स्कम्भम् ब्रूहि) उस सर्वाधार के विषय में कहो कि वह कौन सा है? अथवा, (ब्रूहि

कतमः स्वित् एव सः) कहो, वह कौन है ? उत्तर- (तं स्कम्भं) उसे सर्वाधार कहते हैं।

बृहन्तो नाम ते देवा येऽसंतः परिं जज्ञिरे।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्यासंदाहुः परो जनाः।।

अथर्व. १०।७।२५

(बृहन्तः नाम ते देवाः) सूर्य, चन्द्र, वायु आदि वे देव बड़े प्रसिद्ध हैं अथवा अत्यन्त महान् तथा शक्तिशाली हैं (ये असतः परि जज्ञिरे) जो असत् अर्थात् कारण रूप प्रकृति से उत्पन्न हुये हैं। (जनाः असत् आहुः) विद्वान् लोग जिसे श्रेष्ठ एवं असत् अर्थात् सूक्ष्म कहते हैं, (तत् स्कम्भस्य एकं अङ्गं) वह स्कम्भ का, सर्वाधार परब्रह्म का केवल एक अङ्ग है, एक अंश है।

इस मन्त्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है बल्कि वह परब्रह्म का केवल एक अङ्ग है, एक अंश है।

स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भेऽध्यृतमाहिंतम्।
स्कम्भं त्वा वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहिंतम् ।।

अथर्व. १०।७।२९

(स्कम्भे लोकाः) स्कम्भ में लोक, (स्कम्भे तपः) स्कम्भ में तप तथा (स्कंभे अधि ऋतं आहितं) स्कम्भ में ही ऋत अर्थात् भगवान् के सत्य नियम स्थित हैं। (स्कम्भ) हे स्कम्भ! मैं (त्वा प्रत्यक्षं वेद) तुम्हें प्रत्यक्ष रूप से जानता हूँ, (इन्द्रे सर्व समाहितं) तुझ परमात्मा मे ही, इन्द्र में ही सब कुछ समाया हुआ है।

उच्छिष्ट ब्रह्म

(उत+शिष्ट=उच्छिष्ट) ऊर्ध्व भाग में अवशिष्ट अर्थात् सृष्टि के पश्चात् उच्च स्थान में अवशिष्ट रह जाने वाला, शेष रह जाने वाला उत्कृष्ट ब्रह्म का एक अंश संसार के रूप में यहाँ दिखायी देता है, उसका शेष भाग अपने दिव्य स्वरूप में ऊपर स्थित रहता है, जिसे उच्छिष्ट कहा जाता है।

उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः।
उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम्।।

अथर्व. ११।७।१

उच्छिष्ट ब्रह्म में ही समस्त नाम तथा रूप स्थित हैं, उच्छिष्ट में लोक लोकान्तर स्थित हैं, उच्छिष्ट में इन्द्र, अग्नि तथा सम्पूर्ण विश्व समाया हुआ है।

उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम्।
आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः।।

अथर्व. ११।७।२

उच्छिष्ट ब्रह्म में द्युलोक, अन्तरिक्ष, पृथिवी तथा समस्त प्राणी एवं पदार्थ समाहित हैं, सम्यक् रूप से स्थित हैं, उच्छिष्ट में जल, समुद्र, चन्द्रमा तथा वायु स्थित है।

अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट्कारो व्रतं तपः।
दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टेऽधि समाहिताः।।

अथर्व. ११।७।९

अग्निहोत्र, श्रद्धा, वषट्कार, व्रत, तप, दक्षिणा, इष्ट तथा पूर्त, ये सब उच्छिष्ट में समाहित हैं।

इष्ट- यज्ञादि।

पूर्त- जन हित के कार्य जैसे- नहर, कुआँ, तालाब, धर्मशाला आदि का निर्माण, वृक्षारोपण तथा पर्यावरण संरक्षण।

ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले।।

अथर्व. ११।७।१७

ऋत, सत्य, तप, राष्ट्र, धर्म, कर्म, भूत, भविष्य, वीर्य, लक्ष्मी, बलवान् पुरुष में रहने वाला बल, यह सब उच्छिष्ट में ही स्थित है।

शर्कराः सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणा।
अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रिता श्रिता।।

अथर्व. ११।७।२१

(शर्कराः) बज़री अथवा मोरंग, (सिकता) बालू, (अश्मान) पत्थर, (ओषधयः वीरुधः तृणाः) ओषधियाँ, झाड़ियाँ, लतायें, घास, (अभ्राणि) मेघ, (विद्युतः) बिजलियाँ तथा (वर्ष) वर्षा (उच्छिष्टे संश्रिताः श्रिताः) उच्छिष्ट ब्रह्म में ही सम्यक् रूप से आश्रित हैं।

यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः।।

अथर्व. ११।७।२३

जो प्राण से श्वास लेता है, जीवित रहता है, जो आँख से देखता है तथा जो देव द्युलोक में स्थित हैं, वे सब उच्छिष्ट से ही उत्पन्न हुये हैं।

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः।।

अथर्व. ११।७।२४

ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद तथा पुराण अर्थात् सृष्टि के उत्पन्न होने के समय का ज्ञान तथा द्युलोक में स्थित देव, ये सब उच्छिष्ट से उत्पन्न हुये हैं।

देवाः पितरो मनुष्याऽगन्धर्वाप्सरसंश्च ये।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः।।

अथर्व. ११।७।२७

देव, पितर, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सरायें तथा द्युलोक में स्थित देव, ये सब उच्छिष्ट से उत्पन्न हुये हैं।

विराट

षट् त्वा पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च।
विराजमाहुर्ब्रह्मणः पितरं तां नो वि धेहि यतिधा सखिभ्यः।।

अथर्व. ८।९।७

हे कश्यप! (इमे षट् ऋषयः त्वा पृत्छामः) ये हम छः ऋषि आपसे पूछते हैं क्योंकि (त्वं हि युक्तं योग्यं च युयुजे) आप ही युक्त और योग्य को संयुक्त करते हैं, (विराजं ब्रह्मणः पितरं आहुः) विराज को ब्रह्मा का पिता कहते हैं, (तां नः सखिभ्यः) उसकी हम मित्रों को (यतिधा विधेहि) जितने प्रकार से हो सके, उतने प्रकार से वर्णन कीजिये।

यां प्रच्युतामनु यज्ञाः प्रच्यवन्त,
उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम्।
यस्यां व्रते प्रसवे यक्षमेजति,
सा विराडृषयः परमेव्योऽमन्।।

अथर्व. ८।९।८

(ऋषयः) हे ऋषियो! (यां प्रच्युतां अनु) हृदय से जिसके प्रय्चुत हो जाने पर अर्थात् जिसकी कृपा समाप्त हो जाने पर, (यज्ञाः प्रच्यवन्तः) यज्ञ भी प्रच्युत हो जाते हैं, बन्द हो जाते हैं और (उपतिष्ठमाना उपतिष्ठन्त) जिसके हृदय में उपस्थित हो जाने पर, जिसकी कृपा प्राप्त हो जाने पर यज्ञ भली प्रकार सम्पन्न होने लगते हैं, (यस्य व्रते प्रसवे) जिसके नियमों के अनुसार उत्पन्न इस सृष्टि में (यक्षम् एजति) यजनीय देव अर्थात् आत्मा गति करता है, (सा विराड्) वह विराट् (परम व्योमन्) परम व्योम में अपने प्रकाशमय स्वरूप में स्थित रहता है।

अथवा, (यां प्रच्युतां अनु) जिसके सृष्टि से अलग हो जाने पर (यज्ञाः प्रच्यवन्ते) समस्त प्रकार के यज्ञ प्रच्युत हो जाते हैं, समाप्त हो जाते हैं तथा (उपतिष्ठमानाम्) जिसके उपस्थित हो जाने पर यज्ञ कर्म प्रारम्भ हो जाते हैं, (यस्याः व्रते प्रसवे) जिसके व्रत में, जिसकी प्रेरणा से (यक्षं यजति)

यक्ष अर्थात् आत्मा गति करता है (सा विराड् परमे व्योमन्)

प्रलयकाल में परमात्मा सृष्टि से अलग हो जाता है, तब सब यज्ञ तथा सब कार्य रुक जाते हैं और फिर जब सृष्टि का निर्माण होता है और परमात्मा सृष्टि में व्याप्त हो जाता है, तब समस्त यज्ञ पुनः प्रारम्भ हो जाते हैं।

विराज् (राजृ दीप्तौ) का अर्थ है विशेष तेजस्वी अथवा विशेष रूप से प्रकाशमान्।

भगवान् की कृपा एवं प्रेरणा से ही समस्त यज्ञ, समस्त श्रेष्ठ कर्म किये जाते हैं।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवं।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।। गीता. ३।१५

कर्म को वेद से उत्पन्न हुआ और वेद को अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुआ जानो। इसीलिये सर्वव्यापी परमात्मा सदा यज्ञ में प्रतिष्ठित रहता है।

ततो॑ वि॒राडंजायत वि॒रा॒जो अधि॒ पूरु॑षः।
स जा॒तो अत्यं॑रिच्यत प॒श्चाद्भूमि॒मथो॑ पु॒रः।।

यजु. ३१।५

उस परमात्मा से विशेष रूप से देदीप्यमान प्रकृति उत्पन्न हुयी (विराजो अधि पूरुषः) प्रकृति के ऊपर अधिष्ठाता पुरुष हुआ। वह प्रकृति उत्पन्न होकर अनेक रूपों में विभक्त होने लगी जिससे सूर्यादि ग्रह तथा पृथिवी एवं समस्त ब्रह्माण्ड पूर्व कल्प की भाँति उत्पन्न हुआ।

यहाँ विराज् का अर्थ प्रकृति है।

मन्त्र में उल्लिखित (अधि पूरुषः) अर्थात् अधिष्ठाता पुरुष ही ब्रह्मा हैं, जो प्रकृति की सहायता से समस्त सृष्टि को नियमानुसार उत्पन्न करने का कार्य करते हैं। इसलिये उन्हें प्रजापति तथा भाग्य विधाता भी कहा जाता है।

यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात्।।

अथर्व. १०।७।२४

जहाँ ब्रह्म को जानने वाले विद्वान् ज्येष्ठ ब्रह्म की उपासना करते हैं, जो उनसे प्रत्यक्ष रूप से वेद का ज्ञान प्राप्त करेगा, वह ज्ञाता ब्रह्मा हो जायेगा। तात्पर्य यह है कि वेदों के ज्ञाता तथा ब्रह्म की उपासना करने वाले विद्वानों के साथ बैठकर ब्रह्म की उपासना करने से तथा वेदों का ज्ञान प्राप्त करने से पुरुष ब्रह्मा कहलाने के योग्य हो जाता है।

अन्य प्रार्थना मन्त्र

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः।।

अथर्व.११।२।१६

हे परमेश्वर! आपको सायंकाल में नमस्कार है, प्रातःकाल में नमस्कार है, रात्रि में नमस्कार है तथा दिन में नमस्कार है। आपके सर्वोत्पादक एवं सर्व संहारक दोनों प्रकार के स्वरूपों को नमस्कार है।

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ।।

यजुर्वेद. ३६।२१

(नमस्ते अस्तु विद्युते) विद्युत में व्याप्त प्रभु को नमस्कार हो, (नमस्ते स्तनयित्नवे) गरज़ने वाले बादलों में स्थित प्रभु को नमस्कार हो अर्थात् सर्वव्यापक प्रभु को नमस्कार हो, (भगवन् ते नमः अस्तु) हे भगवन्! आपको प्रणाम हो, (यतः स्वः समीहसे) आप हमें सब प्रकार से सुख देते हैं ।

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे-

वसो मम। आहमंजानि गर्भधमा त्वमंजासि गर्भधम्।।

यजु. २३।१९

(गणानां गणपतिं त्वा हवामहे) गणों में, मनुष्य समूहो में, प्राणियों की रक्षा करने वाले, आपकी हम स्तुति तथा प्रार्थना करते हैं, (प्रियाणां प्रियपतिं त्वा हवामहे) प्रिय जनों में, प्रिय लोगों के रक्षक तथा पालक हम आपका आवाहन करते हैं, (निधीनां निधिपतिं त्वा हवामहे) निधियों में, धन सम्पत्ति आदि में निधियों के रक्षक आपका हम आवाहन करते हैं। (वसो) समस्त जगत को वसाने वाले तथा समस्त जगत में वसने वाले हे जगन्निवास! हे प्रभो! आप (मम) मेरे हो, (अहं गर्भधं आ अजानि) समस्त संसार की गर्भ के समान रक्षा करने वाले, धारण करने वाले, आपको मैं जानूँ, (गर्भधं) गर्भ के समान संसार को धारण करने वाले (त्वं आ अजासि) हे प्रभो! आप मुझे अपना ज्ञान देते हैं, अपने को जानने का अवसर प्रदान करते हैं, प्राप्त होते हैं।

सबसे महत्वपूर्ण है भगवान् का ज्ञान प्राप्त करना, भगवान् को जानना।

'तमेव विदित्वा ति मृत्युमेति' उसको जानकर ही मृत्यु पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई ।
जानत तुम्हहि, तुम्हइ होइ जाई ।।

रामचरितमानस, अरण्य काण्ड, सोरठा. १२६-३

हे प्रभो ! जिसे आप स्वयं अपना बोध, अपना ज्ञान करा देते हैं, वही आपको जान पाता है। जो आपको जान लेता है, वह आप में ही लीन हो जाता है, अलग नहीं रहता ।

उपं त्वाग्ने दिवेदिंवे दोषांवस्तर्धिया वयम्।
नमो भरंन्त एमंसि।।

साम पूर्वा. क्र.सं. १४, यजु. ३।२२ (पाठभेद) ऋग्.१।१।७

(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप परब्रह्म ! (वयं दिवे दिवे) हम नित्य प्रति (दोषा वस्तः) रात दिन (धिया नमः भरन्त) अपनी बुद्धि एवं कर्मों से आपको नमस्कार करते हुये विनम्रता पूर्वक (त्वा उप एमसि) आप के समीप आते हैं।

मह्यं यजन्तां मम यानीष्टाकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवा अभि रक्षन्तु मेह।।

अथर्व. ५।३।४

(मम यानि इष्टा मह्यं यजन्तां) मेरे जो अभीष्ट हैं, वे मुझे प्राप्त हों, मेरी अभिलाषायें पूर्ण हों, (मे मनसः आकूतिः सत्या अस्तु) मेरे मन का संकल्प सत्य हो। (अहं कतमत् चन एनः मा निगाम) मैं किसी भी पाप को प्राप्त न होऊँ। (इह विश्वे देवाः मा अभिरक्षन्तु) यहाँ समस्त देव मेरी भली प्रकार रक्षा करें।

पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः।
न किर्हि दानं परिमर्धिषत्वे यद्यद्यामि तदा भर।।

साम उत्त. क्र.सं. १५८०, ऋग्. ८।६१।६,
अथर्व. २०।११८।२

(देव) हे देव! हे प्रभो! (त्वम् अश्वस्य पौरः) आप अश्वों की पूर्ति करने वाले, (पुरुकृत गवां असि) गौओं को पुष्ट करने वाले एवं उनकी संख्या में वृद्धि करने वाले (हिरण्ययः उत्सः असि) तथा समस्त धनों के स्वर्णिम स्रोत हो। (त्व दानं न किः हि परिमर्धिषत्) आपके दान को कोई भी नष्ट नहीं कर सकता। (यत् यत् यामि तत् आभर) हे प्रभु! मैं आपसे जो जो याचना करता हूँ, उसे पूर्ण कीजिये।

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये।।

यजु. ३१।२०

(यः देवेभ्यः) जो देवों के लिये तपता है, सब को ऊर्जा तथा प्रकाश

प्रदान करता है, (यः देवानां पुरोहितः) जो समस्त देवताओं में अग्रणी तथा श्रेष्ठ है और सभी देवों का हित करने वाला है (यः देवेभ्यः पूर्वः जातः) तथा जो अन्य देवताओं से पहले उत्पन्न हुआ है, (रुचाय ब्राह्मये नमः) ब्रह्म द्वारा सृजित किये गये उस परम तेजस्वी सूर्य देव को प्रणाम है।

स्वयम्भूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदाऽअसि वर्चो मे देहि।
सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते।।

यजु. २।२६

हे परमेश्वर! (स्वयम्भूः श्रेष्ठः रश्मिः असि) आप स्वयम्भू श्रेष्ठ तथा प्रकाशमान हैं, (वर्चोदा असि) आप तेज, ज्ञान एवं प्रकाश देने वाले हैं, (मे वर्चः देहि) मुझे तेज, ज्ञान तथा प्रकाश दीजिये, (सूर्यस्य आवृतं अन्वावर्ते) मैं चराचर जगत् के आत्मारूप सूर्य के नियमों को स्वीकार करता हूँ, उनका पालन करता हूँ।

सूर्य के नियमों का पालन करने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार सूर्य जगत का कल्याण करने, प्राणिमात्र को जीवन देने तथा सभी ग्रहों को अपनी ओर आकर्षित कर उन्हें यथा स्थान रखने के अपने शाश्वत धर्म का पालन करता है, उसी प्रकार मैं भी जगत का कल्याण करने और यथा शक्ति सब को ज्ञान, सुख, प्रसन्नता एवं प्रेम देने का व्रत लेता हूँ।

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। समाववर्ति पृथिवी समुषाः समुसूर्यः। समु विश्वमिदं जगत्। वैश्वानर ज्योतिर्भूयासं विभून्कामान्व्यश्नवै भूः स्वाहा।

यजु. २०।२३,३८।२५

हे प्रभो! आप (एधः असि) वृद्धि करने वाले हैं, (एधिषी महि) आपकी कृपा से हम वृद्धि को प्राप्त हों, (समित् असि) आप सम्यक् प्रदीप्त समिधाओं के समान हैं, (तेजः असि) आप तेज स्वरूप हैं (तेजः मयि धेहि) मुझमें तेज स्थापित कीजिये। (सम् आववर्ति पृथिवी) हे प्रभो! आपकी

शक्ति से पृथिवी सूर्य के चारों ओर तथा स्वयं अपनी धुरी पर निरन्तर चक्कर लगाती रहती है, (सम् उषाः) उषा निरन्तर आती जाती रहती है, (सूर्यः सम् आववर्ति) सूर्य नित्य उदय एवं अस्त होता है (सम् उ इदं विश्वम् जगत्) तथा यह समस्त जगत् गतिमान् रहता है, क्षण क्षण परिवर्तित होता रहता है और जीवन-मृत्यु तथा सृष्टि-प्रलय के चक्र में निरन्तर घूमता रहता है। (वैश्वानर ज्योतिः भूयासम्) आपकी कृपा से मैं समस्त समाज एवं प्राणिमात्र का हित करने वाली, उनका नेतृत्व एवं मार्ग दर्शन करने वाली प्रखर ज्योति के समान हो जाऊँ (विभून् कामान् व्यश्नवै) तथा व्यापक अर्थात् अनेक एवं महान् कामनाओं को प्राप्त करूँ (यहाँ संकुचित एवं क्षुद्र कामनाओं के लिये प्रार्थना नहीं की गयी है)। (भूः स्वाहा) भूः भुवनं सत्ता मात्रं ब्रह्म तस्मै स्वाहा सुहुतमस्तु। समस्त भुवन अथवा समस्त ब्रह्माण्ड की एक मात्र सत्ता रूप ब्रह्म के लिये यह आहुति मधुर वचनों के साथ समर्पित है, यह भली प्रकार आहुत हो।

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा।।

यजु. ३२।१६

मेरा यह वैदिक ज्ञान तथा उसे धारण करने वाले ब्राह्मण और क्षात्र शक्ति एवं उसे धारण करने वाले क्षत्री, दोनों शोभा तथा ऐश्वर्य को प्राप्त हों। समस्त देवता मुझे उत्तम शोभा तथा ऐश्वर्य प्रदान करें। देवों की उस शोभा तथा लक्ष्मी के लिये यह आहुति समर्पित है।

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचꣳ राजसु नस्कृधि।
रुचंविश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्।।

यजु. १८।४८

हमारे ब्राह्मणों में तेज तथा कान्ति की स्थापना कीजिये, हमारे क्षत्रियों में तेज तथा कान्ति स्थापित कीजिये, हमारे वैश्यों तथा शूद्रों में तेजस्विता स्थापित कीजिये तथा मुझमें प्रखर तेज से युक्त तेजस्विता स्थापित कीजिये।

यथा मधुं मधुकृतः संभरन्ति मधावधिं।
एवा मेंअश्विना वर्च आत्मनिं ध्रियताम्।।

अथर्व. ९।१।१६

हे अश्वि देवो ! जिस प्रकार मधु मक्खियाँ अपने मधु के स्थान में, छत्ते में मधु संचित करती हैं, उसी प्रकार मेरी आत्मा में ज्ञान, तेज, बल तथा ओज स्थापित हो तथा वृद्धि को प्राप्त हो।

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा संमानानां भूयासम्।।

अथर्व. १६।३।१

(अहं रयीणाम् मूर्धा) हे प्रभो! मैं समस्त प्रकार के धनों का स्वामी तथा (मूर्धा समानानाम् भूयासम्) अपने समान अर्थात् अपने समकक्ष पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ बनूँ।

मनुष्य को सदैव यह प्रार्थना एवं प्रयास करना चाहिये कि वह अधिक से अधिक ऐश्वर्य का स्वामी बने और अपने समकक्ष पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ बने।

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वांनं सदासहम्।
वर्षिष्ठमूतये भर।।

साम. पूर्वा. क्र.सं. १२९, ऋग्. १।८।१

हे इन्द्र! विजय दिलाने वाले, शत्रु को पराजित करने में सहायता करने वाले, (सानसिं) सेवनीय श्रेष्ठ धन को हमारी रक्षा के लिये हमे भरपूर दीजिये।

पवित्र धन से ही जीवन में सुख समृद्धि प्राप्त की जा सकती है, भ्रष्टाचार तथा अन्याय से प्राप्त धन से नहीं।

यदिन्द्र चित्र मेहनाऽस्ति त्वादातमद्रिवः।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर।।

ऋग्. ५।३९।१

(अद्रिवः विदद्वसो इन्द्र) हे वज्रधारी, धन तथा ऐश्वर्य से सम्पन्न इन्द्र!

(यत् चित्र मेहना राधः अस्ति) जो दर्शनीय तथा दान करने योग्य धन है अथवा (यत् चित्र राधः मे इह न अस्ति) जो उत्तम धन यहाँ मेरे पास नहीं है (त्वा दातुं) और जो आपके द्वारा दिये जाने योग्य है, (तत् नः उभाभ्यां हस्ताभ्यां आभर) उसे हमें दोनों हाथ से भरपूर दीजिये।

यदिन्द्र चित्रं चायनीयं मंहनीयं धनमस्ति। निरुक्त. ४।१।४

दीर्घतमा- ऋषिः, देवता-श्री

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय।
पशूनां रूपमन्नस्य रसो यशःश्रीः श्रयतां मयि स्वाहा।।

यजु. ३९।४

हमारे मन की इच्छा, हमारा संकल्प तथा हमारी वाणी सत्य हो। पशुओं का रूप अर्थात् गौ, बैल आदि पशु, अन्न का रस तथा लक्ष्मी और शोभा मुझमें आश्रित हो, मुझे प्राप्त हो। सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति देवी लक्ष्मी को समर्पित है।

यजुर्वेद (३१।२२) में कहा गया है **'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्या'** श्री अर्थात् धन सम्पत्ति और लक्ष्मी अर्थात् शोभा भगवान् की पत्नियाँ हैं। तात्पर्य यह है कि जिस पर भगवान् की कृपा होगी उसे श्री एवं लक्ष्मी प्राप्त होगी।

जब हम मनसा वाचा कर्मणा सत्य में प्रवृत्त होंगे, सत्य का पालन करेंगे, तब हमें भगवान् की कृपा से धन, धान्य, पशु, यश, लक्ष्मी तथा शोभा प्राप्त होगी।

यास्ते अग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः।
ताभिर्नो अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि।।

यजु. १३।२२

हे अग्ने! जो तेरी दीप्ति सूर्य की किरणों द्वारा द्युलोक को प्रकाशित करती है, आज उन किरणों से हमें तथा हमारे पुत्र पौत्रादिकों को तेजस्वी कीजिये।

आ नो अग्ने र॒यिं भ॑र सत्रा॒साहं॒ वरे॑ण्यम्।
विश्वा॑सु पृ॒त्सु दु॒ष्टर॑म्॥

साम. उत्त. १४।४।२, क्र.सं. १५२५, ऋग्. १।७९।८

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म! (सत्रासहं) समस्त शत्रुओं को हराने वाला अर्थात् प्रत्येक संघर्ष में विजय दिलाने वाला, समस्त आपत्तियों को दूर करने वाला तथा (वरेण्यम्) श्रेष्ठ (विश्वासु पृत्सु दुष्टरम्) जीवन के समस्त संग्रामों में शत्रु के लिये दुस्तर अर्थात् जिस पर कोई शत्रु विजय प्राप्त न कर सके, (रयिं नः आभर) ऐसा धन एवं ऐश्वर्य हमें दीजिये।

आ नो अग्ने सुचे॒तुना॑ र॒यिं वि॒श्वायु॑पोषसम्।
मा॒र्डी॒कं धे॑हि जी॒वसे॑॥

साम. उत्त. १४।४।३, क्र.सं. १५२६, ऋग्. १।७९।९

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म! (नः जीवसे) हमें जीवन के लिये (सुचेतुना) उत्तम ज्ञान से युक्त (विश्वायु पोषसम्) सम्पूर्ण आयु पर्यन्त पोषण करने वाले तथा (मार्डीकं) सुख देने वाले (रयिं) धन को (आ धेहि) सब ओर से दीजिये तथा हमारे लिये सब ओर से धारण कीजिये।

धारण कीजिये का तात्पर्य यह है कि यह धन हमारे पास स्थायी होकर रहे, नष्ट न हो जाय और हमें ध्यान रहे कि इसका धारण भगवान् कर रहा है, यह उसी का है, हमारा नहीं। हमें केवल उसका सदुपयोग करने का अधिकार है।

कृ॒तं मे॒ दक्षि॑णे॒ हस्ते॑ ज॒यो मे॑ स॒व्य आहि॑तः।
गो॒जिद् भू॑यासमश्व॒जिद् ध॑नंज॒यो हि॑रण्य॒जित्॥

अथर्व. ७।५२।८

(कृतं मे दक्षिणे हस्ते) मेरे दाहिने हाथ में कर्म हो, प्रयास हो, पुरुषार्थ हो (जयः मे सव्य आहितः) तथा मेरे बायें हाथ में जय हो, विजय हो। (गोजित् अश्वजित् हिरण्यजित् धनंजयः भूयासम्) मैं गौवों, अश्वों

सुवर्ण एवं विविध प्रकार के धनों का विजेता बनूँ।

मनुष्य को सदा श्रेष्ठ कर्म करके विजय, लक्ष्मी एवं ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहिये।

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वोऽअद्य दधातु मे।।

अथर्व. १।१।१

१. (ये त्रिषप्ताः) जो तीन गुणा सात अर्थात् २१ (विश्वा रूपाणि बिभ्रतः) समस्त प्राणियों एवं पदार्थों के रूपों को धारण किये हुये (परियन्ति) विचरण करते हैं, सब ओर प्राप्त होते हैं, (वाचस्पतिः) वाणी का स्वामी परमात्मा अथवा प्रजापति (तेषाम् बला) उनके बलों को, सामर्थ्यों को (मे तन्वः अद्य दधातु) आज मेरे शरीर के अन्दर धारण करे, मुझे दे।

२. वाणी परक अर्थ- एक वचन, द्विवचन तथा बहुवचन से गुणित सात विभक्तियाँ वाणी के विभिन्न स्वरूपों को धारण करती हुयी सर्वत्र विचरती हैं। वाणी का स्वामी परमात्मा आज इन २१ प्रकार के शब्दों के ज्ञान से प्राप्त होने वाला सामर्थ्य मुझे दे अर्थात् मुझे वाणी का समग्र ज्ञान दे।

वाणी का महत्व बताते हुये कहा गया है-

वाग्वै गायत्री वाग्वा इदं सर्वं भूतं गायति च त्रायते च।

छान्दोग्य.उप. ३।१२।१

वाणी ही गायत्री है, यह वाणी ही सब पदार्थों का वर्णन करती है तथा प्राणियों की रक्षा करती है।

३. मन्त्र में उल्लिखित २१ की संख्या किनकी है, यह स्पष्ट नहीं है। कुछ विद्वानों के अनुसार ये निम्न प्रकार हैं-

१. बारह मास, पाँच ऋतुयें, तीन लोक तथा आदित्य।

२. पञ्च महाभूत (क्षिति, जल, अग्नि, आकाश तथा वायु), पाँच प्राण (प्राण,अपान,व्यान, समान, उदान) पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (नेत्र,श्रोत्र, नासिका,

जिह्वा तथा त्वचा), पाँच कर्मेन्द्रियाँ (मुख अथवा वाणी, हाथ, पैर, मूत्रेन्द्रिय अथवा जननेन्द्रिय तथा मलेन्द्रिय अथवा गुदा) एवं अन्तःकरण।

३. किन्तु वास्तव में ये २१ निम्नाङ्कित प्रतीत होते हैं-

५. **महाभूत-** आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी
५. **तन्मात्रायें-** शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध
१. **इन्द्रियाँ-** ज्ञानेन्द्रियाँ तथा कर्मेन्द्रियाँ
१. **अन्तः करण-** मन बुद्धि चित्त एवं अहंकार
३. **लोक-** द्युलोक अन्तरिक्ष एवं पृथिवी
१. आदित्य
१. चन्द्रमा
१. नक्षत्र
१. इन्द्र अथवा विद्युत
१. **काल-** भूत, भविष्य, वर्तमान
१. **प्राण-दश** (पाँच मुख्य प्राण तथा पाँच गौण प्राण)

२१=योग

५. सृष्टि परक अर्थ- सत्व, रज तथा तम रूपी तीन गुणों से गुणित होकर महत्तत्व, अहंकार एवं पाँच महाभूत, २१ प्रकार के बनकर सम्पूर्ण सृष्टि के विविध प्राणियों एवं पदार्थों के रूपों को धारण करते हैं, प्रजापति उनके बलों को आज मेरे अन्दर धारण कराये।

प्रजापतिर्वै वाचस्पतिः। प्रजापति ही वाचस्पति है, शतपथ.ब्रा.५।१।१।१६

प्रजापति ही परमात्मा है।

धाता विश्वा वार्या दधातु प्रजाकामाय दाशुषे दुरोणे।
तस्मै देवा अमृतं सं व्ययन्तु विश्वे देवा अदितिः सजोषाः।।

अथर्व. ७।१८।३

(धाता) धारण पोषण करने वाला परमेश्वर (प्रजाकामाय) प्रजा अर्थात् सन्तान की कामना करने वाले (दाशुषे) दाता के लिये (दुरोणे)

उसके गृह में (विश्वा वार्या दधातु) समस्त वरणीय पदार्थों को भरपूर दें। (विश्वे देवाः) समस्त देव तथा (सजोषाः अदितिः) देवमाता अदिति (तस्मै) उसके लिये प्रेम पूर्वक (अमृतं सं व्ययन्तु) अमृत के समान सुखदायी परिस्थितियाँ उत्पन्न करें।

नित्यंश्चाकन्यात्स्वपंतिर्दमूंना,
यस्मां उ देवः संविता जजानं।
भगो वा गोभिंरर्यमेमंनज्यात्,
सो अंस्मै चारुंश्छदयदुत स्यांत्।।

ऋग्. १०।३१।४

(देवः सविता यस्मै आ जजान) सविता देव ने जिसे उत्पन्न किया है, (स्वपतिः दमूनाः नित्यः चा कन्यात्) धनों के स्वामी तथा दानशील प्रजापति उसे शुभ फल दें, (भगः वा अर्यमा ईम गोभिः अनज्यात्) भग तथा अर्यमा देव स्तुतियों से प्रसन्न होकर उसके प्रति स्नेह युक्त हों (उत अस्मै चासः छदयत् स्यात्) और हमारे लिये सब कुछ अनुकूल तथा शुभ करने वाले हों, हमारी रक्षा करने वाले हों।

भग का अर्थ सूर्य तथा अर्यमा का अर्थ वायु भी होता है।

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि।
स यथा त्वं भ्राजंता भ्राजोस्येवाहं भ्राजंता भ्राज्यासम्।।

अथर्व. १७।१।२०

हे प्रभो! (शुक्रः असि भ्राजः असि) आप वीर्यवान्, प्रकाशवान्, शुद्ध तथा तेजस्वी हैं। (स यथा त्वं भ्राजता भ्राजः असि) जैसे आप परम तेज से देदीप्यमान हैं, (एव अहम्) उसी प्रकार मैं (भ्राजता भ्राज्यासम्) तेज से तेजस्वी बनूँ, प्रकाशवान् बनूँ, मेरा जीवन ज्योतिर्मय हो।

त्र्यायुषं जमदंग्नेः कश्यपंस्य त्र्यायुषम्।
यद्देवेषुं त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्।। यजु. ३।६२

(जमदग्नेः त्र्यायुषं) हमारे चक्षु की दृष्टि शक्ति की तिगुनी आयु हो, (कश्यपस्य त्र्यायुषं) हमारे नासारन्ध्र अर्थात् घ्राणशक्ति तथा प्राणशक्ति की तिगुनी आयु हो, (क्योंकि नाक के नथुनों से ही प्राण का आना जाना होता है।) (यत् देवेषु त्र्यायुषं) देवों में जो तिगुनी आयु होती है, (तत् नः अस्तु त्र्यायुषं) वह तिगुनी आयु हमें प्राप्त हो।

यहाँ चक्षु तथा नासारन्ध्र ज्ञानेन्द्रियों के प्रतीक हैं। देवों का अर्थ इन्द्रियाँ भी होता है। इस प्रकार सभी ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों की तिगुनी आयु तथा उनके दिव्य शक्तियों से सम्पन्न होने की प्रार्थना की गयी है।

अनेक भाष्यकारों ने त्र्यायुषं का अर्थ त्रिविध आयु अर्थात् बाल्यावस्था, तारुण्य और वार्धक्य किया है किन्तु स्वामी दयानन्द जी ने इसका अर्थ तिगुनी आयु अर्थात् तीन सौ वर्ष की आयु किया है, जो उचित प्रतीत होता है। वास्तव में त्रिविध आयु की कल्पना निरर्थक है क्योंकि आयु तो चार आश्रमों में विभक्त की गयी है, तीन में नहीं।

जमदग्नि का अर्थ नेत्र तथा कश्यप का अर्थ प्राण भी होता है।

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रꣳ हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रꣳ हुवेम।।

अथर्व. ४।१।७, यजु. ३४।३४

(प्रातः अग्निं) हम प्रभात वेला में अग्नि का आवाहन करते हैं, (प्रातः इन्द्रं) प्रभात काल में इन्द्र का, (प्रातः मित्रा वरुणा) प्रभात काल में मित्र तथा वरुण का, (प्रातः अश्विना) प्रातः काल में दोनों अश्विनी कुमारों का, (प्रातः भगं) प्रातःकाल में ऐश्वर्य के देवता भग का, (पूषणं ब्रह्मणस्पतिं) पूषा एवं ब्रह्मणस्पति का (प्रातः सोमं उत रुद्रं हुवेम) तथा प्रातःकाल में सोम एवं रुद्र का आवाहन करते हैं।

यस्मै त्वमायजसे स साधत्यनर्वा क्षेति दधते सुवीर्यम्।
स तूताव नैनमश्नोत्यंहतिरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव।।

ऋग्. १।९४।२

(अग्ने) हे प्रभो, (यस्मै त्वं आयजसे सः साधति) जिसकी आप

सहायता करते हैं वह अपनी सभी कामनाओं की पूर्ति करता है, सिद्धि को प्राप्त करता है। वह (अनर्वा क्षेति सुवीर्यं दधते) शत्रु से हिंसित न होकर स्वाधीन रहते हुये सुवीर्य को, पराक्रम को धारण करता है, (सः तूताव एनं अंहतिः न अश्नोति) वह सदा उन्नति करता है, उसे दरिद्रता अथवा कोई कष्ट प्राप्त नहीं होता। (वयं तव सख्ये मा रिषाम) हे प्रभो, आपकी मित्रता में रहते हुये हम कभी दुःख तथा कष्ट को प्राप्त न हों।

भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः।
पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः।।

ऋग्. ३।१८।१

(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप परब्रह्म! (सखा इव सख्ये) जिस प्रकार मित्र अपने मित्र के लिये (पितरा इव) तथा माता पिता अपने पुत्र के लिये हित चाहने वाले होते हैं, उसी प्रकार (उप इतौ सुमनाः साधुः भव) आप हमारे समीप आने पर हमारे लिये उत्तम मन वाले, प्रसन्न चित्त एवं कल्याणकारी होइये। (जनानां प्रति क्षितयः) मनुष्यों के प्रति मनुष्य (हि पुरुद्रुहः) निश्चय ही अत्यन्त द्रोह करने वाले होते हैं, अतः (प्रतीचीः आरातीः प्रति दहतात्) हमसे द्वेष करने वाले तथा हमारे विरुद्ध कार्य करने वाले शत्रुओं को भस्म कर दीजिये।

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः।।

ऋग्. १।९९।१

(जातवेदसे) उत्पन्न हुये समस्त जगत् को जानने वाले जगदीश्वर के लिये (सोमं सुनवाम) हम सोम को निचोड़ते हैं, सोम रस तैयार करते हैं अथवा (सोमम्) ऐश्वर्य देने वाले समस्त सांसारिक पदार्थों को भगवान् के प्रति समर्पित करते हैं। जो परमात्मा (अरातीयतः वेदः) शत्रुओं के, दुष्टों के धन को (नि दहाति) निरन्तर जलाता है, नष्ट करता है, (सः अग्निः) वह अग्नि, वह प्रकाशस्वरूप परब्रह्म हमें (विश्वा) समस्त (दुर्गाणि अति पर्षदति) घोर संकटों तथा दुःखों अथवा दुर्गति से तथा (अति दुरिता)

अत्यधित दुःख देने वाले निकृष्ट पापों से इस प्रकार (अति पर्षत्) पार कर देता है (नावा सिन्धुं इव) जैसे नौका चलाने वाला नौका से नदी अथवा समुद्र के पार पहुँचा देता है।

आ ते॑ वृत्सो मनो॑ यमत्पर॒माच्चि॑त्स॒धस्था॑त्।
अग्ने॑ त्वाङ्का॑मया गि॒रा॥

यजु. १२।११५

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म! (ते वत्सः) आपका यह बच्चा (परमात् चित् सधस्थात्) उत्कृष्ट स्थान से भी (मनः आयमत्) अपने मन को हटाकर (त्वां कामया गिरा) आपकी स्तुति की कामना करने वाली वाणी में एकाग्र करता है।

बा॒हू मे॒ बल॑मिन्द्रि॒यꣳ हस्तौ॑ मे॒ कर्म॑ वी॒र्य॒म्।
आ॒त्मा क्ष॒त्रमु॒रो मम॑॥

यजु. २०।७

(मे बाहू इन्द्रियम् बलम्) मेरी भुजायें तथा इन्द्रियाँ बलशाली हों, (हस्तौ कर्म वीर्यम्) दोनों हाथ श्रेष्ठ कर्म तथा पराक्रम करने में समर्थ हों। (मम आत्मा उरः क्षत्रम्) मेरा आत्मा तथा हृदय दूसरों की रक्षा करने वाले क्षात्र तेज से युक्त हों।

त्र॒या दे॒वा एका॑दश त्रयस्त्रि॒ꣳशाः सु॒राध॑सः। बृह॒स्पति॑पु-रोहिता दे॒वस्य॑ सवि॒तुः स॒वे। दे॒वा दे॒वै र॑वन्तु मा॥

यजु. २०।११

विशेष शक्तियों से युक्त ग्यारह ग्यारह देवों के तीन समूह वाले तैंतिस देव हैं, श्रेष्ठ ऐश्वर्य से सम्पन्न बृहस्पति, ये पुरोहित अथवा गुरु हैं। (देवस्य सवितुः सवे) सविता देव की इस सृष्टि में (देवा देवैः) देव अपनी दिव्य शक्तियों से (अवन्तु मा) मेरी रक्षा करें।

बृहस्पति को देवताओं का गुरु कहा जाता है, बृहस्पति का अर्थ परमात्मा भी होता है। समस्त देवता परमात्मा के सत्य नियमों, जिन्हें ऋत

कहा जाता है, के अनुसार अपना अपना कार्य करते हैं।

ब्रह्म प्राप्ति

उद्वयं तमंसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगंन्म ज्योतिंरुत्तमम् ।।

यजु. २०।२१,२७।१०,३५।१४,३८।२४

ऋग्. १।५०।१० (पाठभेद), अथर्व. ७।५५।७(पाठभेद)

(तमसः परि) पाप एवं अज्ञान रूपी अन्धकार से ऊपर उठते हुये (स्वः पश्यन्त उत्तरम्) तथा उस श्रेष्ठ ज्योति को ज्ञान दृष्टि से देखते हुये और प्रकाश स्वरूप परमात्मा के दर्शन के लिये इच्छा एवं प्रयास करते हुये, (वयं) हमने (देवं देवत्रा) देवों में सर्वश्रेष्ठ देव तथा (ज्योतिः उत्तमम्) सूर्य के समान सर्वोत्कृष्ट ज्योति स्वरूप (सूर्य) परब्रह्म को (उत् अगन्म) प्राप्त किया।

पाप्मा वै तमः।। शतपथ. ब्रा. १४।३।१।२८

पाप ही अन्धकार है।

इसीलिये प्रार्थना की गयी है-

असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मामृतं गमय।

शतपथ.१४।४।१।३०

असत् से मुझे सत् को प्राप्त कराइये, अन्धकार से मुझे ज्योति को प्राप्त कराइये, मृत्यु से मुझे अमृत को प्राप्त कराइये।

यह जो कहा कि असत् से हटाकर सत् की प्राप्ति कराइये, तो असत् ही मृत्यु है, सत् अमृत है। इसका तात्पर्य यह है कि मुझे मृत्यु से हटाकर अमृत की प्राप्ति कराइये।

यह जो कहा कि अन्धकार से हटाकर ज्योति की प्राप्ति कराइये, तो मृत्यु ही अन्धकार है, अमृत ज्योति है। इसका तात्पर्य यह है कि मुझे मृत्यु से हटाकर अमृत की प्राप्ति कराइये।

यह जो कहा कि मृत्यु से हटाकर अमृत की प्राप्ति कराइये, यह तो स्पष्ट है।

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूंतीरनुं।
इच्छन्तीरुरुचक्षंसम्।।

ऋग्. १।२५।१६

(इच्छन्तीः उरुचक्षसम्) उस सर्वदृष्टा, सर्वसाक्षी प्रभु की इच्छा करने वाली (मे धीतयः) मेरी बुद्धियाँ उस प्रकार (परा यन्ति) दूर दूर तक जाती हैं, (न) जिस प्रकार (गावः गव्यूतीः अनु) गौवें गोष्ठ की ओर, अपने आश्रय स्थान की ओर जाती हैं। गव्यूतीः गावो अत्र यूयन्ते इति।

बुद्धि का सांसारिक विषयों की ओर न भागकर परमात्मा की ओर, उसे प्राप्त करने की इच्छा से जाना, परमावश्यक है। बिना इसके साधना सफल हो ही नहीं सकती।

पृष्ठात् पृंथिव्या अहमन्तरिंक्षमारुंहमन्तरिंक्षा द्दिवमारुंहम्।
दिवो नाकंस्य पृष्ठात् स्वं१र्ज्योतिंरगामहम्।।

यजु. १७।६७, (पाठभेद) अथर्व. ४।१४।३

(पृथिव्याः पृष्ठात्) पृथिवी के पृष्ठभाग से (अहम् अन्तरिक्षम् आरुहम्) मैं अन्तरिक्ष पर आरूढ़ हो गया हूँ, (अन्तरिक्षात् दिवम् आरुहम्) अन्तरिक्ष से द्युलोक पर आरूढ़ हुआ हूँ तथा (नाकस्य दिवः पृष्ठात्) सुख पूर्ण द्युलोक अथवा स्वर्ग के पृष्ठ से ऊपर उठकर (अहम् स्वः ज्योतिः अगाम) मैंने आनन्द मय ज्योति को प्राप्त किया है, परमात्मा को प्राप्त किया है।

स्वर्यन्तो नापेंक्षन्त आ द्यां॑ रोहन्ति रोदंसी।
यज्ञं ये विश्वतोधारं॑ सुविंद्वांसो वितेनिरे।।

अथर्व. ४।१४।४, यजु. १७।६८

(ये सुविद्वांसः विश्वतो धारं यज्ञं वितेनिरे) जो श्रेष्ठ विद्वान् समस्त विश्व को धारण करने वाले अथवा सब ओर से, सब प्रकार से धारण करने वाले यज्ञ का विस्तार करते हैं, ऐसे (स्वः यन्त) सर्वोत्कृष्ट ज्योति अथवा परमानन्द को प्राप्त करने वाले ज्ञानी जन (न अपेक्षन्ते) किसी अन्य वस्तु

अथवा सांसारिक सुख एवं वैभव आदि की अपेक्षा नहीं करते प्रत्युत (रोदसी) पृथिवी एवं द्युलोक के बीच से ऊपर उठकर (द्यां आरोहन्ति) ज्योतिर्मय द्युलोक अथवा ब्रह्मलोक पर आरोहण करते हैं, उसे प्राप्त करते हैं।

परीत्यं भूतानिं परीत्यं लोकान्,
परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशंश्च।
उपस्थायं प्रथमजामृतस्या-,
त्मनाऽत्मानंमभि सं विंवेश।।
यजु. ३२।११

(परीत्य भूतानि) ज्ञानी भक्त उपासना द्वारा समस्त प्राणियों, (परीत्य लोकान्) लोक लोकान्तरों में व्याप्त (परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च) तथा समस्त दिशाओं एवं प्रदिशाओं में व्याप्त, (ऋतस्य प्रथमजा उपस्थाय) सत्य नियमों के प्रथम एवं श्रेष्ठ प्रवर्तक (आत्मना आत्मानं अभि संविवेश) परमात्मा में अपने आत्मा द्वारा प्रविष्ट हो जाता है। मोक्ष के समय उपासक का आत्मा परमात्मा में प्रवेश कर जाता है।

परि द्यावांपृथिवी सद्य इत्वा परिं लोकान् परिदिशः परि स्वः।
ऋतस्य तन्तुं वितंतं विचृत्य तदंपश्यत्तदंभवत्तदांसीत्।।
यजु. ३२।१२

(द्यावा पृथिवी) द्युलोक, पृथिवी लोक तथा (परि लोकान्) अन्य लोक लोकान्तरों और (परि दिशः परि) दिशाओं आदि का ज्ञान प्राप्त करके उपासक जब (स्वः) आत्मज्ञान प्राप्त करके (ऋतस्य तन्तुं विततं) सब ओर फैले हुये सत्य के विस्तृत सूत्र (जिसमें सब लोक लोकान्तर आदि माला में मणियों की तरह पिरोये हुये हैं) अर्थात् प्रकाश एवं परम आनन्द स्वरूप परमात्मा को (विचृत्य) संसार से ऊपर उठकर, संसार से अलग जानकर (तत् अपश्यत) उस परब्रह्म का साक्षात्कार करता है, तब वह (सद्यः) तत्काल (तत् अभवत्) वही हो जाता है (तत् आसीत्) जैसा कि वह

पहले जन्म मृत्यु के चक्र में आने से पूर्व था अर्थात् ब्रह्म में लीन हो जाता है।

मोक्ष प्राप्त करने के लिये केवल सांसारिक पदार्थों का ज्ञान ही आवश्यक नहीं है प्रत्युत संसार से अलग हटकर ब्रह्म को जानना आवश्यक है।

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ।।

कठोपनिषद्. १।३।८

जो विवेक सम्पन्न ज्ञानी अपने मन को वश में करने वाला तथा संयत चित्त एवं मन, वाणी तथा कर्मों की पवित्रता से सदा युक्त रहता है, वह उस पद को प्राप्त करता है, जिस पद की प्राप्ति के पश्चात् पुनर्जन्म नहीं होता।

आत्मानं चेद्विजानीयाद् अयमस्मीति पुरुषः। किमिछन्कस्य कामाय शरीरमनु संज्वरेत्।।

बृहदा. उप. ४।४।१२

यदि पुरुष आत्मा को 'मैं यह हूँ' इस प्रकार जान ले, तो फिर क्या इच्छा करता हुआ, किसा कामना के लिये शरीर को संतप्त करे, दुखी करे।

आत्मनस्तु कामाय सर्व प्रियं भवत्यात्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मव्या विज्ञानेनेदं सर्व विदितम्।।

शंतपथ. १३।६।२।११

सबके लिये सब प्रिय नहीं होता। अपने लिये सब प्रिय होता है। इसलिये आत्मा ही देखने, सुनने, मानने और विचारने योग्य है। हे मैत्रेयि! आत्मा को देखने, सुनने तथा विचारने से सब कुछ स्पष्ट हो जाता है, सब कुछ ज्ञात हो जाता है।

य एतदक्षरं गार्गि विदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः।

शतपथ. ब्रा. १४।५।८।१०

हे गार्गी ! जो इस अविनाशी ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करके इस लोक से

विदा होता है, वही ब्राह्मण है।

उपासना

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्वाय सविता धियः।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याऽभरत्॥

श्वेताश्वतर उपनिषद्, २।१ यजुर्वेद,११।१

(तत्वाय) तत्व ज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये (प्रथमं) सर्वप्रथम (सविता मनः धियः युञ्जानः) समस्त जगत् के उत्पादक एवं प्रेरक सविता देव में, परमेश्वर में मन तथा धारणावती बुद्धि को युक्त करते हुये, लगाते हुये, (पृथिव्याः अधि) तथा पार्थिव पदार्थों से ऊपर उठकर, बाह्य विषयों से अलग होकर (अग्नेः ज्योतिः निचाय्य) परमात्मा की ज्योति को, उसके प्रकाश अथवा (भर्गः) तेज को जानकर प्राप्तकर (आभरत्) उसे अपने अन्दर धारण करे।

तत्व ज्ञान के लिये आवश्यक है मन तथा बुद्धि को स्थिर एवं एकाग्र करना और इसका एकमात्र उपाय है, इन्हे मंगलकारी प्रेरणा देने वाले सविता देव अर्थात् परमात्मा में लगाना और बाह्य विषयों से ऊपर उठकर परमात्मा के वरण करने योग्य तेज को, उसकी ज्योति को अपने अन्दर धारण करना। जितने अंश मे हम उस परम पिता परमात्मा के तेज को ग्रहण करके अपने अन्दर धारण कर सकेंगे उतने ही हम उसके निकट पहुँचने के योग्य बन सकेंगे।

प्रजापतिः ऋषिः । सविता देवता। शंकुमती गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ।

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे ।
स्वर्ग्याय शक्त्या।

श्वेताश्वर उपनिषद्,२।२ यजुर्वेद,११।२

श्वेताश्तर उपनिषद् में 'स्वर्ग्याय' के स्थान पर 'सुवर्गेयाय' शब्द आया है।

(सवितुः देवस्य सवे) समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले तथा

प्रेरणा देने वाले सविता देव की, परब्रह्म की इस सृष्टि में (युक्तेन मनसा) योग युक्त निर्मल शान्त मन से (वयं स्वर्ग्याय शक्त्या) हम सुख अथवा परम आनन्द की प्राप्ति के लिये अपनी पूर्ण शक्ति से प्रयास करें।

अथवा, (युक्तेन मनसा) हम योग युक्त समाहित, संयमित तथा विषयों से विरक्त मन से (सवितुः देवस्य सवे) समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले, उसको प्रेरणा देने तथा पालन पोषण करने वाले सविता देव की, परब्रह्म की आज्ञा में अर्थात् उसके निर्देशों, नियमों एवं वेदोक्त आदेशों के अनुसार (स्वर्ग्याय शक्त्या) सुवर्ग अर्थात् विशेष सुख, ऐश्वर्य एवं वैभव की प्राप्ति के लिये अपनी पूर्ण शक्ति से निरन्तर प्रयास करें।

पहले मन्त्र में मन तथा बुद्धि को परमात्मा में संयुक्त करने का निर्देश दिया गया है तथा इस मन्त्र में परमात्मा में युक्त मन से दिव्य एवं अलौकिक सुख की प्राप्ति के लिये सतत् प्रयास करने की शिक्षा दी गई है।

यही हमारे जीवन का लक्ष्य, कर्तव्य एवं जीवन दर्शन होना चाहिये।

योग युक्त मन का तात्पर्य हानि-लाभ, सुख-दुःख, जय-विजय आदि में समबुद्धि होना, प्रत्येक प्राणी के प्रति समत्व का भाव रखना तथा चित्त की वृत्तियों के निरोध एवं इन्द्रियों के निग्रह से प्राप्त, संयमित, निर्मल एवं शान्त मन की उस अवस्था से है जब वह पूर्ण रूपेण परमात्मा से संयुक्त हो जाता है।

युक्त्वाय॑ सवि॒ता दे॒वान्त्स्व॑र्य॒तो धि॒या दिव॑म् ।
बृ॒हज्ज्योति॑: करिष्य॒त: स॑वि॒ता प्र सु॑वाति॒ तान् ।।

श्वेताश्वतर, उपनिषद्, २।३ यजुर्वेद, ११।३

जो सविता देव में, परमात्मा में अपने मन तथा इन्द्रियों को (युक्त्वाय) संयुक्त करके (स्वः यतः) सुख प्राप्त कराने वाली, सुखस्वरुप परब्रह्म की ओर जाने वाली (धिया) बुद्धि तथा (बृहत् ज्योतिः दिवम्) महान् प्रकाश करने वाले दिव्य ज्ञान से (करिष्यत) भक्तिपूर्वक उपासना करने वाले हैं, (तान् देवान् सविता प्रसुवाति) उन विद्वान् उपासकों को

परम कारुणिक प्रभु प्रेरणा देता है, उत्साहित करता है, सहारा देता है।

स्वामी शङ्कराचार्य जी ने श्वेताश्वतर उपनिषद् के अपने भाष्य में 'देवान्' का अर्थ मन आदि इन्द्रियाँ किया है। शतपथ ब्राह्मण,६।३।१।१५ में कहा गया है, 'मनो वै सविता प्राणा देवाः।' मन सविता है, प्राण देव हैं तथा 'बृहत् ज्योतिः करिष्यतः' का अर्थ है, बृहत् ज्योति उत्पन्न करने वाला। यह आदित्य ही बृहत् ज्योति है। इस प्रकार इस मन्त्र का अर्थ होगा-

जो सविता देव में, परमात्मा में अपने मन तथा संयमित इन्द्रियों एवं (स्वः यतः) सुखस्वरूप परब्रह्म की ओर चलने वाली बुद्धि को संयुक्त करते हैं, उन्हें (दिवं) द्युलोक में स्थित आदित्य रूपी बृहत् ज्योति को उत्पन्न करने वाला सविता अपनी ओर प्रेरित करता है, उनके हृदय में अपने दिव्य स्वरूप को प्रकाशित करता है। 'दिवं प्रसुवाति दिव्य स्वरूपं प्रकाशयति' स्वामी दयानन्द (ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका)

युञ्जते मनं उत युंञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विंपश्चितः। वि होत्रां दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्यं सवितुः परिंष्टुतिः॥

ऋग्वेद,५।८१।१

श्वेताश्वतर उपनिषद् २।४, यजुर्वेद,५।१४,११।४,३७।२

(विप्राः) मेधावी विद्वान् तथा ज्ञानीजन (बृहतः विपश्चितः विप्रस्य) महान्, अनन्त ज्ञान युक्त, सर्वज्ञ परमात्मा में अपने (मनः युञ्जते उत धियः युञ्जते) अपने मन को संयुक्त करते हैं तथा अपनी बुद्धि को संयुक्त करते हैं अर्थात् बाह्य विषयों से हटा कर अपने मन एवं बुद्धि को केवल एक मात्र परमात्मा में ही एकाग्ररूप से केन्द्रित कर देते हैं, उसी की भावना, उसी का ध्यान तथा उसी का अनन्य भाव से चिन्तन करते हैं। (वयुनावित् एकः इत् होत्राः विदधे) समस्त कर्मों, मनोभावों एवं चेष्टाओं को जानने वाले तथा अकेले ही समस्त यज्ञों को, समस्त जगत् को धारण करने वाले, (सवितुः देवस्य परिष्टुतिः मही) सविता देव की स्तुति महान् एवं श्रेष्ठ है।

तात्पर्य यह है कि केवल परमात्मा की ही स्तुति करनी चाहिये, वही कल्याणकारी है, अन्य किसी देवता अथवा पुरुष चाहे वह कितना ही महान् क्यों न हो, की स्तुति अथवा उपासना नहीं करनी चाहिये। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि जो लोग ब्रह्म से भिन्न अन्य देवताओं की उपासना करते हैं वे उन देवताओं के पशु के समान हैं और उन देवताओं को यह अच्छा नहीं लगता कि ये भक्त रूपी पशु उनसे छिन जायें, उनकी अर्चना एवं उपासना बन्द कर दें क्योंकि संसार में किसी व्यक्ति का यदि एक भी पशु खो जाता है अथवा उससे दूर चला जाता है, तो उस व्यक्ति को अत्यन्त दुःख होता है, अतः यदि उन देवताओं के इतने सारे भक्त रूपी पशु उनसे अलग हो जायँ, तो उन्हें कितना दुःख होगा।

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोकं एतु पथ्येव सूरेः। शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः।।

ऋग्वेद, १०।१३।१

श्वेताश्वतर उपनिषद्,२।५ यजुर्वेद,११।५

(ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः वां युजे) हे बुद्धि तथा मन! मैं नमस्कार वचनों से, भक्ति पूर्वक की गयी स्तुतियों से तुम दोनों को उस (पूर्व्यं पूर्वं चिरन्तनम्) अनादि, अनन्त, पुरातन एवं सनातन ब्रह्म में संयुक्त करता हूँ। (सूरेः पथ्या इव श्लोकः वि एतु) परम विद्वानों के मार्ग के तुल्य, उनके श्रेष्ठ जीवन पथ का अनुसरण करते हुये मुझे सत्य कीर्ति प्राप्त हो अथवा (श्लोकः सूरेः पथ्या इव वि एतु) मेरा यह श्लोक, मेरे द्वारा वेद मन्त्रों से की गयी सुखदायी स्तुति देवों की कीर्ति की भाँति सब ओर फैल जाय। मेरी इस प्रार्थना को (दिव्यानि धामानि आ तस्थुः विश्वे अमृतस्य पुत्राः शृण्वन्तु) दिव्य धामों में स्थित समस्त अमृत पुत्र सुनें।

परमात्मा का अंश होने के कारण आत्मा यथार्थ में अमृत पुत्र है। वास्तव में हम सब अमृत पुत्र हैं किन्तु उस अमृतत्व की प्राप्ति के लिए हमें अपने अमृत स्वरूप परम पिता के साथ अपने मन तथा अपनी बुद्धि को

अनन्य भक्ति के साथ संयुक्त करना चाहिए और उन श्रेष्ठ पुरुषों के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए जो देवत्व प्राप्त करके परमात्मा के दिव्य धाम में स्थित हैं।

शतपथ ब्राह्मण ६।३।१।१७ में श्लोक का अर्थ कीर्ति किया गया है और कहा गया है कि प्रजापति अमृत है, सब देव उसके पुत्र हैं तथा यह लोक ही दिव्य धाम है और इसमें ये देव उपस्थित हैं।

तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः।
सत्यस्य युवानमद्रोघवाचं सुशेवम्।।

अथर्व. ६।१।२

(तं उ स्तुहि) उसी की स्तुति करो (यः सिन्धौ अन्तः) जो हमारे हृदय तथा इस संसार रूपी समुद्र के अन्दर (सत्यस्य सूनुः) सत्य की प्रेरणा देने वाला, (युवानम्) सदा युवा तथा (अ द्रोघ वाचं) दोषरहित वेद वाणी का स्वामी है और (सुशेवम्) उत्तम सुखदायक है।

शेवम् सुख नाम। निघण्टु. ३।६

सूनुः- षू प्रेरणे। (तुदादिः)

दोषो गांय बृहद् गांय द्युमद्धें हि।
आथर्वण स्तुहि देवं संवितारंम्।।

अथर्व. ६।१।१

(आथर्वण) हे स्थिर मन तथा बुद्धि वाले भक्त! (दोषो गाय) रात्रि के समय परमात्मा का गान करो, (बृहत् गाय) बहुत गान करो, (सवितारं देवं स्तुहि) सविता देव की स्तुति करो (द्युमत् धेहि) तथा भगवान् के ज्योतिर्मय स्वरूप को अपने हृदय में धारण करो।

थर्वतिः चरतिकर्मा तत्प्रतिषेधः।

निरुक्त. ११।२।१३

'थर्व' धातु का अर्थ है चंचल होना, चलना। उसका प्रतिषेध हुआ 'अथर्व'

युञ्जन्तिं ब्रध्नमंरुषं चरंन्तं परिं तस्थुषंः।
रोचंन्ते रोचना दिवि ।।

साम. क्र.सं. १४६८, अथर्व. २०।४७।१०,२०।६९।९,२०।२६।४
ऋग्वेद,१।६।१, यजुर्वेद,२३।५

जो उपासक (ब्रध्नं सर्वानन्दवर्धकं महान्तं परमेश्वरम्) सबसे महान्, समस्त प्रकार के सुखों की वृद्धि करने वाले, (अरुषम्) क्रोध न करने वाले, किसी की हिंसा न करने वाले, सब को सुख देने वाले, परम करुणामय, आदित्यवर्ण, प्रकाशस्वरुप (तस्थुषः) समस्त स्थावर जङ्गम जगत् में (परिचरन्तं) सब ओर से व्याप्त होने वाले, सर्वज्ञ परमात्मा में (युञ्जन्ति) अपने मन, बुद्धि तथा आत्मा को भली प्रकार से संयुक्त कर देते हैं, वे (दिवि रोचना) द्युलोक में व्याप्त सूर्य की किरणों के समान यशस्वी तथा तेजस्वी होकर (रोचन्ते) प्रकाशित होते हैं, शोभायमान होते हैं, मोक्ष, सुख को प्राप्त करते हैं।

ब्रध्न महन्नामसु पठितम्। (निघण्टु. ३।३)

इन्द्रमिद्गाथिनों बृहदिन्द्रंमर्केभिंरर्किणंः।
इन्द्रं वाणीरनूषत।।

साम. क्रं.सं. १९८ तथा ७९६, ऋग्. १।७।१

(गाथिनः) हे साम गान करने वालो! तुम सर्वोत्तम गान से (बृहत् इन्द्रं इत् अनूषत) महान् इन्द्र का ही, परमेश्वर का ही स्तवन करो, (अर्किणः) हे वेदपाठी लोगो! (अर्केभिः इन्द्रं) वेद मन्त्रों से इन्द्र की अर्चना करो तथा हे मनुष्यो! तुम अपनी वाणी द्वारा इन्द्र की महिमा का गान करो, स्तुति करो।

अर्को मन्त्रो भवति यदेनेनार्चन्ति।

निरुक्त. ५।४

अर्क का अर्थ है मन्त्र, जिससे भगवान् की अर्चना की जाती है।

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ।।

गीता,६।२०

(यत्र योगसेवया निरुद्धम् चित्तम्) जिस अवस्था में योगाभ्यास से निरुद्ध हुआ, चंचलता रहित हुआ चित्त, (उपरमते उपरतिं गच्छति) शान्त हो जाता है, (च यत्र यस्मिन् काले) तथा जिस अवस्था में योगी (आत्मना) अपने निर्मल आत्मा से (आत्मानं पश्यन्) परमात्मा का दर्शन करता हुआ साक्षात्कार करता हुआ, (आत्मनि एव तुष्यति) अपने आप में ही परम तुष्टि को, परम आनन्द को प्राप्त करता है

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ।।

गीता, ६।२८

(एवं सदा आत्मानं युञ्जन्) इस प्रकार अपने आत्मा को परमात्मा के साथ निरन्तर संयुक्त करता हुआ (विगत कल्मषः योगी) पापरहित योगी (सुखेन) बिना किसी कठिनाई के अनायास ही (ब्रह्म संस्पर्शम्) परब्रह्म के संस्पर्श का, ब्रह्म की प्राप्ति का (अत्यन्तं सुखम् अश्नुते) अत्यन्त, असीम परमानन्द प्राप्त करता है।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।।

गीता. ८।२२

हे पार्थ ! वह परमात्मा जिसमें समस्त प्राणी स्थित हैं और जो समस्त संसार में व्याप्त है, अनन्य भक्ति द्वारा प्राप्त किये जाने योग्य है।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।

गीता, ९।२२

अनन्य भाव से चिन्तन करते हुये जो मेरी उपासना करते हैं उन, भक्तिभाव से मुझ में नित्य अभियुक्त होने वाले, भली प्रकार जुड़ जाने

वाले, भक्तों के योग तथा क्षेम को मैं स्वयं वहन करता हूँ।

(अलब्धलाभो योगः) अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति का नाम योग है तथा (प्राप्तस्य संरक्षणं क्षेमः) प्राप्त वस्तु के संरक्षण का नाम क्षेम है।

परमात्मा का वर्णन

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः। जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः।।

ऋग्. ९।९६।५

आध्यात्मिक अर्थ

निरुक्त १२।१४ के अनुसार

(सोमः पवते) सब का आत्म स्वरुप परमेश्वर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के कण कण में गति कर रहा है। वह परमात्मा (जनिता मतीनां) बुद्धियों को उत्पन्न करने वाला, समस्त ज्ञानों का प्रकाशक (दिवो जनिता) द्युलोक को उत्पन्न करने वाला (जनिता पृथिव्याः) पृथिवी को उत्पन्न करने वाला, (जनिता अग्निः) अग्नि को उत्पन्न करने वाला, (सूर्यस्य जनिता) सूर्य को उत्पन्न करने वाला, (जनिता इन्द्रस्य) विद्युत अथवा ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाला गतिशील, प्रेरक, (उत जनयिता विष्णोः) विष्णु अर्थात् व्यापक यज्ञ एवं इन्द्रियों को उत्पन्न करने वाला है।

ऋषिः- विश्वकर्मा भौवनः, देवता-विश्वकर्मा

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव। नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति।।

यजु. १७।३१ ऋग्. १०।८२।७

(न तं विदाथ यः इमा जजान) हे मनुष्यो! तुम उस परब्रह्म को नहीं जानते, जिसने इन सब लोकों तथा प्राणियों को उत्पन्न किया है (युष्माकं अन्तरं अन्यत् बभूव) और जो तुम्हारे अन्दर तुमसे भिन्न अर्थात् परमात्मा के रुप में स्थित है। (नीहारेण प्रावृताः) अज्ञान के अन्धकार से आच्छादित

ऐसे (जल्प्या) व्यर्थ वाद विवाद में व्यस्त रहने वाले (असुतृपः) तथा अपने प्राणों के पोषण में तत्पर (उक्थशासः चरन्ति) केवल वचन मात्र से परमेश्वर की स्तुति करने वाले, अपने मनमाने मार्ग पर विचरण करने वाले लोग उस विश्वकर्मा सर्वव्यापक परब्रह्म को नहीं जान सकते।

त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः।।

यजु. ११।२७, ऋग्. २।१।१

आध्यात्मिक अर्थ

निरुक्त त्रयोदश अध्याय खण्ड १ के अनुसार

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म! (त्वं द्युभिः जायसे) तुम दिनों से प्रसिद्ध हो रहे हो अर्थात् दिनों से तुम्हारी महिमा प्रकट हो रही है, (त्वं आशु शुक्षणिः शुचिः) तुम सर्वत्र दीप्तिमान तथा प्रकाश देने वाले अग्नि, विद्युत तथा सूर्य से प्रसिद्ध हो रहे हो।

(त्वं अद्भ्यः त्वं अश्मनस्परि) तुम जलों से, हीरा आदि पत्थरों से प्रकट हो रहे हो, (त्वं वनेभ्यः त्वं ओषधीभ्यः जायसे) तुम जंगलों से, तुम ओषधियों से प्रसिद्ध हो रहे हो। (नृणां नृपते) हे मनुष्यो की सदा रक्षा करने वाले! (त्वं शुचिः) तुम शुद्ध तथा पवित्र हो।

तात्पर्य यह है कि भगवान् की महिमा सब ओर दिखायी दे रही है, जिधर देखो हर वस्तु में वही दिखायी दे रहा है।

(इन्द्रो विश्वस्य राजति) सब ओर परमात्मा की महिमा, उसकी आभा शोभायमान हो रही है।

(त्वं आशु शुक्षणिः जायसे) आ सर्वतो दीप्यमानो भवसि। (शुच दीप्तौ) सायणाचार्य।

त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः।
त्वं ब्रह्मा रयिविद्ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरन्ध्या।।

ऋग्. २।१।३

आध्यात्मिक अर्थ-

(अग्ने) हे प्रशकाश स्वरूप परब्रह्म! (त्वं सतां) तुम सत्पुरुषों के (वृषभः) श्रेष्ठ एवं बलवान् रक्षक (इन्द्रः असि) इन्द्र हो, (त्वं विष्णुः उरुगायः नमस्य) बहुतों द्वारा जिनका कीर्तन किया जाता है, जिनका यशोगान किया जाता है, ऐसे तुम सर्वव्यापक तथा सबके द्वारा प्रणाम किये जाने योग्य विष्णु हो, (ब्रह्मणस्पते त्वं रयिवत् ब्रह्मा) वेदों की रक्षा करने वाले हे ब्रह्मणस्पते! तुम ज्ञानादि ऐश्वर्यों से युक्त ब्रह्मा हो, (त्वं विश्वतः पुरंध्या) तुम ज्ञान से युक्त मेधावी हो (विधर्तः) तथा विशेष रूप से धारण करने वाले हो।

त्वमंग्ने राजा वरुंणो धृतव्रंतस्त्वं मित्रो भंवसि दस्म ईड्यंः।
त्वमंर्यमा सत्पंतिर्यस्यं संभुजं त्वमंशो विदथें देव भाजयुः।।

ऋग्. २।१।४

(अग्ने) हे प्रभो! (त्वं धृतव्रतः वरुणो राजा) तुम सत्य के व्रत को धारण करने वाले वरुण राजा हो, (दस्मः ईड्यः मित्रः भवसि) तुम दुःखों और दुष्टों का नाश करके सुख देने वाले, स्तुति एवं प्रशंसा के योग्य मित्र हो, (त्वं अर्यमा सत्पतिः) तुम न्यायकारी तथा सज्जनों के रक्षक अर्यमा हो, (यस्य संभुजम्) जिसका दान सबको प्राप्त होता है, (त्वं अंशः देव विदथे भाजयुः) हे देव! तुम सूर्य के समान प्रेरणा देने वाले तथा जीवन के संग्रामों और यज्ञों में सहायता देने वाले तथा अभीष्ट फल देने वाले हो।

संभुजं संततभुजं व्यापकं भाजयुः।

जिसका धन श्रेष्ठ पुरुषों के सम्यक् भोग के लिये है।

फला भानांजयिता प्रापयितासि।

हमारे यज्ञ में अभीष्ट फलों को देने वाले हो। (सायणभाष्य)

त्वमंग्ने रुद्रो असुंरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुंतं पृक्ष ईशिषे। त्वं वातैंररुणैर्यांसि शंगयस्त्वं पूषा विंधतः पांसि नुत्मनां।।

ऋग्. २।१।६

हे प्रभो! (त्वं महः दिवः असुरः रुद्रः) तुम महान द्युलोक से प्राणों का संचार करने वाले आदित्य रूपी रुद्र हो, अथवा पापों, दुष्टों एवं दुःखों का नाश करने वाले रुद्र हो, (त्वं मारुतं शर्धः) तुम मरुतों का बल हो, वायु रुप हो, (इस प्रकार तुम अग्नि, वायु तथा आदित्य रूप हो), (पृक्षः अन्नस्य ईशिषे ईश्वरो भवसि) तुम अन्नों के स्वामी हो, (त्वं वातैः अरुणैः शंगयः यासि) तुम गमनशील वायु के समान सुख देने के लिये सबको प्राप्त होते हो, (त्वं पूषा नु) तुम सबका पालन करने वाले पूषा हो, (त्मना विधतः पासि) तथा स्वयं कृपा करके मनुष्यों की रक्षा करने वाले हो।

रुद्रो रौतीति सतः रोदयतीति रुद्रः। (निरुक्त. १०।१।३)

जब किसी के शरीर से आत्मा एवं प्राण निकलते हैं, तब उसके संबन्धियों को रुलाते हैं। अतः रोदन कराने से दस प्राण तथा आत्मा रुद्र हैं।

(असुरः) असून प्रणानि राति ददाति। प्राणों को देने वाले।

असुर्बलम्। तस्य दाता आदित्य रूपश्च त्वमसि। (सायणभाष्य)

अ॒ग्निर॑स्मि॒ जन्म॑ना जा॒तवे॑दा घृ॒तं मे॒ चक्षु॑र॒मृतं॑ म आ॒सन्।
अ॒र्कस्त्रि॒धातू॒ रज॑सो वि॒मानो ऽज॑स्रो घ॒र्मो ह॒विर॑स्मि॒ नाम॑॥

यजु. १८।६६ ऋग्.३।२६।७

(अग्निः अस्मि) मैं अग्नि हूँ (जन्मना जातेवेदाः) तथा जन्म से ही सर्वज्ञ हूँ। (घृतं मे चक्षुः) यह सम्पूर्ण तेज मेरा चक्षु है, (अमृतं मे आसन्) अमृत अथवा मोक्ष मेरे मुख मे है। (अर्कः त्रि धातुः रजसः विमानः) मैं सर्वपूज्य, तीनों लोकों को धारण करने वाला तथा समस्त लोक लोकान्तरों का निर्माणकर्ता हूँ, (अजस्रः घर्म) अजस्र ज्योति हूँ, यज्ञ स्वरूप हूँ, (हविः नाम अस्मि) तथा सर्व ग्राह्य होने के कारण हवि नाम वाला हूँ अथवा आज्य पुरोडाश आदि रुपी जो हवि है, वह भी मैं ही हूँ।

'नाम शब्दः प्रसिद्धौ'। (सायण भाष्य)

अर्कः जगत्सृष्टा प्राणः। (सायण भाष्य)

त्रि धातुः।

अग्नि, वायु तथा आदित्य के रूप में पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक का अधिष्ठाता हूँ।

सायण भाष्य

विमानः विमाता अधिष्ठाता अस्मि। (सायण भाष्य)

अर्कः अर्चनीयः।

सर्वं खल्विदं ब्रह्म। छान्दोग्य. (उप. ३।१४।१)

निश्चित रूप से यह सब ब्रह्म ही है।

तन्मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु

गायत्री उपासना की सफलता तथा जीवन की श्रेष्ठता एवं पवित्रता के लिये आवश्यक है, मन की निर्मलता क्योंकि मन ही समस्त इन्द्रियों को नियन्त्रित करता है, वही अच्छे अथवा बुरे जीवन का निर्माण करता है। अतः हमें सदैव यह प्रयास करना चाहिये कि हमारे मन में कभी कोई बुरा विचार तथा निकृष्ट संकल्प न आये, हमारे सभी संकल्प तथा कर्म कल्याणकारी हों। इसके लिये यजुर्वेद के निम्नाङ्कित मन्त्रों में की गयी प्रार्थना अद्वितीय एवं सर्व श्रेष्ठ है।

संसार की किसी भी भाषा में ऐसी अद्भुत प्रार्थना नहीं है। प्रत्येक विद्यार्थी एवं प्रबुद्ध व्यक्ति को इन मन्त्रों को ध्यान पूर्वक पढ़कर अपने मन को शिव संकल्प वाला बनाना चाहिये।

यज्जाग्रंतो दूरमुदैति दैवं तदुं सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः
शिवसंङ्कल्पमस्तु॥ यजु. ३४।१

(यत् जाग्रतः दूरं उत् एति) जो जाग्रत अवस्था में दूर दूर जाता है (तत् उ सुप्तस्य तथा एव दैवं एति) और जो सुप्तावस्था में उसी प्रकार आत्मा की ओर चला जाता है, (दूरङ्गमं ज्योतिषां एकं ज्योतिः) दूर-दूर जाने वाला, तथा सभी ज्ञानेन्द्रियों को प्रकाशित करने वाली एक मात्र ज्योति के रूप में स्थित (तत् मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु) वह मेरा मन शिव संकल्प वाला हो, सत् एवं कल्याणकारी सङ्कल्प वाला हो।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।

यजु.३४।२

(येन अपसः मनीषिणः धीराः यज्ञे विदथेषु कर्माणि कृण्वन्ति) जिसकी सहायता से धर्मनिष्ठ, सत्यवादी आप्त विद्वान् एवं मनीषी तथा धीर पुरुष यज्ञों में, विज्ञान सम्बन्धी कार्यों में तथा युद्धों अथवा जीवन के संघर्षों में विभिन्न कर्म करते हैं (यत् प्रजानां अन्तः अपूर्वं यक्षं) जो प्राणियों के अन्तःकरण में अपूर्व अर्थात् सर्वोत्तम गुण कर्म स्वभाव वाला अद्भुत पूजनीय यक्ष स्वरूप है, (तत् मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु) वह मेरा मन शिव सङ्कल्प वाला हो।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।। यजु.३४।३

(यत् प्रज्ञानम् उत चेतः धृतिः च) जो ज्ञान, चेतना, स्मृति तथा धैर्य आदि मानवीय सद्गुणों एवं भावनाओं का आधार है, (यत् प्रजासु अन्तः अमृतं ज्योतिः) जो प्राणियों के अन्तःकरण में अमृत ज्योति स्वरूप है, (यस्मान् ऋते किं चन कर्म न क्रियते) तथा जिसके बिना कोई भी कर्म नहीं किया जा सकता, (तत् मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु) वह मेरा मन शिव संङ्कल्प वाला हो।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।

यजु.३४।४

(येन अमृतेन भूतं भुवनं भविष्यत् सर्वं इदं परिगृहीतम्) जिस अमृत स्वरुप मन से भूत, भविष्य तथा वर्तमान में स्थित सब कुछ भली प्रकार ग्रहण किया जाता है, जाना जाता है, (येन सप्तहोता यज्ञ: तायते) शरीर में निरन्तर चलने वाला सप्तहोता यज्ञ जिसके द्वारा सम्पन्न होता है (तन्मे मन: शिवसङ्कल्पमस्तु) वह मेरा मन शिव सङ्कल्प वाला हो।

सप्तहोता–प्राण, अपान, व्यान, चक्षु, श्रोत्र, वाणी तथा मन, ये शरीर रूपी यज्ञ के सात होता हैं। (यजु.२२।२३)

यस्मिन्नृच: साम यजूंꣳषि यस्मिन् प्रतिंष्ठिता रथनाभाविंवारा:। यस्मिँश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनं: शिवसंङ्कल्पमस्तु।।

यजु.३४।५

(यस्मिन् ऋच: साम यजूंषि) जिसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा (यस्मिन्) जिसमें अथर्ववेद (रथनाभौ अरा: इव प्रतिष्ठिता:) इस प्रकार प्रतिष्ठित रहते हैं जिस प्रकार रथ के पहिये की नाभि में पहिये के आरे प्रतिष्ठित रहते हैं, (यस्मिन् प्रजानां सर्वं चित्तं ओतम्) तथा जिसमें प्रजाओं का सम्पूर्ण चित्त ओत प्रोत रहता है (तत् मे मन: शिवसङ्कल्पमस्तु) वह मेरा मन शिव सङ्कल्प वाला हो।

सुषारथिरश्वांनिव यन्मंनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुंभि-र्वाजिनं इव। हृत्प्रतिंष्ठं यदंजिरं जविंष्ठं तन्मे मनं: शिवसंङ्कल्पमस्तु।।

यजु.३४।६

(यत् सुषारथि: अश्वान् इव मनुष्यान् नेनीयते) जो मनुष्यों को इस प्रकार इधर उधर ले जाता है, जिस प्रकार कुशल सारथि अश्वों को ले जाता है (अभीशुभि: वाजिन इव) तथा जो इन्द्रियों एवं शरीर को इस प्रकार नियन्त्रण में रखता है जैसे कुशल सारथि रस्सियों से बलशाली एवं वेगवान् अश्वों को नियन्त्रण में रखता है, (यत् हृत्प्रतिष्ठं अजिरं जविष्ठं)

जो हृदय में स्थित रहने वाला, कभी वृद्ध न होने वाला तथा अत्यन्त वेगवान् है (तत् मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु) वह मेरा मन शिव सङ्कल्प वाला हो।

स्वस्तिवाचन

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽ-
दब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्न-
प्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे।।

यजु. २५।१४, ऋग्. १।८९।१

(अदब्धासः) किसी के द्वारा नष्ट न किये जा सकने वाले, विघ्नरहित, (अपरीतासः) अन्य लोगों के द्वारा प्राप्त न किये जा सकने वाले अर्थात् सर्वश्रेष्ठ अथवा शत्रुओं द्वारा अवरुद्ध न किये जा सकने वाले, (उद्भिदः) शत्रुओं का तथा दुष्टों का नाश करने वाले (भद्राः क्रतवः) कल्याणकारी यज्ञ, संकल्प, विचार तथा बल (नः विश्वतः आयन्तु) हमारे पास सब ओर से आयें (यथा अप्रायुवः) जिससे आलस्य रहित होकर (दिवे दिवे रक्षितारः देवाः) दिन प्रतिदिन रक्षा करने वाले देवगण (सद इत् नः वृधे असन्) सदैव हमारी अभिवृद्धि करने के लिये तत्पर रहें।

अथवा, जिस प्रकार देवगण आलस्य रहित होकर दिन प्रतिदिन हमारी रक्षा करने के लिये तत्पर रहते हैं, उसी प्रकार हम श्रेष्ठ, कल्याणकारी तथा शक्तिशाली विचार, संकल्प, बुद्धि, बल तथा यज्ञ अर्थात् श्रेष्ठतम कर्म अपने पास सब ओर से लाते रहें।

हमें श्रेष्ठ विचार संकल्प एवं कर्म सब ओर से प्राप्त करना चाहिये तथा यह ध्यान रखना चाहिये कि देवगण हमारी रक्षा तभी करेंगे जब हम सद्विचारों को सब ओर से प्राप्त करके उनके अनुसार श्रेष्ठ कर्म करेंगे।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां-
देवानांꣳ रातिरभि नो निवर्तताम्।

देवानां सख्यमुपंसेदिमा वयं-

देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे।।

यजु. २५।१५, ऋग्. १।८९।२

(ऋजूयतां देवानाम्) सरलता एवं सत्यता से युक्त देवों की (भद्रा सुमतिः) कल्याणकारी सुमति तथा (देवानां रातिः) देवों के विभिन्न दान (नः अभि निवर्तताम्) हमारे सामने निरन्तर रहें, हमें सब ओर से निरन्तर प्राप्त हों। (वयं देवानां सख्यम् उप सेदिम) हम देवों की मित्रता प्राप्त करें, (देवाः नः आयुः जीवसे आ प्रतिरन्तु) देवगण हमें जीवित रहने के लिये दीर्घ आयु प्रदान करें।

तमीशानं जगंतस्तस्थुषस्पतिं

धियञ्जिन्वमवंसे हूमहे वयम् ।

पूषा नो यथा वेदंसामसंद् वृधे

रक्षिता पायुरदंब्धः स्वस्तये ।।

ऋग्. १।८९।५, यजुर्वेद. २५।१८

(वयम्) हम (जगतः तस्थुषः पतिम्) चराचर जगत् का पालन पोषण तथा रक्षा करने वाले, (धियं जिन्वम्) बुद्धि को पवित्र करने वाले, उसे प्रसन्न एवं तृप्त करने वाले (तम् ईशानम्) सब पर शासन करने वाले उस ईश्वर का (अवसे हूमहे) अपनी रक्षा के लिये आह्वान करते हैं, (यथा पूषा) जिससे कि सब का पोषण करने वाला परमात्मा (नः वेदसाम् वृधे) हमारे ज्ञान, धन एवं ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाला तथा (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये (अदब्धः रक्षिता पायुः असत्) हनन न करने वाला एवं अपराजित होकर हमारी रक्षा करने वाला तथा हमारा पालन करने वाला हो।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रंवाः

स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः

स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।।

ऋग्. १।८९।६, साम. उत्त. २१।९।३ क्र. सं. १८७५, यजु. २५।१९

(वृद्धश्रवाः) महान यश तथा प्रचुर अन्न एवं धन वाले (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (नः स्वस्ति) हमारे लिये कल्याणकारी हों, (स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः) सर्वज्ञ तथा सबका पालन पोषण करने वाले परमात्मा हमारा कल्याण करें, (अरिष्टनेमिः) कभी नष्ट न होने वाले दृढ़ वज्र को धारण करने वाले तथा (तार्क्ष्यः) भक्तों के प्रयोजनों को शीघ्र पूर्ण करने वाले प्रभु (नः स्वस्ति) हमारा कल्याण करें, (स्वस्ति नः बृहस्पतिः दधातु) सूर्य चन्द्र आदि महान देवों एवं महान शक्तियों के स्वामी परब्रह्म हमारे लिये सुख एवं कल्याण को धारण करें।

श्रवः श्रवणीयं यशः अर्थात् श्रवण करने योग्य यश । **वृद्धश्रवाः वृद्धं प्रभूतं श्रवः श्रवणीयं यशः अन्नं धनं कीर्ति वा यस्य सः** । महान अन्न धन तथा यश है जिनका, वह परमात्मा वृद्धश्रवाः हैं । (तार्क्ष्यः–तूर्णं अर्थं **रक्षति इति तार्क्ष्यः**, निरुक्त १०। ३। १७ हमारी प्रार्थना एवं प्रयोजन को शीघ्र पूरा करने वाले परमात्मा तार्क्ष्य हैं ।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा

भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳬसस्तनूभि-

र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ।।

ऋग्.१।८९।८, (पाठभेद), साम. उत्त. २१।९।२ क्र. सं. १८७४, यजु.२५।२१

(यजत्राः देवाः) हे यजनीय देवो! (भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम) हम अपने कानों से कल्याणकारी तथा प्रिय वचनों को सुनें, (भद्रं पश्येम अक्षभिः) हम अपनी आँखों से कल्याणकारी तथा मनोहारी दृश्यों को देखें तथा (स्थिरैः अङ्गैः) हृष्ट पुष्ट अङ्गों से युक्त (तनूभिः) शरीरों से हम (तुष्टुवांसः) परमात्मा की स्तुति करते हुये (देवहितं) देवों एवं विद्वानों के

लिये हितकारी (यदायुः) जो हमारी आयु है, (वि अशेमहि) उसे भली प्रकार प्राप्त करें अर्थात् हम अपने जीवन पर्यन्त देवों एवं विद्वानों का हित रक्षण करते रहें।

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना
भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः
स्वस्ति द्यावा पृथिवी सुचेतुना।।
ऋग्. ५।५१।११

(अश्विना) सूर्य एवं चन्द्रमा (नः स्वस्ति मिमीताम्) हमारा कल्याण करें, (भगः स्वस्ति) स्वयं ऐश्वर्यवान् तथा ऐश्वर्य प्रदान करने वाले भगवान् हमारा कल्याण करें, (देवी अदितिः) हमें समस्त साधन उपलब्ध कराने वाली तथा सुख देने वाली और स्तुति एवं प्रशंसा के योग्य पृथिवी हमारा कल्याण करे, (अनर्वणः असुरः पूषाः नः स्वस्ति दधातु) हमें प्राण एवं बल देने वाला अप्रतिम एवं अपराजित पूषा अर्थात् पोलन पोषण करने वाले भगवान् हमारा कल्याण करें, (द्यावा पृथिवी सुचेतुना) द्युलोक एवं पृथिवी ज्ञान से अर्थात् ज्ञान देकर हमारा कल्याण करें।

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै
सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये
स्वस्तये आदित्यासो भवन्तु नः।।
ऋग्. ५।५१।१२

(स्वस्तये वायुम् उप ब्रवामहै) हम अपने कल्याण के लिये वायु की स्तुति एवं प्रार्थना करें। (यः भुवनस्य पतिः) जो समस्त भुवन का स्वामी है, उस (सोमं स्वस्ति) परमात्मा की कल्याण के लिये स्तुति करें। (स्वस्तये) हम कल्याण के लिये (सर्वगणं बृहस्पतिं) समस्त प्राणि समूह के सबसे

महान् स्वामी एवं रक्षक अर्थात् परमात्मा की स्तुति करें, (आदित्यासः नः स्वस्तय भवन्तु) आदित्य हमारे लिये कल्याणकारी हों।

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः।।

ऋग्. ५।५१।१३

(विश्वे देवाः नः अद्या स्वस्तये) समस्त देव आज हमारे कल्याण के लिये हों, (वैश्वानरः वसुः अग्निः स्वस्तये) समस्त विश्व को गति देने वाला तथा समस्त प्राणियों को वसाने वाला अर्थात् उनके जीवन का आधार अग्नि हमारे कल्याण के लिये हो। (देवाः ऋभवः स्वस्तये अवन्तु) दिव्य गुणों से युक्त ऋभुगण कल्याण के लिये हमारी रक्षा करें। (रुद्रः नः स्वस्ति) दुष्टों को रुलाने वाले रुद्र हमारे लिये कल्याणकारी हों तथा (अंहसः पातु) पापों से हमारी रक्षा करें।

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि।।

ऋग्. ५।५१।१४

(मित्रावरुणा) हे मित्र एवं वरुण! (स्वस्ति) हमारा कल्याण कीजिये। (रेवति) धन एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न हे देवि! (पथ्ये स्वस्ति) जीवन मार्ग में हमारा कल्याण कीजिये, (इन्द्रः च अग्निः च स्वस्ति) इन्द्र और अग्नि हमारा कल्याण करें। (अदिते) हे अदिति! (नः स्वस्ति कृधि) हमारा कल्याण कीजिये।

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि।।

ऋग्. ५।५१।१५

हम सूर्य एवं चन्द्रमा के समान जगत् का कल्याण करने वाले मार्ग पर चलें, बार बार दान देने वालों, हिंसा न करने वालों तथा विद्वानों के साथ चलें अर्थात् उनके सम्पर्क में आयें और उनके अनुरुप आचरण करें।

ये देवानां यज्ञियां यज्ञियानां
मनोर्यजंत्रा अमृतां ऋतज्ञाः।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं
पांत स्वस्तिभिः सदां नः ।।

अथर्व. १९।११।५ (पाठभेद), ऋग्. ७।३५।१५

(ये देवानां यज्ञियानां) जो देवों, श्रेष्ठ विद्वानों तथा यज्ञ करने वालों में (यज्ञिया) पूजनीय हैं, (मनोः यजत्राः) जो मनस्वी तथा आदरणीय एवं यजनीय हैं, जो निकट समागम एवं सम्पर्क किये जाने के योग्य हैं, (अमृता) जो अमृतत्व को प्राप्त करने के योग्य हैं, जीवन मुक्त हैं, (ऋतज्ञाः) जो ऋत एवं सत्य के ज्ञाता हैं, (ते अद्य नः) वे आज (उरुगायम् रासन्ताम्) बहुतों द्वारा गाया हुआ, बहुत से विद्वानों द्वारा उपदिष्ट किया गया प्रशंसनीय ज्ञान हमें दें। (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) आप सब देव एवं श्रेष्ठ विद्वान् कल्याणकारी उपायों से सदैव हमारी रक्षा करें।

येभ्यो माता मधुंमत्पिन्वंते
पयंः पीयूषं द्यौरदिंतिरद्रिंबर्हाः।
उक्थशुंष्मान् बृषभरान्स्वप्नंसस्ताँ
आंदित्याँ अनुं मदा स्वस्तयें ।।

ऋग्. १०।६३।३

(येभ्यः) जिनके लिये (माता अदितिः) माता अदिति तथा (अद्रिबर्हाः द्यौः) मेघों से आच्छादित अन्तरिक्ष (मधुमत्) माधुर्य युक्त (पीयूषं पयः) अमृत तुल्य दुग्ध, जल तथा अन्य भोज्य पदार्थ (पिन्वते) प्रदान करता है, (तान्) ऐसे उन (उक्थ शुष्मान्) प्रशंसनीय बल वाले (बृषभरान्) सुखों की वर्षा करने वाले (सु अप्नसः) तथा उत्तम कर्म करने वाले आदित्यों की (स्वस्तये) अपने कल्याण के लिये (अनुमदा) स्तुति करते हैं, प्रार्थना करते हैं।

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा
बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो
दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये।।

ऋग्. १०।६३।४

(अनिमिषन्तः) बिना पलक झपकाये हुये अर्थात् सदैव जागरुक रहकर (नृचक्षसः) मनुष्यों के कर्मों पर दृष्टि रखने वाले तथा उन्हें सही मार्ग दिखाने वाले, (देवासः अर्हणा) पूजनीय देवों ने, विद्वानों ने भक्ति एवं उपासना द्वारा (बृहत् अमृतत्वं आनशुः) महान् अमृतत्व को, मोक्ष को प्राप्त किया है। (ज्योतिः रथाः) ज्ञान रुपी ज्योतिर्मय रथ वाले, (अहिमायाः) प्रज्ञावान्, अप्रतिहत बुद्धि वाले (अनागसः) पाप रहित (दिवः वर्ष्माणं) द्युलोक में उच्च स्थान पर अथवा भगवान् के आनन्दमय परम धाम में (वसते) स्थित देव (स्वस्तये) हमारा कल्याण करें।

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये।।

ऋग्. १०।६३।९

(भरेषु) हम जीवन के संग्रामों में (सुहवं शोभनाह्वानम्) सुगमता से बुलाये जा सकने वाले अथवा सुन्दर नाम वाले तथा सुख एवं उत्तम पदार्थों को देने वाले (अंहः मुचम्) पापों से छुड़ाने वाले (इन्द्रं हवामहे) इन्द्र का आह्वान करते हैं तथा (सुकृतं दैव्यं जनम्) श्रेष्ठ कर्म करने वाले, दिव्य शक्तियों से सम्पन्न (अग्निं मित्रं वरुणं भगं द्यावा पृथिवी मरुतः) अग्नि, मित्र, वरुण, ऐश्वर्य प्रदान करने वाले भग, द्युलोक, पृथिवी तथा मरुतों को (सातये स्वस्तये) अन्न आदि प्राप्त करने के लिये एवं अपने कल्याण के लिये (हवामहे) आदर पूर्वक बुलाते हैं।

सुत्रामा॑णं पृथि॒वीं द्याम॑ने॒हसं॑ सु॒शर्मा॑ण॒मदि॑तिं सु॒प्रणी॑तिम्।
दैवी॒ नावं॑ स्वरि॒त्रामना॑गस॒मस्र॑वन्ती॒मा रु॑हेमा स्व॒स्तये॑।।

ऋग्. १०।६३।१०

(सुत्रामाणं पृथिवीं) उत्तम प्रकार से रक्षा करने वाली, विस्तृत (अनेहसं) पाप रहित, (द्याम्) प्रकाशयुक्त (सुशर्माणं) उत्तम सुख देने वाली (अदिति) नष्ट न होने वाली (सुप्रणीतिम्) उत्तम रूप से निर्मित, (स्वरित्राम्) उत्तम चप्पुओं से युक्त (अनागसं) पाप रहित (अस्रवन्ती) न रिसने वाली, छिद्र रहित, (दैवीं नावम्) दैवी नाव पर हम अपने कल्याण के लिये (आरुहेम) आरोहण करें।

शान्तिपाठ

यन्मे॑ छि॒द्रं चक्षु॑षो॒ हृद॑यस्य॒ मन॑सो॒ वाति॑तृण्ण॒ं बृह॒स्पति॑र्मे॒ तद्द॑धातु। शं नो॑ भवतु॒ भुव॑नस्य॒ यस्पति॑: ।।

यजुर्वेद. ३६।२

(मे) मेरे (चक्षुषः) नेत्र की तथा (हृदयस्य) हृदय एवं अन्तःकरण तथा बुद्धि की (यत्) जो (छिद्रम्) न्यूनता अथवा दोष है (वा) तथा मेरे (मनसः) मन की (अतितृण्णम्) जो व्याकुलता एवं दोष है, (मे तत्) मेरे उस दोष को, न्यूनता को (बृहस्पतिः) सूर्य आदि महान देवों के स्वामी परमात्मा (दधातु) पूर्ण करें, ठीक करें। (भुवनस्य यः पतिः) समस्त संसार का जो स्वामी एवं रक्षक है (शं नः भवतु) वह परमेश्वर हमारे लिये कल्याणकारी हो।

शं नो॑ मि॒त्रः शं वरु॑ण॒: शं नो॑ भवत्वर्य॒मा ।
शं न॒ इन्द्रो॒ बृह॒स्पति॒: शं नो॒ विष्णु॑रुरुक्र॒मः ।।

अथर्व.१९।९।६, (पाठभेद) ऋग्.१।९०।९,
यजु. ३६।९

(मित्रः नः शं) सब का प्रिय मित्र, जगदीश्वर हमारे लिये कल्याणकारी हो, (शं वरुणः) सर्व साक्षी तथा सर्वश्रेष्ठ परमात्मा हमारे

लिये कल्याणकारी हो। (शं नः भवतु अर्यमा) न्यायकारी ईश्वर हमारे लिये कल्याणकारी हो। (बृहस्पतिः) वेदवाणी एवं महान ब्रह्माण्ड का रक्षक (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर (नः शम्) हमारे लिये कल्याणकारी हो (उरुक्रमः विष्णुः नः शम्) महान पराक्रम अथवा विस्तृत पद वाला सर्वव्यापक परमात्मा हमारे लिये कल्याणकारी हो।

व्याप्नोतीति विष्णुः। सर्वव्यापक होने से भगवान् का नाम विष्णु है।

शं नो वातः पवताᳪं शं नस्तपतु सूर्यः।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु ॥

यजुर्वेद. ३६।१०

(शं नः वातः पवताम्) वायु हमारे लिये सुखकारी होकर बहे, (शं नः तपतु सूर्यः) सूर्य हमारे लिये सुखकारी होकर तपे (शं नः कनिक्रदत् देवः) कड़कड़ाने वाला विद्युत् देव हमारे लिये सुखकारी हो (पर्जन्यः अभि वर्षतु) तथा मेघ हमारे ऊपर चारों ओर से सुखकारी वर्षा करें।

अहानि शं भवन्तु नः शᳪं रात्रीः प्रति धीयताम्। शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रा वरुणा रातहव्या। शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः॥

ऋग्. ७।३५।१ (पाठभेद), अथर्व. १९।१०।१ (पाठभेद), यजु. ३६।११

(अहानि शं भवन्तु नः) दिन हमारे लिये कल्याणकारी हों, (शं रात्रीः प्रतिधीयताम्) रात्रि हमारे लिये कल्याण को धारण करें, (इन्द्राग्नी नः शं भवतां अवोभिः) समस्त रक्षाओं के साथ इन्द्र एवं अग्नि हमारे लिये कल्याणकारी हों, (शं नः इन्द्रा वरुणा रातहव्या) जिन्हें हवि अर्पित की गयी है, ऐसे इन्द्र एवं वरुण हमारे लिये सुखकारी हों, (शं न इन्द्रा पूषणा वाजसातौ) इन्द्र एवं पूषा युद्ध में हमारा कल्याण करने वाले हों। (शं इन्द्रा सोमा सुविताय) इन्द्र एवं सोम हमारे कल्याण के लिये शान्ति दायक हों (शं योः) तथा रोगों का शमन करके एवं भय को दूर करके हमारे लिये

सुखकारी हों।

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु
शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु
शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ।।

अथर्व. १९।१०।८, (पाठभेद) ऋग्. ७।३५।८

(शं नः सूर्यः उरुचक्षा उदेतु) विस्तृत तेज एवं प्रकाश वाला सूर्य हमारे लिये सुखकारी होकर उदित हो, (शं नः चतस्रः प्रदिशो भवन्तु) चारों दिशायें एवं प्रदिशायें हमारे लिये सुखकारी हों। (शं नः पर्वताः ध्रुवयः भवन्तु) अचल पर्वत हमारे लिये शान्ति एवं सुख देने वाले हों, (शं नः सिन्धवः) नदियाँ एवं समुद्र हमारे लिये सुखकारी हों, (शं उ नः सन्तु आपः) तथा जल हमारे लिये शान्ति एवं सुख देने वाले हों।

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः। शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः।।

अथर्व. १९।१०।९, ऋग्. ७।३५।९

(अदितिः व्रतेभिः नः शम् भवतु) देव माता अदिति अथवा प्रकृति अपने श्रेष्ठ नियमों के साथ हमें सुख दें, (सु अर्काः मरुतः नः शं भवन्तु) उत्तम स्तुति योग्य तेजस्वी बलवान् मरुत हमारे लिये सुखकारी हों, (शं नः विष्णुः) विष्णु हमारे लिये कल्याणकारी हों (शं उ पूषा नः अस्तु) तथा पालन पोषण करने वाले पूषा देव हमें शान्ति देने वाले हों, (शं नः भवित्रं शं उ अस्तु वायुः) जल हमारे लिये शान्ति दायक हों तथा वायु हमारे लिये सुखकारी हो।

भवित्रम् उदकम् अन्तरिक्षं वा। सायण भाष्य

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शं योरभि स्त्रवन्तु नः ।।

ऋग्. १०।९।४, यजु. ३६।१२
अथर्व. १।६।१, साम. पूर्वा. १।३।१३, क्र.सं. ३३

(देवी आपः) दिव्य गुणों से युक्त जल (पीतये नः अभिष्टये) पीने के लिये तथा हमारे अभीष्ट कार्यों की सिद्धि के लिये (शं भवन्तु) सुखकारी हों, शान्तिदायक हों (शं योः अभिस्त्रवन्तु नः) तथा रोग एवं भय आदि का शमन करके हमारे ऊपर चारों ओर से सुख की वर्षा करें।

शंयोः शमनं च रोगाणाम् यावनं च भयानाम्।

निरुक्त. ४।३।२१।४८

शंयोस्। इसमें शं और योस् दो पद हैं। शम् का अर्थ है रोगों का शमन तथा योस् का अर्थ है भयों का दूरीकरण। इसलिये शंयोः का अर्थ हुआ रोग तथा भय आदि को दूर करना।

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ।।

अथर्व. १९।९।१०

(शं नः ग्रहाः चान्द्रमसाः) चन्द्रमा तथा उससे संबन्धित ग्रह हमारे लिये शान्ति दायक हों (च आदित्यः राहुणा च) तथा राहु के साथ आदित्य हमारे लिये शान्ति दायक हो। (शं नः मृत्युः धूमकेतुः) मृत्यु के समान दुःखदायी धूमकेतु अथवा केतु हमारे लिये शान्ति दायक अथवा हानि रहित हो, (शं रुद्राः तिग्मतेजसः) तीक्ष्ण तेज अथवा उग्र स्वभाव वाले रुद्रगण अथवा एकादश रुद्र हमारे लिये शान्ति दायक हों।

(शं नः मृत्युः) कभी कभी ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं कि मृत्यु भी मनुष्य के लिये सुखदायी हो जाती है। ऐसी बीमारी की स्थिति में, जो अत्यन्त कष्ट एवं दुःखदायी हो और जिसके ठीक होने की कोई आशा न हो, मृत्यु ही सुखदायी होती है, वही असहनीय कष्ट, आपत्ति अथवा

अपमान से मुक्ति दिला सकती है।

फलित ज्योतिष के अनुसार निम्नाङ्कित ग्रह मनुष्य जीवन पर विशेष प्रभाव डालते हैं, (रवि) सूर्य (सोम) चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु। दश प्राण तथा जीवात्मा, ये एकादश रुद्र मनुष्य शरीर में निवास करते हैं।

शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः।
शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः।।

अथर्व. १९।९।११

(शं रुद्राः शं वसवः) एकादश रुद्र हमारे लिये शान्दि दायक हों, अष्ट वसु हमारे लिये शान्ति दायक हों, (शम् आदित्याः शम् अग्नयः) द्वादश आदित्य हमारे लिये शान्ति दायक हों, अग्नियाँ हमारे लिये शान्ति दायक हों, (शं नः महर्षयः देवाः) मन्त्रदृष्टा महर्षि हमारे लिये शान्ति दायक हों, (शम् देवाः शं बृहस्पतिः) समस्त देव हमारे लिये शान्ति दायक हों, महती वेद वाणी के प्रणेता एवं रक्षक तथा महान् ब्रह्माण्ड के स्वामी परमपिता परमेश्वर हमें शान्ति प्रदान करें।

'ब्रह्म वै बृहस्पतिः।' (ब्रह्म ही बृहस्पति है।) ऐतरेय. ब्रा.१।४।२१

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी।
यच्छा नः शर्म सप्रथाः।।

ऋग्. १।२२।१५ (पाठभेद), यजु. ३५।२१,३६।१३

(पृथिवी) हे पृथिवी, (नः स्योना अनृक्षरा) हमारे लिये सुख देने वाली तथा निष्कंटक एवं (निवेशनी भव) निवास के लिये उत्तम स्थान देने वाली होइये (नः सप्रथाः शर्म यच्छ) तथा हमें विस्तृत सुख एवं सुखदायी निवास स्थान प्रदान कीजिये।

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु।।

अथर्व. १९।१०।२, ऋग्.७।३५।२

(शं नः भगः) ऐश्वर्य प्रदान करने वाले भगवान् हमारे लिये सुखकारी हों (उ) तथा (शं नः शंसः अस्तु) प्रशंसित देव हमें सुख एवं शान्ति प्रदान करने वाले हों, (पुरंधिः नः शं) विशाल बुद्धि हमें सुख देने वाली हो (उ) तथा (शं रायः सन्तु) विभिन्न प्रकार के धन हमें शान्ति एवं सुख देने वाले हों, (शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः) उत्तम नियम पूर्वक बोला जाने वाला प्रशंसनीय सत्य हमें सुख देने वाला हो (पुरुजातः अर्यमा नः अस्तु) तथा अत्यधिक प्रशंसित न्यायकारी भगवान् हमारे लिये कल्याणकारी हों।

स नंः पवस्व शं गवे शं जनांय शमर्वते।
शं रांजन्नोषंधीभ्यः।।

साम. उत्त. १।३, क्र.सं.६५३, ऋग्.९।११।३

(राजन्) हे प्रभो! (स नः पवस्व) वह आप हमें पवित्र कीजिये, (शं गवे शं जनाय शम् अर्वते) हमारी गौवों के लिये, हमारे पुत्र, मित्र आदि जनों के लिये तथा हमारे अश्वों के लिये शान्ति एवं सुख हो। (शं ओषधीभ्यः) हमारी ओषधियों के लिये, हमारे अन्न के लिये कल्याणकारी होइये अर्थात् अन्न की हमारी फसलें उत्तम हों तथा उनसे हमें पौष्टिक अन्न प्राप्त हो।

गेहूँ, जौ, चना, चावल आदि सभी ओषधियाँ हैं। यहाँ 'गो' का अर्थ ज्ञानेन्द्रियाँ तथा 'अर्व' का अर्थ कर्मेन्द्रियाँ भी हो सकता है।

शान्तानिं पूर्वरुपाणिं शान्तं नो अस्तु कृताकृतम्।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमंस्तु नः ।।

अथर्व. १९।९।२

(शान्तानि पूर्वरूपाणि) कार्यों तथा घटनाओं के पूर्वरूप हमारे लिये शान्तिदायक हों, (शान्तं नः अस्तु कृताकृतम्) हमारे कृत एवं अकृत अर्थात् किये हुये कर्म तथा जो कर्तव्य करने से रह गये हैं, वे सब हमारे लिये शान्ति दायक हों, (शान्तं भूतं च भव्यं च) भूत, भविष्य तथा वर्तमान हमारे लिये शान्ति दायक हों, (सर्वम् एव शम् अस्तु नः) सभी कुछ हमारे

लिये शान्ति दायक हो।

पूर्व रूपाणि का अर्थ है- (१) कार्य करने से पूर्व के विचार तथा संकल्प (२) उनकी तैयारी का प्रारम्भ अथवा स्वरुप (३) संभावित घटनाओं का पूर्वरूप अर्थात् उनके पहले का घटना क्रम (४) किसी कार्य के होने से पहले की परिस्थितियाँ। उदाहरणार्थ, न केवल पुत्र जन्म हमारे लिये शान्तिदायक हो बल्कि उसके होने से पहले की परिस्थितियाँ तथा घटनायें भी हमारे लिये शान्तिदायक हों। सायणाचार्य ने इसका अर्थ पूर्व जन्म के पाप कर्म किया है, जो उचित प्रतीत नहीं होता।

इयं या पंरमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मंसंशिता।
ययैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिंरस्तु नः ।।

अथर्व. १९।९।३

(परमेष्ठिनी) परम अर्थात् सर्वोत्कृष्ट स्थान में अथवा जीवात्मा के आश्रय में स्थित रहने वाली, (ब्रह्म संशिता) वेद द्वारा प्रशंसित तथा वेद मन्त्रों एवं ज्ञान से सशक्त एवं ओजस्वी बनने वाली (इयं या वाक् देवी) दिव्य गुणों से युक्त यह जो वाणी है, (यया एव ससृजे घोरं) जिसके अमर्यादित एवं असंयमित हो जाने से घोर अर्थात् भयंकर एवं निकृष्ट कार्यों का जन्म होता है, (तया एव नः शान्तिः अस्तु) उससे ही हमें शान्ति प्राप्त हो।

हम ऐसी संयमित एवं मर्यादित वाणी बोलें जिससे हम सभी को शान्ति एवं सुख प्राप्त हो तथा किसी को कोई दुःख न हो और किसी घोर कार्य करने के लिये न तो प्रोत्साहन प्राप्त हो और न बाध्य होना पड़े। जिस वाणी से दुःखदायक शाप दिया जा सकता है, उसी से मङ्गलकारी आशीर्वाद दिया जाय, मधुर वचन बोला जाय।

इदं यत्पंरमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मंसंशितम्।
येनैव संसृजे घोरं तेनैव शान्तिंरस्तु नः ।।

अथर्व. १९।९।४

(परमेष्ठिनं) उत्कृष्ट स्थान में स्थित अथवा आत्मा के श्रेष्ठ आश्रय

में स्थित रहने वाला तथा (ब्रह्म संशितम्) वेद द्वारा प्रशंसित अथवा ज्ञान एवं वेद मन्त्रों द्वारा सशक्त, ओजस्वी एवं तीक्ष्ण किया जाने वाला (वाम् इदं यत् मनः) आप दोनों (स्त्री तथा पुरुष) का यह जो मन है, (येन एव) जिसके विकृत हो जाने पर (ससृजे घोरं) घोर अर्थात् भयंकर एवं निन्दनीय कर्मों का जन्म होता है (तेन एव) उस मन से ही (नः शान्तिः अस्तु) हम सबको शान्ति एवं सुख प्राप्त हो।

जब हमारा मन शिव संकल्प वाला होगा, तब हमसे कोई निकृष्ट कार्य नहीं होगा क्योंकि मन से ही समस्त कार्य किये जाते हैं और इसी से मनुष्य को सुख दुःख तथा मोक्ष अथवा बन्धन प्राप्त होता है।

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि। यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः।।

अथर्व. १९।९।५

(मे हृदि) मेरे हृदय में स्थित तथा (ब्रह्मणा संशितानि) ज्ञान द्वारा सशक्त एवं तीक्ष्ण बनायी जाने वाली अथवा आत्मा द्वारा अपने अपने कार्यों में प्रवृत्त की जाने वाली (इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि) चक्षु, श्रोत्र, नासिका, जिह्वा तथा त्वचा, ये जो पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा छठा मन है, (यैः एव) असंयमित तथा विकृत हो जाने पर जिनके द्वारा ही (ससृजे घोरं) समस्त भयंकर एवं निकृष्ट कार्यों का जन्म होता है, (तैः एव) उनसे ही, उन्हें संयमित, सुसंकृत एवं श्रेष्ठ बनाकर (नः शान्तिः अस्तु) हमें शान्ति प्राप्त हो।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।।

यजु.३६।१७

(द्यौः शान्तिः) द्युलोक हमें शान्ति प्रदान करे, अन्तरिक्ष हमें शान्ति

प्रदान करे, (पृथिवी शान्तिः) पृथिवी हमें शान्ति प्रदान करे, (आप: शान्तिः) जल हमें शान्ति प्रदान करें, (ओषधय: शान्तिः) ओषधियाँ हमें शान्ति प्रदान करें, (वनस्पतय: शान्तिः) वनस्पतियाँ हमें शान्ति प्रदान करें, (विश्वे देवा: शान्तिः) समस्त देव एवं विद्वान् हमें शान्ति प्रदान करें, (ब्रह्म शान्तिः) ब्रह्म हमें शान्ति प्रदान करें, (सर्वं शान्तिः) समस्त जगत् हमें शान्ति प्रदान करे, (शान्तिः एव शान्तिः) चारों ओर शान्ति ही शान्ति हो (सा शान्ति: मा एधि) तथा वह परम शान्ति मुझे प्राप्त हो ।

सविता

सविता पश्चातांत्सविता पुरस्तांत्सवितोत्तरात्तांत् सविताधरात्तांत्। सविता नं: सुवतु सर्वतांतिं सविता नो रासतां दीर्घमायुं: ।।

ऋग्वेद १०। ३६ । १४

(सविता पश्चातात्) सविता अर्थात् समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले परमात्मा पीछे से, (सविता पुरस्तात्) सविता देव आगे से, (सविता उत्तरात्तात्) सविता ऊपर से, (सविता अधरात्तात्) सविता नीचे से, (सविता न: सर्वतातिं सुवतु) सविता देव हमें सब ओर से धन, ऐश्वर्य एवं अभिलषित सुख प्रदान करें तथा (सविता न: दीर्घम् आयु: रासताम्) सर्व प्रेरक एवं सर्व रक्षक प्रभु हमें दीर्घ आयु प्रदान करें ।

विश्वांनि देव सवितर्दुरितानि परां सुव ।
यद्भद्रं तन्न आ सुंव ।।

ऋग्. ५।८२।५,   यजुर्वेद. ३०।३

(सवित: देव) समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले तथा उसका पालन पोषण करने वाले, उसे चेतना एवं प्रेरणा देने वाले सविता देव, हे परब्रह्म ! (विश्वानि दुरितानि परा सुव) समस्त दुःखों तथा हमारे समस्त अवगुणों को हमसे दूर कर दीजिये (यद् भद्रं तत् न: आसुव) और जो हमारे लिये कल्याणकारी हो, उसे हमारे पास लाइये, हमें प्राप्त कराइये।

हमारा कल्याण किसमें है, यह भगवान् ही जानता है । इससे सुन्दर और कोई प्रार्थना क्या हो सकती है । यह समर्पण तथा भक्ति की चरम सीमाहै।

विभक्तारं छ्हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः।
सवितारं नृचक्षसम्।।

ऋग्. १।२२।७, यजु. ३०।४

(वसोः) समस्त संसार जिनसे बसता है और जो समस्त संसार में अन्तर्यामी रूप से बसते हैं, व्याप्त रहते हैं, ऐसे जगन्निवास, जगदीश्वर (चित्रस्य राधसः विभक्तारम्) भिन्न भिन्न प्रकार के विचित्र धनों एवं अन्य समस्त पदार्थों का यथोचित विभाजन करने वाले तथा समस्त जीवों को उनके कर्मों का यथायोग्य फल देने वाले (सवितारं) समस्त प्राणियों को उत्पन्न करने वाले तथा उनका पालन पोषण करने वाले सविता देव का, (नृचक्षसम्) सर्वदृष्टा प्रभु का हम (हवामहे) आह्वान करते हैं, उनकी स्तुति करते हैं, प्रार्थना एवं उपासना करते हैं।

हिरंण्यपाणिमूतये सवितारमुपं ह्वये।
स चेत्तां देवतां पदम्।।

ऋग्. १।२२।५, यजु. २२।१०

(हिरण्यपाणिं सवितारं ऊतये उपह्वये) स्वर्णिम हाथों वाले, समस्त जगत् के उत्पादक तथा पालनकर्ता सविता देव का, जगदीश्वर का मैं अपनी रक्षा के लिये आह्वान करता हूँ। (स चेत्ता देवता) सब को प्रेरणा देने वाले वह सविता देव ज्योतिर्मय एवं ज्ञान स्वरूप हैं, सब को प्रकाश एवं ज्ञान देने वाले हैं तथा (पदम्) प्राप्त किये जाने योग्य हैं।

देवस्य चेतंतो महीं प्र संवितुर्हवामहे।
सुमतिछ सत्यरांधसम्।।

यजु. २२।११

(सवितः चेततः देवस्य) समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले ज्ञान

स्वरूप सविता देव की, परब्रह्म की, (सत्यराधसम् महीं सुमतिं प्र हवामहे) सत्य की साधयित्री अथवा सत्य पथ पर चलाने वाली महती सुमति के लिये हम प्रार्थना करते हैं, उसका आवाहन करते हैं। सत्य की साधना सुमति के बिना नहीं हो सकती।

तत्स॑वि॒तुर्वृ॑णीमहे व॒यं दे॒वस्य॒ भोज॑नम्।
श्रेष्ठं॑ सर्व॒धात॑म॒ं तु॒रं भग॑स्य धीमहि॥

ऋग्वेद, ५।८२।१

(तत् देवस्य सवितुः) समस्त ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने वाले, उसका पालन पोषण करने वाले तथा उसको प्रेरणा देने वाले उस सविता देव के, (भोजनम्) हमारे द्वारा भोग किये जाने योग्य धन तथा ऐश्वर्य का (वयं वृणीमहे) हम वरण करते हैं तथा उस (भगस्य) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर के (श्रेष्ठं सर्वधातमम्) सर्वश्रेष्ठ एवं सबको धारण करने वाले (तुरम्) समस्त शत्रुओं, दुःखों, कष्टों तथा पापों का शीघ्र नाश करने वाले सामर्थ्य का हम (धीमहि) ध्यान करते हैं, उसे अपने अन्दर धारण करते हैं।

सामान्य जीवन में हम इच्छा करते हैं कि किसी उच्च पद पर आसीन होकर हम शासन के अधिकारों तथा उससे प्राप्त होने वाले ऐश्वर्य को अपने अन्दर धारण करें, किन्तु यहाँ प्रार्थना की गयी है कि हम न केवल किसी राजा अथवा शासन के अधिकारों को अपने अन्दर धारण करें बल्कि समस्त जगत् पर शासन करने वाले ईश्वर के सामर्थ्य के, उसके ऐश्वर्य के कुछ अंश को अपने अन्दर धारण करें। इससे बढ़कर और क्या हो सकता है, कैसी सुन्दर प्रार्थना है यह!

अ॒भि त्यं दे॒वꣳ स॑वि॒तार॑मो॒ण्योः᳖ क॒विक्र॑तु॒मर्चा॑मि स॒त्यस॑वꣳ रत्न॒धाम॒भि प्रि॒यं म॒तिं क॒विम्। ऊ॒र्ध्वा यस्या॒मति॒र्भा अदि॑द्युत॒त्सवी॑मनि॒ हिर॑ण्यपाणिरमिमीत सु॒क्रतुः᳖ कृ॒पा स्वः᳖। प्र॒जाभ्य॒स्त्वा-

प्रजास्त्वां ऽनुप्राणंन्तु प्रजास्त्वमंनुप्राणिंहि।।

सामवेद, पूर्वार्चिक, ४।८।८, क्रम सं. ४६४

अथर्ववेद, ७।१४।१,२ (पाठभेद) यजुर्वेद,४।२५

(ओण्यो:) द्युलोक तथा पृथ्वीलोक अर्थात् समस्त ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने वाले तथा सबको प्रेरणा देने वाले, (कविक्रतुम्) क्रान्तदर्शी, ज्ञानी तथा ज्ञानपूर्वक श्रेष्ठ कर्म करने वाले (सत्यसवं रत्नधां अभि प्रियम् मतिम्) सत्य ऐश्वर्य से युक्त तथा सत्य के प्रेरक एवं प्रवर्तक, रत्नों तथा रमणीय श्रेष्ठ पदार्थों एवं प्रकाशमान लोकों को धारण करने वाले अत्यन्त प्रिय एवं मननीय (यस्य अमति: भा:) जिसका अपरिमिति तेज, जिसकी अलौकिक कान्ति (सवीमनि ऊर्ध्वा अदिद्युतत्) समस्त उत्पन्न सृष्टि में सर्वोपरि प्रकाशित होती है, शोभायमान होती है, (हिरण्यपाणिं सुक्रतु:) जो स्वर्णिम हाथों वाला तथा समस्त कार्यों को उत्तमता से, सुचारु रूप से करने वाला है और जो (कृपा स्व: अमिमीत) अपनी असीम अनुकम्पा से समस्त प्राणियों के लिये सुख का निर्माण करता है, उनके लिये सुखद परिस्थितियों को उत्पन्न करता है, (त्यं सवितारं) उस सविता देव की, उस परब्रह्म की (अभि अर्चामि) मैं भली प्रकार पुन: पुन: अर्चना एवं उपासना करता हूँ।

(प्रजाभ्यः त्वा) प्रजा के कल्याण के लिये आपसे प्रार्थना करता हूँ, (प्रजाः त्वा अनुप्राणन्तु) संसार के समस्त प्राणी आपके अनुकूल होकर चलें, आपकी आज्ञानुसार चलें (त्वं प्रजाः अनुप्राणिहि) तथा आप प्रजा के अनुकूल रहें, उस पर कृपा करें।

इस मन्त्र में प्रयोग किये गये विशेषण अत्यन्त सुन्दर एवं मननीय हैं। उदाहरणार्थ (हिरण्यपाणि: सुक्रतु:) भगवान् के कार्य अत्यन्त श्रेष्ठ हैं तथा परम दक्षता एवं उत्तमता से किये जाते हैं। वह समस्त प्राणियों को सुख, सम्पत्ति तथा सहस्रों अन्य प्रकार के दान सदैव देता रहता है, किसी से कुछ लेता नहीं है, इसीलिये उसे स्वर्णिम हाथों वाला कहा गया है। भगवान् से अधिक श्रेष्ठ एवं कान्तियुक्त हाथ भला किसके हो सकते हैं। हमें भी श्रेष्ठ कर्म करके अपनें हाथों को स्वर्णिम बनाना चाहिये।

देवं सवितः प्र सुंव यज्ञं प्र सुंव यज्ञपतिं भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु।।

यजु. ९।१,(पाठभेद), यजु.११।७,३०।१

(सवितः देव) समस्त ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने वाले हे परब्रह्म! (भगाय) हमें ऐश्वर्य के लिये (यज्ञं प्रसुव) यज्ञ की, श्रेष्ठ कर्म की प्रेरणा कीजिये तथा (यज्ञपतिं प्रसुव) यज्ञ का, श्रेष्ठ कर्म का संरक्षण करने वाले को प्रेरणा दीजिये, (दिव्यः) दिव्य गुणों एवं शक्तियों से युक्त (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने वाला (केतपूः) तथा ज्ञान से सब को पवित्र करने वाला परमात्मा (नः केतं) हमारे ज्ञान एवं शरीर को (पुनातु) पवित्र करे (वाचस्पतिः) तथा वाणी का स्वामी एवं रक्षक (नः वाचं) हम सबकी वाणी को (स्वदतु स्वादयतु) स्वादयुक्त अर्थात् मधुर बनाये।

मानव जीवन की उन्नति के लिये ये सद्गुण आवश्यक हैं।

देवस्यं वयं संवितुः सवींमनि श्रेष्ठें स्याम वसुंनश्च दावनें।
यो विश्वंस्य द्विपदो यश्चतुंष्पदो निवेशंने प्रसवे चासि भूमनः।।

ऋग्. ६।७१।२

(वयं सवितुः देवस्य वसुनः च दावने) हम समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाले तथा सब प्रकार के धनों के दाता सविता देव, (यः विश्वस्य द्विपदः चतुष्पदः) जो सब मनुष्यों तथा पशुओं आदि के (निवेशने प्रसवे च) वसाने में, जीवित रखने में तथा उत्पन्न करने में (भूमनः असि) महान कारण हैं। (श्रेष्ठे सवीमनि स्याम) की श्रेष्ठ प्रेरणा तथा आज्ञा में वर्तमान रहें, उसका पालन करें।

(सविता वै देवानां प्रसविता- शतपत. ब्रा.१।१।२।१७) सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु आदि समस्त देवताओं को उत्पन्न करने वाला तथा प्रेरणा देने वाला परमात्मा सविता है। अतः यहाँ सविता का अर्थ सूर्य नहीं है।

इन्द्र

उत त्वाबंधिरं वयं श्रुत्कंर्ण सन्तंमूतयें।
दूरादिह हंवामहे।।

ऋग्. ८।४५।१७

हे प्रभो ! (अबधिरं उत श्रुत्कर्ण सन्तं) अबधिर अर्थात् कानों से अच्छी तरह सुनने वाले आपको (वयं ऊतये) हम अपनी रक्षा के लिये (दूराद् इह हवामहे) दूर से यहाँ बुलाते हैं।

इन्द्रांय सामं गायत विप्रांय बृहते बृहत्।
ब्रह्मकृतें विपश्चितें पनस्यवें।।

साम.पूर्वा. क्र.सं. ३८८, साम. उत्त. ६।७२।११ क्र.सं. १०२५
ऋग्. ८।९८।१ (पाठभेद), अथर्व. २०।६२।५ (पाठभेद)

हे उद्गाताओ! (विप्राय) विविध कामनाओं को पूर्ण करने वाले, मेधावी (ब्रह्म कृते) वेद को उत्पन्न करने वाले, (विपश्चिते) सर्वदृष्टा, ज्ञानी तथा ज्ञान देने वाले (पनस्यवे) प्रशंसा एवं स्तुति के योग्य (बृहते इन्द्राय) महान इन्द्र के लिये, परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के लिये (बृहत् साम गायत) बृहत्साम का गान करो।

ऋग्वेद में 'ब्रह्मकृते' के स्थान पर 'धर्मकृते' अर्थात् धर्म को उत्पन्न करने वाले, शब्द आया है। इससे स्पष्ट है कि जो वेद में निर्देश दिया गया है, वही धर्म है।

नाऽहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदयेऽपि वा ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ।।

आदि पुराण

हे नारद ! न तो मैं वैकुण्ठ में निवास करता हूँ और न ही योगियों के हृदय में। मेरे भक्त जहाँ मेरा गान करते हैं मैं वहीं निवास करता हूँ।

पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर।।

साम उत्त. १६।१(३)।२ क्र.सं. १५८०, ऋग्. ८।६१।६,
अथर्व. २०।११८।२

(देव) हे देव! हे प्रभो! (त्वम् अश्वस्य पौरः) आप अश्वों की पूर्ति करने वाले, (पुरुकृत गवां असि) गौओं को पुष्ट करने वाले एवं उनकी संख्या में वृद्धि करने वाले (हिरण्ययः उत्सः असि) तथा समस्त धनों के स्वर्णिम स्रोत हो। (त्व दानं न किः हि परिमर्धिषत्) आपके दान को कोई भी नष्ट नहीं कर सकता। (यत् यत् यामि तत् आभर) हे प्रभु! मैं आपसे जो जो याचना करता हूँ, उसे पूर्ण कीजिये।

अद्याद्या श्वः श्व इन्द्र त्रास्व परे च नः।
विश्वा च नो जरितॄन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः।।

साम. उत्त. १३।३।१, क्र.सं. १४५८, ऋग्.८।६१।१७

(इन्द्र) हे इन्द्र! (अद्य अद्य) आज आज (श्वः श्वः) कल कल तथा (परे च) कल के बाद के दिनों में भी (नः त्रास्व) हमारी रक्षा कीजिये। (सत्पते) हे सज्जनों के पालक! (विश्वा अहा) समस्त दिनों में अर्थात् सदैव (दिवा नक्तं च) दिन तथा रात्रि में (नः जरितॄन्) स्तुति करने वाले हम लोगों का (रक्षिषः) संरक्षण कीजिये।

यद्द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी।।

साम. पूर्वा. ३।९।६, क्र.सं. २७८, ऋग्. ८।७०।५

(इन्द्र) हे इन्द्र! हे परम ऐश्वर्यवान् प्रभो! (यत् ते) यदि तुम्हारी बराबरी करने के लिये (द्यावः शतं स्युः) द्युलोक सैकड़ों भी हों (उत भूमी शतं स्युः) और चाहे पृथिवी लोक सैकड़ों हों फिर भी (त्वा न अनु अष्ट) वह आपकी बराबरी नहीं कर सकते। (वज्रिन्) हे वज्रधारी! (सहस्रं सूर्या) हज़ारों सूर्य भी आपके प्रकाश की बराबरी नहीं कर सकते एवं (रोदसी

जातम्) यह द्यावा पृथिवी तथा समस्त उत्पन्न जगत् (त्वा न अष्ट) आपको व्याप्त नहीं सकते, आपकी बराबरी नहीं कर सकते।

रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपं ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश।।

ऋग्. ६।४७।१८

(रूपं रूपं प्रतिरूपः बभूव) प्रत्येक रूप में उसी प्रभु का रूप है, यह निराकार परब्रह्म समस्त प्राणियों में अन्तर्यामी रूप से स्थित होकर उन्हीं के रूप वाला हो रहा है, (तदस्य रूपं) उसका बाह्य रूप (प्रति चक्षणाय) केवल देखने के लिये होता, वह तो निराकार है अर्थात् प्राणी का उसका रूप केवल बाहर से देखने के लिये है। (इन्द्रः मायाभिः पुरुरूपः ईयते) प्रभु अपनी अनन्त शक्तियों से अनेक रूप धारण करता है (ये समस्त प्राणी उसी के रूप हैं) (युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश) उसके रथ में हज़ारों घोड़े जुते हैं, उसकी अनन्त शक्तियाँ हैं, वह सहस्रों किरणों से प्रकाशित हो रहा है।

इन्द्र अपनी माया से पुरुरूप हो जाता है। एक सौ दश घोड़े के समान इन्द्रियाँ इसमें जुती हुयी हैं। यही इन्द्रियाँ हैं, यह दस इन्द्रियाँ हैं। यही हज़ारों इन्द्रियाँ हैं। यही अनन्त इन्द्रियों का रूप हैं। यह ऐसा ब्रह्म है जिसका न पर है, न अपर। जिसका न बाहर है न भीतर। यह आत्मा ब्रह्म है। यह सबको देखता है। यही अनुशासन है अर्थात् यही शास्त्र का मर्म है।

शतपथ. १४।५।५।१९

इसीलिये परमात्मा को विश्वरूप कहते हैं।

माया प्रज्ञानाम। (निघण्टु. ३।९)

अथवा,

यह जीवात्मा जिस शरीर में प्रवेश करता है, उसी का रूप धारण कर लेता है, निराकार जीवात्मा का बाहर से उसी प्राणी का रूप दिखायी देता है। इस जीवात्मा के साथ शरीर में सहस्रों नाड़ियाँ जुड़ी रहती हैं, जिसकी सहायता से यह अपना कर्म करता है।

इसी के आधार पर कठोपनिषद् में कहा गया है-

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।।

कठोपनिषद्. २।२।९

जिस प्रकार संसार में प्रविष्ट एक ही अग्नि नाना रूपों वाली वस्तुओं में प्रवेश करके उन्हीं के समान रूप वाला हो जाता है, उसी प्रकार सब प्राणियों का अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुये भी समस्त प्राणियों में उन्हीं के समान रूपवाला होकर उनके अन्दर तथा बाहर स्थित रहता है।

यत्तें दिक्षु प्रराध्यं मनो अस्तिं श्रुतं बृहत्।
तेनं दृढा चिंदद्रिव आ वाजं दर्षि सातयें।।

ऋग्. ५।३९।३ (पाठभेद), साम.उत्त. ।६ (३)।३, क्र.सं.११७४

(अद्रिवः) हे वज्रधारी इन्द्र! (यत् ते दिक्षु) विभिन्न दिशाओं में आपका जो (प्रराध्यम्) अत्यन्त प्रशंसनीय एवं स्तुत्य, (श्रुतं बृहत् मनः अस्ति) प्रसिद्ध एवं उदार मन है, (तेन) उससे (दृढा चित् वाजं) दृढ़ अर्थात् अत्यन्त पुष्टिकारक अन्न तथा धन (सातये आदर्षि) हमें उपभोग एवं दान करने के लिये दीजिये।

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।
अपघ्नन्तो अरांव्णः।।

ऋग्. ९।६३।५

(इन्द्रं वर्धन्तः) इन्द्र का सम्मान, उनका महत्व बढ़ाते हुये, (अराव्णः अपघ्नन्ता) दान न देने वाले, सब कुछ अपने लिये अनावश्यक रूप से इकट्ठा करके रखने वाले समाज विरोधी तत्वों का नाश करते हुये (विश्वं) सबको (अप्तुरः) गतिशील तथा प्रगति करने वाला (कृण्वन्तः आर्यम्) आर्य बनायें।

हमारे जीवन का उद्देश्य ही (कृण्वन्तो विश्वमार्यम्) सबको आर्य बनाना होना चाहिये।

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्। संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतꣳ सेना अजयत् साकमिन्द्रः।।

सा. क्र.सं. १८४९, ऋग्. १०।१०३।१, यजु. १७।३३

(आशुः शिशानो) शीघ्रता से शत्रु पर आक्रमण करने वाला, (वृषभो न भीमः) वृषभ (सांड़) के समान भयंकर (घना घनः) शत्रु का नाश करने वाला, (चर्षणीनां क्षोभणः) द्वेष करने वाले दुष्टों में क्षोभ तथा भय उत्पन्न करने वाला, (संक्रन्दनः) शत्रुओं को रुलाने वाला, (अनिमिषः) सदा सावधान रहने वाला, आलस्य से रहित, (एकवीरः) एक अद्वितीय पराक्रमी वीर इन्द्र (शतं सेनाः साकं अजयत्) शत्रुओं की सैकड़ों सेनाओं पर एक साथ विजय प्राप्त करता है।

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे।।

साम. क्र.सं. तथा १३४४, ऋग्. १।१०।१

(शतक्रतो) सैकड़ों यज्ञ तथा श्रेष्ठ कर्म करने वाले हे इन्द्र (गायत्रिणः त्वा गायन्ति) गायक लोग आपके गुणों का गान करते हैं, (अर्किणः) वेदपाठी, पूजा करने वाले विद्वान् (अर्कं अर्चन्ति) पूजनीय आपका पूजन करते हैं तथा (ब्राह्मणः) ज्ञानी ब्राह्मण (वंशं इव) बाँस में लगे हुये झंडे के समान (त्वा उत येमिरे) आपकी कीर्ति को ऊँचा उठाते हैं, आपका यशोगान करके आपकी महानता का प्रचार करते हैं।

हमें सदैव अपने देवताओं का यशोगान करना चाहिये, उनकी श्रेष्ठता का वर्णन करना चाहिये किन्तु दुर्भाग्य से आजकल हम लोगों में बहुत से मूर्ख अपने देवताओं का अपमान करके दूसरे धर्म के देवताओं का, यहाँ तक कि दूसरे धर्मों के पुरुषों तथा महिलाओं को श्रेष्ठ बताकर उनका गुणगान करते हैं, उनके मन्दिर बनवाते हैं, उन्हें ब्रह्म के समान सच्चिदानन्द कहते हैं तथा उनका पूजन करते हैं।

मा प्र गांम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनंः।
मान्तः स्थुंर्नो अरांतयः।।

अथर्व. १३।१।५९, ऋग्. १०।५७।१

(इन्द्र) हे इन्द्र! हे परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर! (वयं पथः मा प्रगाम) हम श्रेष्ठ जीवन पथ से कभी न हटें, सन्मार्ग से विचलित न हों, (मा सोमिनः यज्ञात्) और न सोम सम्पन्न यज्ञ से दूर हों, (नः अन्तः अरातयः मा स्थुः) हमारे बीच में, हमारे समाज में हमारे शत्रु तथा दान विरोधी लालची दुष्ट लोग न रहें तथा हमारे अन्तःकरण में दान विरोधी और लोभ लालच आदि की निकृष्ट भावनायें उत्पन्न न हों।

प्रेता जयंता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा वंः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासंथ।।

ऋग्. १०।१०३।१३, यजु. १७।४६

(नरः) हे वीर योद्धाओ! (प्र इत) आगे बढ़ो, (जयत) विजय प्राप्त करो, इन्द्र तुम्हें सुख प्रदान करें, (उग्रा वः सन्तु बाहवः) तुम्हारी भुजायें बलशाली हों, (यथा अनाधृष्याः असथ) जिससे तुम कभी पराजित होने वाले न हो।

देवस्यं त्वा सवितुः प्रंसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्तांभ्याम्। आदंदेऽध्वरकृतं देवेभ्य इन्द्रंस्य बाहुरंसि दक्षिंणः सहस्रंभृष्टिः शततेंजा वायुरंसि तिग्मतेंजा द्विषतो वधः।।

यजु. १।२४

सविता देव की इस सृष्टि में अश्वनि देवों की बाहुओं अर्थात् दूसरों की सहायता करने वाली, उन्हें निरोग तथा दुःखों से मुक्त करने वाली भुजाओं और पूषा के हाथों अर्थात् दूसरों का पालन पोषण करने वाले, परोपकार करने वाले हाथों वाले तुम्हें देवों के लिये, विद्वानों के

लिये (अध्वर कृतं) हिंसा रहित कर्मों के लिये तथा कुटिलता रहित श्रेष्ठ कर्मों के लिये अर्थात् उनकी सब प्रकार से भलायी के लिये, उनके परोपकार के लिये (आददे) तुम्हें धारण करता हूँ, नियुक्त करता हूँ।

(इन्द्रस्य दक्षिणः बाहुः असि) तुम इन्द्र की दाहिनी भुजा हो, (सहस्र भृष्टिः) हज़ारों शत्रुओं का नाश करने वाले, (शततेजा) सैकड़ों प्रकार के तेजों से युक्त, (वायुरसि) वायु के समान तीव्र गति एवं बल से युक्त, (तिग्मतेजा) अत्यन्त तीक्ष्ण तेज, जिसके सामने शत्रु टिक न सके, से परिपूर्ण हो।

हमें देवों, विद्वानों तथा श्रेष्ठ जनों की सब प्रकार से सहायता करने वाले एवं सहस्रों शत्रुओं का नाश करने वाले बनना चाहिये। कर्म करते समय हमें यह विश्वास रखना चाहिये कि हम इन्द्र की दाहिनी भुजा हैं और तदनुसार श्रेष्ठता तथा वीरतापूर्ण कर्म के लिये ही परमात्मा ने हमें जन्म दिया है।

हमें कभी अपने को निर्बल तथा असहाय समझकर उद्देश्य एवं लक्ष्य विहीन जीवन व्यतीत नहीं करना चाहिये प्रत्युत सज्जनों की रक्षा तथा दुष्टों का नाश करने के लिये सतत् संघर्ष करना चाहिये।

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित्।।

अथर्व. ७।५०।८

(कृतं मे दक्षिणे हस्ते) मेरे दाहिने हाथ में कर्म हो, प्रयास हो, पुरुषार्थ हो (जयः मे सव्य आहितः) तथा मेरे बायें हाथ में जय हो, विजय हो। (गोजित् अश्वजित् हिरण्यजित् धनंजयः भूयासम्) मैं गौवों, अश्वों, सुवर्ण एवं विविध प्रकार के धनों का विजेता बनूँ।

मनुष्य को सदा श्रेष्ठ कर्म करके विजयश्री, लक्ष्मी एवं ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहिये।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे ।।

साम. उत्त. ८।६ (२) । २ क्र. सं.११७०
ऋग्.८।९८।११ (पाठभेद), अथर्व. २०।१०८।२,

(शतक्रतो) सैकड़ों पराक्रम तथा यज्ञ करने वाले हे इन्द्र! (वसो) हे जगन्निवास! (त्वं हि नः पिता) निश्चय ही आप हमारे पिता तथा (त्वं माता बभूविथ) आप ही हमारी माता हो, (अधा ते सुम्नम् ईमहे) अतः हम आप से सुख की प्रार्थना करते हैं ।

त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।
आ वीरं पृतनाषहम् ।।

अथर्व. २०।१०८।१, ऋग्. ८।९८।१०
साम. उत्त. ८।६(२)।१, क्र.सं. ११६९,४०५ (पाठभेद)

(शतक्रतो) हे सैकड़ों कार्य करने वाले (विचर्षणे इन्द्र) सर्वदृष्टा ज्ञानी इन्द्र! (त्वम् नः ओजः नृम्णं) आप हमें ओज, बल एवं धन (पृतनाषहं वीरं आ भर) तथा शत्रुओं की सेनाओं को परास्त करने वाले वीर पुत्र अथवा वीर पुरुष दीजिये।

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ।।

साम. ४।७।१० क्रम. सं. ४५६ (पाठभेद) यजु. ३६।८

परमात्मा का तेज ही समस्त जगत् को प्रकाशित करता है, जगत् में उसी का प्रकाश शोभायमान हो रहा है, वही इस विश्व पर शासन करता है । हमारे पुरुषों, पक्षियों तथा पशुओं आदि का कल्याण हो ।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं,
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं,
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।

मुण्डकोपनिषद् २।२।१०, श्वेताश्वतर उपनिषद्, ६।१४, कठोपनिषद् २।२।१५

वहाँ न सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्रमा, न तारागण, ये बिजलियाँ भी वहाँ प्रकाशित नहीं होतीं, फिर यह अग्नि वहाँ कैसे प्रकाशित हो सकता है ? उस परब्रह्म के प्रकाशित होने से ही यह सूर्यादि उसके प्रकाश से प्रकाशित होते हैं । उसी के प्रकाश से यह समस्त जगत् प्रकाशित होता है, आलोकित एवं सुशोभित होता है ।

त्वयेदिन्द्र युजा वयं प्रतिं ब्रुवीमहि स्पृधः।
त्वमस्माकं तवं स्मसि ।।

ऋग्. ८।९२।३२

(इन्द्र) हे इन्द्र! (त्वया युजा इत्) आप से संयुक्त होकर, आपकी सहायता प्राप्त करके ही हम (स्पृधः) स्पर्धा तथा शत्रुता करने वालों को (प्रति ब्रुवीमहि) करारा उत्तर दे सकते हैं तथा शत्रुओं का नाश कर सकते हैं (त्वम् अस्माकम्) आप हमारे हैं और (तव स्मसि) हम आपके हैं।

भद्रंभंद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो। यदिंन्द्र मृडयांसि नः।।

साम. पूर्वा. २।८।९, क्र.सं. १७३, ऋग्. ८।९३।२८

(शतक्रतो इन्द्र) सैकड़ों श्रेष्ठ कार्य, सैकड़ों यज्ञ करने वाले हे इन्द्र! (नः भद्रं भद्रं इषं ऊर्जे) हमें कल्याणकारी तथा सुखदायक अन्न एवं रस तथा धन एवं बल (आभर) भरपूर दीजिये, (यत् मृडयासि नः) क्योंकि आप हमें सुख देने वाले हैं।

महानाम्नी ऋचायें

ताण्ड्य महाब्राह्मण के त्रयोदश अध्याय के चतुर्थ खण्ड में यह आख्यायिका है- (इन्द्रः प्रजापतिमुपधावद् वृत्रं हनानीति) इन्द्र प्रजापति के पास गया कि 'ऐसा करो कि वृत्र को मार सकूँ'। **'तस्मा एतच्छन्दोभ्यः इन्द्रियं वीर्यं निर्माय प्रायच्छद् एतेन शक्नुहीति'** प्रजापति ने उस इन्द्र के लिये छन्दों को दिया कि इससे तू वृत्र को मारने में समर्थ हो। (तच्छक्वरीणां शक्वरीत्वम्) यही शक्वरियों का शक्वरीत्व है। (सीमानमभिनत् तत् सिमा) इनसे इन्द्र ने वृत्र की शक्ति को नष्ट कर दिया इसलिये ये सिमा कहलाये। (महन्यमकरोत् तन्महन्या) बहुत महान् कार्य

हो गया, ऐसा कहने के कारण इनका नाम 'मह्न्या' पड़ा। (महान् घोष आसीत् तन्महानाम्न्यः) चारों ओर महान् घोष हुआ, प्रभु को स्मरण किया गया, इसलिये इनका नाम 'महानाम्न्यः' पड़ा।

इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम्।
स नः स्वर्षदति द्विषः स नः स्वर्षदति द्विषः।।

सामं. क्र.सं.६४७, महानाम्न्यार्चिक्. ७

धन की प्राप्ति के लिये हम सदा विजय प्राप्त करने वाले अपराजित इन्द्र का (हवामहे) आह्वान करते हैं। (स नः द्विषः अति अर्षत्) वह हमारे शत्रुओं को दूर करे।

ईशे हि शक्रस्तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम्।
स नः स्वर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत्।।

साम. क्र.सं.६४६, महानाम्न्यार्चिक्. ७

(शुक्रं ईशेहि) जो शक्तिशाली होने के कारण सब का स्वामी है, उस विजय प्राप्त करने वाले, कभी पराजित न होने वाले इन्द्र का हम अपनी रक्षा के लिये आह्वान करते हैं। (स नः) वह हमारे शत्रुओं को दूर करता है, वह (क्रतुः) सत्कर्मों का कर्ता, (छन्दः) रक्षक तथा सत्य नियमों का महान प्रवर्तक है।

विदा मघवन् विदा गातुमनुशंसिषो दिशः।
शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरूवसो।।

साम. क्र.सं.६४१, महानाम्न्यार्चिक्. ७

हे धनवान् इन्द्र! (विदाः) आप सर्वज्ञ हैं, (गातुं विदाः) आप योग्य मार्ग जानते हैं, (दिशः) हम किस दिशा में जायें, उसका हमें उपदेश दीजिये, (पूर्वीणां शचीनां पते) हे आदि शक्ति के स्वामी! (पुरुवसो) अनन्त धन सम्पन्न प्रभो! (शिक्षा) हमें शिक्षा तथा शक्ति दीजिये।

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशंस्तयः।
नास्यं क्षीयन्त ऊतयंः।।

ऋग्. ६।४५।३

(अस्य) इस इन्द्र की (प्रणीतयः) प्रकृष्ट नीतियाँ, नियम एवं शक्तियाँ, (महीः) महान् हैं (उत प्रशस्तयः पूर्वीः) तथा वैदिक स्तोत्रों से की जाने वाली इसकी स्तुतियाँ सनातन हैं। (अस्य ऊतयः न क्षीयन्ते) इसकी रक्षायें कभी क्षीण नहीं होती।

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्।
जेता शत्रून्विचर्षणिः।।

अथर्व. २०।५७।१०, ऋग्. २।४१।१२

(शत्रून् जेता विचर्षणिः इन्द्रः) शत्रुओं को जीतने वाला, सर्वदृष्टा, बुद्धिमान् इन्द्र (सर्वाभ्यः आशाभ्यः) समस्त दिशाओं से हमें (अभयं करत्) अभय करे।

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्र॑ᳬ हवे हवे सुहव॑ᳬ शूरमिन्द्रम्। ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्र॑ᳬ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः।।

साम. पूर्वा. ३।५।२, क्र.सं. ३३३, यजु. २०।५०
ऋग्. ६।४७।११, अथर्व. ७।९०।१(पाठभेद)

मैं (त्रातरम् इन्द्रं) सब प्रकार से रक्षा करने वाले, पालन करने वाले इन्द्र का तथा (अवितारं इन्द्रं) सब प्रकार से संरक्षण करने वाले इन्द्र का, (हवे हवे सुहवम्) जीवन के प्रत्येक संघर्ष में तथा प्रत्येक अवसर पर सुख से पुकारने योग्य (शूरं इन्द्रं) परम वीर इन्द्र का (शक्रं पुरुहूतं इन्द्रं) बहुत पुकारे गये अर्थात् सभी लोगों द्वारा सदैव पुकारे गये सर्वशक्तिमान् इन्द्र का आह्वान करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि (मघवा इन्द्रः) वह परम ऐश्वर्यवान् एवं धनवान इन्द्र (नः स्वस्ति धातु) हमारे कल्याण को धारण करे, हमारा कल्याण करे।

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः ।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ।।

साम. क्र.सं. १०२६, अथर्व.२०।६२।६, ऋग्वेद, ८।९८।२

हे इन्द्र! हे ऐश्वर्यवान् परमात्मा! (त्वं अभिभूः असि) तुम सबका पराभव करने वाले, सब पर शासन करने वाले हो । (त्वं सूर्य अरोचयः) तुम्हीं ने सूर्य को प्रकाशित किया है। (विश्वकर्मा विश्वदेवः महान् असि)तुम विश्वकर्मा, विश्वदेव तथा महान् हो अर्थात् समस्त जगत् के रचयिता हो, सबके इष्टदेव हो तथा सबसे महान् हो ।

सूर्य में जो प्रकाश, तेज तथा शक्तियाँ हैं, वह उतनी ही हैं जितनी भगवान् द्वारा उसमें निहित की गयी हैं । वह तेज एवं शक्तियों का कोई स्वतन्त्र स्रोत नहीं है और उसे भी भगवान् के सत्य एवं अपरिवर्तनीय नियमों का सर्वदा पालन करना होता है।

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे।
सखाय इन्द्रमूतये।।

यजु. ११।१४, ऋग्. १।३०।७, अथर्व. २०।२६।१
साम. पूर्वा. २।७।९, क्र.सं. १६३ तथा ७४३

(सखायः) परस्पर मित्र के समान व्यवहार करने वाले हम लोग (योगे योगे) प्रत्येक अवसर पर, प्रत्येक कर्म में (वाजे वाजे) तथा जीवन के प्रत्येक संग्राम में (तवस्तरं) अत्यन्त बलशाली (इन्द्रम् ऊतये) इन्द्र का अपनी रक्षा के लिये (हवामहे) आवाहन करते हैं।

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ२ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ।।

ऋग्. ६।४७।१२,१०।१३१।६, अथर्व. २०।१२५।६ (पाठभेद), यजु. २०।५१

(सुत्रामां) उत्तम रूप से रक्षा करने वाला (स्ववान् इन्द्रः) परम शक्तिशाली इन्द्र (अवोभिः सुमृडीकः भवतु) अपनी रक्षाओं से हमें सुख देने वाला हो। (विश्ववेदाः द्वेषः बाधतां) सर्वज्ञ प्रभु हमसे द्वेष करने वाले

शत्रुओं का नाश करके (अभयं कृणोतु) हमें अभय करे (सुवीर्यस्य पतयः स्याम) तथा हम उत्तम बल एवं पराक्रम के स्वामी बनें।

भूरिं त इन्द्र वीर्यं१ तवं स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन्काममा पृंण।
अनुं ते द्यौर्बृहती वीर्यं ममं इयं चं ते पृथिवी नेमं ओजंसे।।

ऋग्. १।५७।५

(इन्द्र) हे इन्द्र! (ते वीर्यं भूरि) आपका बल एवं सामर्थ्य महान है। (तव स्मसि) हे प्रभो! हम आपके हैं, (मघवन्) हे धनवान इन्द्र! (अस्य स्तोतुः कामं आ पृण) इस स्तोता की कामना को पूर्ण कीजिये। (बृहती द्यौः) महान् द्युलोक (ते वीर्यं अनुममे) आपके पराक्रम की प्रशंसा करता है अथवा आपके बल के अधीन रहता है (च इयं पृथिवी) तथा यह पृथिवी (ते ओजसे) आपके बल के समक्ष (नेमे) झुकती है, आपको प्रणाम करती है।

तस्यं वयꣳ सुंमतौ यज्ञियस्यापिं भद्रे सौमनसे स्याम।
स सुत्रामा स्ववाँ२ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु।।

ऋग्. १०।१३१।७, ६।४७।१३, यजु. २०।५२

(वयं तस्य यज्ञियस्य सुमतौ स्याम) हम उस पूजनीय इन्द्र की सुमति में रहें, (भद्रे सौमनसे अपि) हमारा मन अच्छी कल्याणकारी सुन्दर भावनाओं वाला हो, (सुत्रामा स्ववान्) उत्तम प्रकार से रक्षा करने वाला (सः इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् इन्द्र (अस्मे आरात् चित् द्वेषः) हमसे दूर अथवा निकट स्थित सभी प्रकार के शत्रुओं को (सनुतः) सदा हमसे (युयोतु) पृथक् रखे।

शास इत्था महाँ अंस्यमित्रखादो अद्भुतः।
न यस्यं हन्यते सखा न जीयंते कदां चन।।

अथर्व. १।२०।४, ऋग्. १०।१५२।१

हे प्रभो! (शास) आप शासन करने वाले हैं तथा (इत्था) ऐसे (महान्) महान् (अमित्र खादः अद्भुतः) शत्रुनाशक एवं अद्भुत हैं (यस्य सखा न हन्यते) कि आपका मित्र न तो मारा जाता है और (न जीयते

कदाचन) न कभी पराजित अथवा कष्ट भोगने वाला होता है।

भगवान् अपने भक्तों के शत्रुओं को स्वयं ही नष्ट कर देता है और स्वयं ही उनके योग तथा क्षेम को वहन करता है।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।

गीता, ९।२२

अनन्य भाव से चिन्तन करते हुये जो मेरी उपासना करते हैं, उन भक्तिभाव से मुझ में नित्य अभियुक्त होने वाले, भली प्रकार जुड़ जाने वाले भक्तों के योग तथा क्षेम को मैं स्वयं वहन करता हूँ।

एन्द्रं सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम्।
वर्षिष्ठमूतये भर।।

ऋग्. १।८।१

(एन्द्र) हे इन्द्र! (सानसिं) सेवनीय, (सजित्वान्) विजय दिलाने वाले, (सदासहं) शत्रु को पराजित करने में सहायता करने वाले, (वर्षिष्ठं रयिं) श्रेष्ठ धन को (ऊतये आभर) हमारी रक्षा के लिये हमे भरपूर दीजिये।

पवित्र धन से ही जीवन में सुख समृद्धि प्राप्त की जा सकती है, भ्रष्टाचार तथा अन्याय से प्राप्त धन से नहीं।

मृगो न भीमः कुंचरो गिंरिष्ठाः,
पंरावत आ जंगन्था परंस्याः।
सृकं संशायं पविमिंन्द्र तिग्मं,
वि शत्रूंन् ताढ्ढि वि मृधो नुदस्व।।

साम. उत्त. ९।३।१, क्रं.सं. १८७३, ऋग्१०।१८०।२

कठिनता से जाने योग्य स्थानों में विचरण करने वाले तथा पर्वत की कन्दराओं में रहने वाले सिंह के समान भयंकर (इन्द्र) हे इन्द्र! (परस्याः परावतः आ जगन्थ) अत्यन्त दूर प्रदेश से भी आइये तथा (सृकं तिग्मं पवि संशाय) अत्यन्त वेगवान् और तीक्ष्ण वज्र को और अधिक

तीक्ष्ण करके (शत्रून् वि ताढ्हि मृधः नुदस्व) शत्रुओं का नाश कीजिये तथा युद्ध करने की इच्छा वाले शत्रुओं को परास्त कीजिये, दूर कीजिये।

तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन्तथा कृणु ।
यथा त उश्मसीष्टये ॥ ऋग्वेद. १।३०।१२

(सोमपाः सखे वज्रिन्) हे सोम पान करने वाले वज्रधारी मित्र! (तथा तदस्तु) वैसा ही हो, वही हो (तथा कृणु) तथा आप वैसा ही करें, (यथा त) जैसा हम आपसे (इष्टये उश्मसि) अपने इष्ट की, अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिये इच्छा करें, प्रार्थना करें ।

महे चन त्वामद्रिवः परा शुल्काय देयाम् ।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥

साम. पूर्वा. ३।५।९,क्रं.सं. २९१, ऋग्. ८।१।५

(अद्रिवः) हे वज्रधारी इन्द्र! मैं (त्वाम् महे शुल्काय च) आपको बहुत बड़े मूल्य के लिये भी (न परा देयाम्) दूसरे को न दूँ, (वज्रिवः शतामघ) हे अनन्त ऐश्वर्य सम्पन्न वज्रधारी! मैं आपको (न सहस्राय) न हज़ार, (न आयुताय) न दश हज़ार और (न शताय) न अपरिमित मूल्य के लिये दूँ।

वास्तव में भक्त के लिये प्रभु अनमोल निधि हैं, वह उन्हें कैसे छोड़ सकता है।

इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमा अनूषत ।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥

साम. उत्त. ९।९।६, क्र.सं. १२५२, (पाठभेद) ऋग्. १।११।८

(यस्य सहस्रं उत वः भूयसीः रातयः) हमारे लिये जिसके हज़ारों अथवा उससे भी अधिक दान हैं, उस (ओजसा ईशानम् इन्द्रम्) अपने अनन्त बल एवं पराक्रम से, अपने सामर्थ्य से सब पर शासन करने वाले प्रभु की हम (स्तोमाः) पवित्र वैदिक स्तोत्रों से (अभि अनूषत) भली प्रकार श्रद्धा पूर्वक स्तुति करते हैं।

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः।।

ऋग्. २।१२।१३

(हे जनासः) हे मनुष्यो! द्युलोक और पृथिवी जिसके सामने (नमेते) झुकते हैं, (पर्वताः शुष्मात् चित् भयन्ते) पर्वत जिसके बल से भयभीत होते हैं, (यः सोमपा) जो सोमपान करने वाला (निचितः) बलवान् तथा (वज्रबाहुः) वज्र के समान भुजाओं वाला है, (यो वज्रहस्तः) जो हाथों में वज्र धारण करने वाला है, (स इन्द्रः) वह इन्द्र है।

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक्।।

अथर्व. १९।५।१

(इन्द्रः राजा जगतः चर्षणीनाम्) इन्द्र इस समस्त जगत् का, मनुष्यों तथा पशु पक्षी आदि का (अधि क्षमि विषुरूपं यद् अस्ति) एवं पृथिवी पर जो भी अनेक रंग रूप वाले प्राणी तथा पदार्थ हैं, उन सब का राजा है। (ततः दाशुषे वसूनि ददाति) वह दान देने वालों को अनेक प्रकार के धन देता है, (उपस्तुतः चित्) स्तुति किये जाने पर वह (अर्वाक् राधः चोदत्) वह हम दान दाताओं की ओर धन को प्रेरित करता है, भेजता है।

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतं।
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत।।

साम. ४।१०।२, क्र.सं. ३८२, ऋग्. ८।१५।१

(पुरुहूतम्) बहुतों द्वारा पुकारे हुये तथा (पुरुष्टुतम्) बहुतों द्वारा स्तुत किये हुये, (तम् उ तविषम् इन्द्रं) उस महान इन्द्र की ओर (अभि प्रगायत) अभिमुख होकर उसकी स्तुति का भली प्रकार गायन करो तथा (गीर्भिः आ विवासत) वेद मन्त्रों से उसकी आराधना करो।

अधा हीन्द्र गिर्वण उपं त्वा कामं ईमहे ससृग्महे।
उदेव ग्मन्तं उदभिंः।।

ऋग्. ८।९८।७ (पाठभेद), साम. पूर्वा. ४।२।८, क्र.सं. ४०६

(गिर्वण) वाणी से, वेद मन्त्रों से सेवनीय, स्तुत्य (इन्द्र) हे इन्द्र! (अधाहि) इस समय (त्वा काम ईमहे) आपसे हम अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिये याचना करते हैं तथा आपको (उप ससृग्महे) स्तुतियों से इस प्रकार संपृक्त करते हैं (उदा ग्मन्तः इव) जैसे जल के अन्दर प्रवेश करते हुये अथवा जल ले जाते हुये मित्र को (उदभिः) जल उछाल उछाल कर जल से संपृक्त करते हैं, भिगो देते हैं।

त्वां हि सत्यमंद्रिवो विद्म दातारंमिषाम्।
विद्म दातारं रयीणाम्।।

ऋग्. ८।४६।२

(अद्रिवः) हे वज्रधारी इन्द्र! (त्वां हि सत्यं दातारं इषाम् विद्म) आपको ही हम अन्नों का सच्चा दाता मानते हैं (विद्म दातारं रयीणाम्) तथा आपको ही धनों एवं ऐश्वर्यों का सच्चा दाता मानते हैं।

रायस्कांमो वज्रंहस्तं सुदक्षिंणं पुत्रो न पितरं हुवे।।

ऋग्. ७।३२।३

(रायः कामः) धन की कामना करने वाला मैं (वज्रहस्तं) वज्रधारी (सुदक्षिणं) तथा उत्तम दाता इन्द्र से उसी प्रकार प्रार्थना करता हूँ (पुत्रः न पितरं) जिस प्रकार पुत्र अपने पिता से प्रार्थना करता है।

त्वं नं इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शंतक्रतो। त्वं हिंरण्ययुर्वसो।।

साम. उत्त. २।१।२ (३),क्र.सं. ७१८, ऋग्. ७।३१।३

(शतक्रतो इन्द्र) सैकड़ों पराक्रम तथा यज्ञ करने वाले हे इन्द्र! (त्वं नः वाजयुः) आप हमारे लिये अन्न तथा धन की इच्छा करने वाले होइये, (त्वं गव्युः) आप हमारे लिये पृथिवी, गौ तथा उत्तम वाणी की कामना करने वाले होइये। (त्वं हिरण्ययुः वसो) हे जगन्निवास! आप हमारे लिये

सुवर्ण की कामना करने वाले होइये।

यह स्पष्ट है कि भगवान् की इच्छा से ही हमें अन्न, धन, गौ, पृथिवी तथा सुवर्ण आदि प्राप्त हो सकते हैं।

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम्।।

ऋग्. १।११।१

साम. पूर्वा. ४।१।२, क्र.सं. ३४३, साम. उत्त. क्र.सं. २।२।१८२७

(समुद्र व्यचसं) आकाश के समान व्यापक, (रथीनां रथीतमं) रथियों में सर्वश्रेष्ठ, (वाजानां पतिः) अन्नों के स्वामी, (सत्पतिं) सज्जनों की रक्षा करने वाले, (इन्द्रं) इन्द्र की (विश्वा गिरः) समस्त स्तुतियाँ उसका (अवीवृधन्) संवर्धन करती हैं, उसके यश में वृद्धि करती हैं।

आ त्वा रम्भं न जिव्रयो ररम्भा शवसस्पते।
उश्मसि त्वा सधस्थ आ।।

ऋग्. ८।४५।२०

(शवसस्पते) हे बल के स्वामी इन्द्र! (जिव्रयः रम्भं न) जिस प्रकार वृद्धजन चलने के लिये डंडे का सहारा लेते हैं, उसी प्रकार (त्वा आ ररम्भ) हम आपका सहारा लेते हैं तथा (सधस्थ) यज्ञ में (त्वा उश्मसि) आपकी कामना करते हैं।

विष्णु

तद्विष्णोः परमं पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्।।

अथर्व. ७।२७।७, ऋग्. १।२२।२०, साम. ८।२।४, क्र.सं. १६७२, यजु. ६।५

(विष्णोः तत् परमं पदम्) विष्णु के उस परम पद को (सूरयः) ज्ञानी जन (दिवि आततम्) द्युलोक में स्थित (चक्षुः इव) सूर्य अथवा चारों ओर फैले हुये सूर्य के प्रकाश के समान स्पष्ट रूप से देखते हैं।

पदम्- पद्यते गम्यते प्राप्यते इति पदम्।

इ॒दं विष्णु॒र्वि च॑क्रमे त्रे॒धा नि द॑धे प॒दम्।
समू॑ढ्हमस्य पां सु॒रे।।

ऋग्. १।२२।१७,साम. ८।२।१, क्र.सं. १६६९,
यजु. ५।१६ (पाठभेद), अथर्व. ७।२७।४

(विष्णुः इदं विचक्रमे) विष्णु ने यह विशेष पराक्रम किया है, यह समस्त विश्व उसी का पराक्रम है। (त्रेधा नि दधे पदम्) उसने द्युलोक, अन्तरिक्ष तथा पृथिवी इन तीनों लोकों में अपने पद रखे हैं, अपने पराक्रम किये हैं किन्तु अन्तरिक्ष में विष्णु के जो श्रेष्ठ कर्म जैसे विद्युत और वायु आदि हैं, वह दिखायी नहीं देते, वह गुप्त रहते हैं।

अथवा,

जैसे (पांसुरे) धूलि भरे स्थान में पदचिन्ह (समूढम्) स्पष्ट नहीं दिखायी देते, उसी प्रकार सामान्य व्यक्ति को उसकी सत्ता का भान नहीं होता, यहाँ तक कि मूर्ख लोग कहते हैं कि संसार के समस्त कार्य अपने आप होते हैं, भगवान् तो हैं ही नहीं, यह तो केवल मनुष्यों की कल्पना है।

अथवा,

मध्याह्न कालीन सूर्य को विष्णु कहते हैं।

विष्णु रूपी सूर्य ने पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक, इन तीनों लोकों में विशेष पराक्रम किया है। पृथिवी पर यह अग्नि रूप में, अन्तरिक्ष में विद्युत रूप में तथा द्युलोक में सूर्य के रूप में स्थित होकर अपने पराक्रम से तीनो लोकों को धारण करता है, प्रकाशित करता है, उन्हें जीवनी शक्ति प्रदान करता है। अन्तरिक्ष में इसका विद्युत रूप दिखायी नहीं देता। इसी प्रकार इसकी Ultra violet तथा Infra red किरणें सामान्य रूप से दिखायी नहीं देती।

इदं विष्णुः विचक्रमे-

विष्णु पृथिवी पर अग्नि के रूप में, अन्तरिक्ष में विद्युत के रूप में और द्युलोक में सूर्य के रूप में स्थित हैं। अन्तरिक्ष में विद्युत दिखायी नहीं देती।

वाल्मीकि रामायण में भी इस तथ्य का उल्लेख किया गया है-

एकेन हि पदा कृत्स्नां पृथिवीं सोऽध्यतिष्ठत।
द्वितीयेनाव्ययं व्योम द्यां तृतीयेन राघव।।

वा. रामायण. १।३१।१९

त्रीणिं पदा वि चंक्रमे विष्णुंर्गोपा अदांभ्यः।
अतो धर्मांणि धारयंन्।।

अथर्व. ७।२७।५ (पाठभेद), ऋग्. १।२२।१८
साम. १८।२।२, क्र.सं. १६७०, यजु. ३४।४३

(विष्णुः गोपाः अदाभ्यः) सर्वव्यापक, सर्व रक्षक एवं सर्वजयी, जो किसी के द्वारा दबाया अथवा पराभूत नहीं किया जा सकता, ऐसे परमात्मा ने (त्रीणि पदा विचक्रमे) अपने पराक्रम से पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक इन तीनों लोकों तथा भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीन कालों का निर्माण किया है (अतः धर्माणि धारयन्) तथा इस संसार चक्र को चलाने के लिये समस्त शाश्वत सनातन एवं सत्य नियमों को धारण किया है।

अथर्ववेद में 'अतः' के स्थान पर 'इंतो' शब्द आया है।

विष्णोः कर्मांणि पश्यत यतों व्रतानिं पस्पशे।
इन्द्रंस्य युज्यः सखां।।

अथर्व. ७।२७।६, (पाठभेद) ऋग्. १।२२।१९
साम. १८।२।३, क्र.सं. १६७१, यजु. ६।४

(विष्णोः कर्माणि पश्यत) विष्णु के, भगवान् के कार्यों को देखो, (यतः व्रतानि पस्पशे) जिनसे सृष्टि के समस्त व्यापार, समस्त कार्य तथा समस्त शाश्वत नियम चलते हैं। (इन्द्रस्य युज्यः सखा) वह परमात्मा आत्मा का योग्य एवं परम मित्र है।

आत्मा में परमात्मा का मित्र बनने की समस्त योग्यतायें हैं, आवश्यकता है प्रयास, ज्ञान, कर्म, भक्ति एवं उपासना की।

दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या

महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात् ।

हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैरा-,

प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात् ।।

यजुर्वेद (पाठभेद) ५।१९, अथर्ववेद. ७।२६।८

(विष्ण) हे विष्णु ! (दिव: उत पृथिव्या:) द्युलोक तथा पृथिवी से और (मह: उरो: अन्तरिक्षात्) महान विस्तृत अन्तरिक्ष से (बहुभि: वसव्यै: हस्तौ प्रणस्व) बहुत से अर्थात् अनेक प्रकार के तथा बहुत बड़ी मात्रा में धनों को अपने दोनों हाथों में भर लीजिये (दक्षिणात् उत सव्यात्) और अपने दायें तथा बायें, दोनों हाथों से (आप्रयच्छ) हमें प्रदान कीजिये।

कैसी श्रेष्ठ प्रार्थना है यह !

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा।
उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि।
घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर ।।

यजु. ५।३८,४१ (पाठभेद), अथर्व. ७।२६।३

जिसके तीन विस्तृत विक्रमों में समस्त भुवन स्थित रहते हैं, वह आप हे विष्णु! विशेष विक्रम कीजिये, हमारे ऊपर विशेष कृपा कीजिये तथा हमारे निवास के लिये विस्तृत स्थान तथा धन आदि दीजिये। घृत आदि समस्त रसों को उत्पन्न करने वाले हे प्रभो! इस यज्ञ में दी जाने वाली घृत की आहुति को स्वीकार कीजिये तथा यजमान को समस्त दुःखों आदि से पार करके उसकी समृद्धि कीजिये।

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांꣳसः समिन्धते।
विष्णोर्यत्परमं पदम्।।

ऋग्. १।२२।२१, साम. १८।२।५, क्र.सं. १६७३, यजु. ३४।४४

(विष्णोः यत् परमं पदम्) विष्णु का जो सर्वोत्कृष्ट पद है, स्वरूप है

(तत्) उसे (जागृवाँसः) प्रमाद रहित होकर तथा जागरुक रहकर निरन्तर प्रयास करने वाले और (विपन्यवः) भक्ति पूर्वक भगवान् की प्रशंसा, स्तुति एवं उपासना करने वाले (विप्रासः) मेधावी विद्वान् ही (समिन्धते) अपने हृदय में श्रद्धा, सत्य एवं ज्ञान से भली प्रकार प्रकाशित करते हैं।

प्र तद्विष्णुं स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुंचरो गिंरिष्ठाः।
यस्योरुषुं त्रिषु विक्रमंणेष्वधिक्षियन्ति भुवंनानि विश्वा॥

अथर्व. ७।२६।२ (पाठभेद), ऋग्. १।१५४।२, यजु. ५।२०

नाना प्रकार के (कुचरः) ऊँचे नीचे कठिनता से चलने योग्य स्थानों में विचरण करने वाले और (गिरिष्ठाः) पर्वत कन्दराओं में रहने वाले (भीमः मृगः न) भयानक सिंह के समान, (तत् विष्णुः) वह विष्णु, व्यापक प्रभु, (यस्य उरुषु त्रिषु) जिसके तीन विस्तृत विक्रमों में, तीन पदों में समस्त भुवन, समस्त प्राणी एवं पदार्थ स्थित रहते हैं, (विक्रमणेषु) अपने पराक्रमों के कारण सर्वत्र समस्त मनुष्यों द्वारा स्तुत किया जाता है, प्रशंसित होता है।

जब 'कुचरः' तथा 'गिरिष्ठाः' ये दोनों पद विष्णु भगवान् के विशेषण होंगे, तब 'कुचरः' का अर्थ होगा- 'सर्वत्र विचरण करने वाले,' सर्वगतः तथा 'गिरिष्ठाः' का अर्थ होगा 'मेघों में विद्यमान' सर्व व्यापक।

यस्य त्री पूर्णा मधुंना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदंन्ति।
य उं त्रिधातुं पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवंनानि विश्वा॥

ऋग्. १।१५४।४

(यस्य त्री पूर्णा मधुना पदानि) जिसके मधुरता से परिपूर्ण तीन पद (अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति) अपनी धारणा शक्ति से कभी नष्ट न होते हुये समस्त प्राणियों को सदा आनन्द देते हैं, जो (य उ त्रिधातु) अर्थात् सत्व, रजस् और तमस् तथा (पृथिवी उत द्यां) पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक और (विश्वा भुवनानि एकः दाधार) समस्त भुवनों को एक अकेला ही धारण करता है।

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः।।

ऋग्. १।१५४।५

(देवयवः नरः यत्र मदन्ति) विष्णु के उपासक अर्थात् उनको प्राप्त करने की इच्छा से यज्ञ, दान, तप आदि करने वाले श्रेष्ठ मनुष्य जहाँ परम आनन्द का अनुभव करते हैं, (अस्य) उस महान् विष्णु के (तत् प्रियं पाथः अभि अश्यां) प्रिय स्थान अथवा परम प्रिय धाम अर्थात् ब्रह्मलोक को हम भली प्रकार से प्राप्त करें। (उरुक्रमस्य विष्णोः परमे पदे मध्वः उत्सः) उस अनन्त पराक्रम युक्त व्यापक परमात्मा के परम पद में, सर्वोत्कृष्ट स्थान अर्थात् ब्रह्मलोक में सुख का, दिव्य मधुरता का अनन्त स्रोत है। (इत्था स हि बन्धुः) ऐसा वह विष्णु निश्चय ही सब का बन्धु है।

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन। आस्य जानन्तो नाम चिद् विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे।।

ऋग्. १।१५६।३

(स्तोतारः) हे स्तुति करने वालो! (ऋतस्य गर्भं) सत्य, यज्ञ एवं जल के उत्पन्न करने वाले (तम् उ पूर्व्यं) उस प्राचीन अर्थात् अनादि सनातन परमात्मा को (यथा विद जनुषा) जैसा तुम जानते हो अर्थात् अपने जीवन एवं ज्ञान के अनुसार (पिपर्तन) स्तुतियों से तृप्त करो, प्रसन्न करो। (अस्य नाम आ जानन्तः चित्) उसके महान् यशस्वी नाम को, उसके माहात्म्य को जानते हुये (आ विवक्तन) उसका भली प्रकार वर्णन करो, उसका यशोगान करो, नाम संकीर्तन करो। (विष्णो) हे विष्णु! (ते महः) आपकी महान (सुमतिं भजामहे) सुमति को हम भजते हैं, उसे प्राप्त करने के लिये प्रार्थना करते हैं।

भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुति-,
विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः।
अधा ते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः,
स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता।।

ऋग्. १।१५६।१

(विष्णो) हे विष्णु! (घृतासुतिः) जल तथा घृत उत्पन्न करने वाले एवं घृताहुतियों से पूजित होने वाले अथवा जल, अन्न एवं तेज देने वाले, (विभूतद्युम्नः) परम तेजस्वी तथा प्रभूत अन्न एवं यश धारण करने वाले, (एवयाः) रक्षा करने के लिये सर्वत्र गति करने वाले अर्थात् रक्षा के लिये सब को सर्वत्र प्राप्त होने वाले (सप्रथाः सर्वतः पृथुः) सर्वत्र विस्तृत, सबसे महान् एवं सर्वव्यापक आप (मित्रः मितेर्दुखात् त्राता सखा) दुःख से रक्षा करने वाले मित्र के (न) समान (शेव्यः भव) हमें सुख देने वाले होइये। (अध विदुषा ते स्तोमः अर्ध्यः) हे विष्णु! आप विद्वान् मनुष्य द्वारा वेदमन्त्रों से पुनः पुनः स्तुति किये जाने योग्य हैं तथा (हविष्मता यज्ञश्च राध्यः) हवि से सम्पन्न यज्ञ द्वारा आराध्य हैं।

इससे स्पष्ट है कि वेदमन्त्रों से विष्णु की स्तुति की जानी चाहिये तथा हवि युक्त यज्ञ द्वारा उनका पुनः पुनः पूजन अर्चन किया जाना चाहिये।

सरस्वती

शिवा नः शंतमा भव सुमृडीका सरस्वति ।
मा ते युयोम संदृशः ।।

अथर्व.७।७१।१

(सरस्वति) हे सरस्वति ! (नः शिवा शंतमा सुमृडीका भव) हमारे लिये मंगलकारी, अत्यन्त कल्याणकारी तथा उत्तम सुख देने वाली होइये। (ते संदृशः मा युयोम) आपकी कृपा दृष्टि एवं सम्यक् दर्शन से हम कभी वञ्चित न हों ।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धिया वसुः ।।

साम. पूर्वा. २।१०।५ क्र. सं. १८९, यजु. २०।८४, ऋग्. १।३।१०

(पावका नः सरस्वती) सरस्वती हमें पवित्र करने वाली तथा (वाजेभिः अन्नैः) अन्न आदि पदार्थों से युक्त होने के कारण (वाजिनीवती अन्नवती) अन्नपूर्णा हैं। (धियावसुः कर्मवसुः) बुद्धि तथा ज्ञान पूर्वक किये गये श्रेष्ठ कर्मों से धन देने वाली सरस्वती अथवा, (धियावसुः) बुद्धि ही जिनका धन है, ऐसी सरस्वती (यज्ञं वष्टु यज्ञं वहतु) हमारे यज्ञ, हमारे श्रेष्ठ एवं शुभ कर्मों का वहन करें, उसे सुशोभित करें, सफल करें।

वश कान्तौ

वाग्वै धियावसुः। ऐतरेय. आर. १।१।४

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि।।

ऋग्. २।४१।१६

(नदीतमे) ज्ञान की श्रेष्ठतम सरिता स्वरुप अथवा श्रेष्ठतम सरिता के समान पवित्र एवं सुखी करने वाली, (अम्बितमे) हे श्रेष्ठ माँ तथा (देवितमे) हे सर्वश्रेष्ठ देवि सरस्वति ! (अप्रशस्ता इव स्मसि) हम अप्रशस्त अर्थात् अयोग्य अथवा अप्रशंसनीय के समान हैं, (अम्ब) हे माँ ! (नः प्रशस्तिम् कृधि) हमें ज्ञान एवं समृद्धि देकर प्रशंसनीय बनाइये।

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्।
यज्ञं दधे सरस्वती।।

यजु. २०।८५, ऋग्. १।३।११

(सूनृतानां चोदयित्री) मधुरता पूर्ण सत्यवाणी एवं सत्य कर्मों की प्रेरणा देने वाली (सुमतीनाम् चेतन्ती) तथा उत्तम बुद्धियों को जाग्रत करने वाली, बढ़ाने वाली सरस्वती (यज्ञं दधे) यज्ञ अर्थात् समस्त श्रेष्ठ कर्मों को धारण करती है।

महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना।
धियो विश्वा वि राजति।।

यजु. २०।८६, ऋग्. १।३।१२

(सरस्वती केतुना) सरस्वती उत्तम ज्ञान तथा कर्म के साथ (महः अर्णः) महान् शब्द सागर का (प्रचेतयति) ज्ञान कराती है तथा (विश्वाः धियः विराजति) समस्त बुद्धियों को ज्ञान से प्रकाशित करती है।

सूर्य

विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे। वि नाकमख्यत् सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति।।

ऋग्वेद, ५।८१।२ यजुर्वेद, १२।३

(कविः) मेधा शक्ति को बढ़ाने वाला सविता अर्थात् सूर्य (विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते) समस्त पदार्थों के वास्तविक स्वरूपों तथा संसार की वास्तविक स्थितियों को प्रकट करता है, दिखाता है (द्विपदे चतुष्पदे भद्रं प्रासावीत्) तथा मनुष्यों, पशुओं एवं अन्य सभी प्राणियों के लिये कल्याण को उत्पन्न करता है, उनके लिये मङ्गलकारी एवं सुखद वातावरण तथा परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है। (वरेण्यः सविता नाकं व्यख्यत्) वरण करने योग्य, श्रेष्ठ सूर्य स्वर्ग अथवा द्युलोक को प्रकाशित करता है (उषसः प्रयाणम् अनु विराजति) तथा उषा के प्रयाण के पश्चात् सुशोभित होता है।

निरुक्त के भाष्यकार श्री चन्द्रमणि विद्यालंकार ने इसका अर्थ लिखा है कि उषा के प्रारम्भ के साथ प्रकाशित होता है अर्थात् जैसे ही उषा का प्रादुर्भाव होता है, वैसे ही सविता उदित होता है और फिर धीरे धीरे जैसे जैसे उषा विदा होती जाती है, वैसे ही सविता का प्रकाश बढ़ता जाता है और फिर उषा के प्रयाण के पश्चात् पूर्ण रूप से प्रकाशित हो जाता है। उस पूर्ण रूप से उदय हुये आदित्य को सूर्य कहा जाता है।

निरुक्त १२।१२।७ में 'रूपाणि' का अर्थ 'प्रज्ञानानि' किया गया है।

(निरुक्त १। १४) के अनुसार 'नाक' शब्द का अर्थ है ऐसा लोक जहाँ दुःख न हो। क=सुख, अक=असुख अर्थात् दुःख (न+अक)=नाक। अतः नाक का अर्थ है वह लोक जहाँ अत्यन्त सुख प्राप्त हो।

सविता शब्द आदित्य की उस स्थिति का वाचक है, जो पूर्ण सूर्योदय से पूर्व की होती है । इस समय अन्तरिक्ष में तो प्रकाश रहता है किन्तु भूमि पर थोड़ा थोड़ा अंधेरा रहता है । यह काल पुरुष की मेधा शक्ति को बढ़ाने वाला होता है । इसीलिये सविता को कविः कहा गया है । सूर्योदय से पूर्व का यह समय मनुष्यों के लिये हर प्रकार से कल्याणकारी एवं स्वास्थ्यवर्धक होता है, इसीलिये सविता को भद्रता अथवा कल्याण उत्पन्न करने वाला कहा गया है ।

सविता के उपर्युक्त काल की पुष्टि करते हुये यास्काचार्य जी ने लिखा है—अधोरामः सवित्रः । अधोराम पक्षी को सवित्र कहा जाता है क्योंकि सवितृ काल में ऊपर प्रकाश होता है और नीचे पृथ्वी पर अन्धकार होता है । इसी के समान अधोराम पक्षी भी ऊपर से श्वेत तथा टाँगो से काला होता है । इसी प्रकार (कृकवाकुः सवित्रः)। 'कृक-कृक' करके बोलने वाला कृकुवाकु पक्षी, जिसे कुकुट अथवा मुर्गा कहते हैं, भी सवित्र कहलाता है क्योंकि यह सविता के काल में बोलता है ।

उ दुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यं।।

यजु. ७।४१,८।४१,(पाठभेद) ३३।३१ ऋग्. १।५०।१,
साम. पूर्वा. १।३।११,क्र.सं. ३१, अथर्व. १३।२।१६,२०।४७।१३

(जातवेदसं) समस्त उत्पन्न प्राणियों एवं पदार्थों को जानने वाले तथा हमें जीवन, प्रकाश, ऊर्जा, प्रेरणा एवं ज्ञान देने वाले (त्यं देवं) उस सूर्य देव को (केतवः उत् वहन्ति) किरणें ऊपर उठाती हुयी प्रतीत होती हैं, (दृशे विश्वाय सूर्यम्) जिससे कि समस्त विश्व सूर्य का दर्शन कर सके।

यह आलंकारिक तथा काव्यात्मक वर्णन है। सूर्योदय के समय सूर्य की किरणें पहले दिखायी देती हैं, उसके पश्चात् सूर्य ऊपर उठता

दिखायी देता है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उसकी किरणें सूर्य को ऊपर उठा रही हों ताकि संसार सूर्य का दर्शन कर सके।

चित्रं देवानामुदंगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुंणस्याग्नेः। आप्रा द्यावांपृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगंतस्तस्थुषंश्च।।

साम पूर्वा.६।५।३ क्रमां० ६२९, ऋग्. १।११५।१,
यजु. ७।४२ (पाठभेद) १३।४६, अथर्व. १३।२।३५ तथा २०।१०७।१४

मन्त्र का आधिदैविक अर्थ निम्न प्रकार है—

(देवानां अनीकं) देवों का मुख स्थानीय अर्थात् देवों में प्रमुख (चित्रं) यह अद्भुत देव अर्थात् सूर्य (उत् अगात्) उदय हुआ है। (मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चक्षुः) यह मित्र, वरुण तथा अग्नि अर्थात् समस्त देवताओं एवं मनुष्यों के चक्षु के समान है क्योंकि इसके प्रकाश में ही सब कुछ स्पष्ट रूप से दृष्टि गोचर होता है।

अथवा, (चित्रं देवानां अनीकं उदगात्) यह दर्शनीय रश्मि युञ्ज सूर्य उदित हुआ है, (मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चक्षुः) यह प्राण, अपान तथा यज्ञाग्नि का चक्षु है अर्थात् सूर्योदय होने पर मनुष्य की प्राण तथा अपान वायुयें भली प्रकार गति करती हैं और इसी समय यज्ञाग्नि प्रदीप्त की जाती है। अतएव ऐतरेय ब्राह्मण में विधान है कि सूर्योदय होने पर ही हवन किया जाना चाहिये, इसके पहले नहीं।

जो सूर्योदय के पश्चात् अग्नि होत्र करता है, वह सत्य बोलता है।

तस्माद् उदिते होतव्यम्। ऐतरेय. ब्रा. २५।३

इसलिये सूर्योदय के पश्चात् ही अग्नि होत्र करना चाहिये।

ऐतरेय. २५।४

(द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं आ प्राः) उदय होकर इसने द्युलोक, अन्तरिक्ष तथा पृथिवी को अपने प्रकाश से परिपूर्ण कर दिया है, पूर्ण रूप से आलोकित कर दिया है। (सूर्यः आत्मा जगतः तस्थुषः च) सूर्य जङ्गम तथा स्थावर अर्थात् इस समस्त चराचर जगत् का आत्मा है।

आध्यात्मिक अर्थ–

(मित्रस्य वरुणस्य अग्ने: चक्षु:) मित्र, वरुण एवं अग्नि आदि महान् देवों का चक्षुरुप अर्थात् समस्त जगत् का दृष्टा, प्रकाशक, पथ प्रदर्शक एवं नियामक (चित्रं देवानां अनीकं उद् आगात्) अद्भुत, देवों का भी देव, कान्तिमान रश्मिपुञ्ज अर्थात् अलौकिक प्रकाशस्वरुप परमात्मा विश्व में व्याप्त हुआ है। (द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं आ अप्रा:) उसने द्युलोक, अन्तरिक्ष तथा पृथिवी को अपनी आभा से सब ओर से आलोकित कर रखा है। (सूर्य: आत्मा जगत: तस्थुष: च) समस्त प्राणियों को जीवन एवं प्रेरणा देने वला परमात्मा जङ्गम एवं स्थावर सभी का आत्मा है, आधार है।

देवों मे अग्रणी यह सूर्य संसार में समस्त प्राणिमात्र को उसी प्रकार जीवनी शक्ति प्रदान करता है जिस प्रकार शरीर में प्राण। इसीलिये इसे समष्टि प्राण भी कहा जाता है। प्रश्नोपनिषद् में इसका वर्णन अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया गया है किन्तु यह स्पष्ट है कि सूर्य केवल उस सीमा तक ही जगत् को प्रेरणा, स्फूर्ति एवं जीवन दे सकता है, जितनी शक्ति उसे भगवान् ने प्रदान की है।

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्।
सहस्ररश्मि: शतधा वर्तमान: प्राण: प्रजानामुदयत्येष सूर्य:।।

प्रश्नोपनिषद्,१।८

व्याधियों एवं दु:खों को हरने वाला, समस्त रूपों को प्रकाशित करने वाला, समस्त उत्पन्न पदार्थों में व्याप्त होने के कारण उन्हें जानने वाला, सब का आश्रय, उर्जा, प्रकाश एवं ज्ञान देने वाला एकमात्र अद्धितीय तेज पुञ्ज, असंख्य किरणों से युक्त, सैकड़ों प्रकार से जीवन को धारण पोषण करने वाला, तेजस्वी ज्योतिस्वरूप समस्त प्रजाओं का प्राण यह सूर्य उदय होता है।

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्।।

ऋग्. १।३५।२, यजु. ३३।४३, ३४।३१

सब का प्रेरक एवं प्रकाशक (सविता देवः) सूर्य देव (कृष्णेन रजसा आवर्तमानः) पुनः पुनः आवर्तन करते हुये, घूमते हुये पृथिवी आदि प्रकाश रहित लोकों को प्रकाशित करते हुये तथा (निवेशयन् अमृतं मर्त्यं च) अमर देवों एवं मरणशील प्राणियों को अपने अपने कार्यों में लगाते हुये (भुवनानि पश्यन्) तथा समस्त लोकों को देखते हुये, उन्हें ऊर्जा देते हुये (हिरण्ययेन रथेन आयाति) अपने स्वर्णिम रथ से आते हैं।

सूर्य का यह अत्यन्त आलंकारिक एवं सुन्दर वर्णन है।

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य।
शोचिष्केशं विचक्षण।।

अथर्व. १३।२।२३, २०।४७।२०,(पाठभेद)
ऋग्. १।५०।८ (पाठभेद), साम. पूर्वा. ६।४।१४, क्र.सं. ६४०

(विचक्षण देव सूर्य) हे सर्वदृष्टा सूर्य देव! (शोचिष्केशं त्वा रथे) आपके रथ को पवित्र ज्वाला वाले बालों से युक्त, (सप्त हरितः) सब को प्रकाशित करने वाले सात अश्व (वहन्ति) वहन करते हैं। सूर्य की सात रंगों वाली, सब को पवित्र एवं प्रकाशित करने वाली किरणों को ही यहाँ आलंकारिक रुप से अश्व कहा गया है।

यह निम्नाङ्कित सात रंग इन्द्र धनुष में स्पष्ट रूप से दिखायी देते हैं। VIBGYOR= Violet, Indigo, Blue, Green, Yellow, Orange, Red

केशा रश्मय, काशन्नद्धा प्रकाशनाद्धा (निरुक्त. १२।३।२६)
विचक्षणम् विचष्टे पश्यति कर्मा (निघण्टु. ३।११)

अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा।।

साम. पूर्वा. ६।५।८, क्र.सं. ६३४(पाठभेद)
अथर्व. १३।२।१८,२०।४७।१५, ऋग्. १।५०।३

(अस्य केतवः) इस सूर्य के ध्वज के समान (जनान् अनु) लोगों की

ओर जाती हुयी (अस्य रश्मयः) इसकी किरणें (भ्राजन्तः अग्नयः यथा) अग्नि के समान प्रकाशमान तथा शोभायमान (वि अदृश्रन्) दिखायी देती हैं।

अथवा,

(अस्य केतवः रश्मयः) इस सूर्य की पदार्थ ज्ञापक किरणें (जनान् अनु वि अदृश्रन्) मनुष्य आदि प्राणियों को समस्त पदार्थ अनुकूलता से, स्पष्टता से इस प्रकार दिखाती हैं, (यथा भ्राजन्तः अग्नयः) जैसे प्रदीप्त अग्नियाँ।

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः।।

साम. पूर्वा. ६।५।१३, क्र.सं. ६३९
अथर्व. १३।२।२४,२०।४७।२१ ऋग्. १।५०।९,

(सूरः सर्वस्य प्रेरकः) सब को प्रेरणा देने वाले सूर्य ने (सप्त शुन्ध्युवः) पवित्र करने वाली तथा (नप्त्यः) रथ को न गिराने वाली सात रंग की अपनी किरणों रूपी अश्वों को अपने रथ में (अयुक्त) जोड़ा हुआ है। (ताभिः याति स्वयुक्तिभिः) अपने आप रथ में जुड़ जाने वाले उन किरण रूपी अश्वों की सहायता से वह सर्वत्र जाता है, अपना प्रकाश फैलाता है।

किरण रूपी अश्व सूर्य के रथ में अपने आप जुड़ जाते हैं, उन्हें अलग से जोड़ना नहीं पड़ता अन्यथा अश्वों की प्रतीक्षा में रथ के चलने में विलम्ब भी हो सकता है। कैसी सुन्दर उपमा है, कैसा सुन्दर अलंकार है।

बण्महाँ२ असि सूर्य बडादित्य महाँ२ असि।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ२ असि।।

साम. पूर्वा. ३।४।४ क्रं.सं. २७६, साम. उत्त. ९।३।८क्र. सं. १७८८
अथर्व. १३।२।२९,२०।५८।३ यजु. ३३।३९ ऋग्. ८।१०१।८

(सूर्य) हे सूर्य ! (बट्) सत्य है कि (महान् असि) तुम निश्चय ही महान् हो, (बड् आदित्य महाँ असि) हे आदित्य! तुम निश्चय ही महान् हो,

(महः सतः ते महिमा पनस्यते) महान होने के कारण तुम्हारी महिमा का गान किया जाता है, तुम्हारी स्तुति की जाती है। (अद्धा) अतः (देव महाँ असि) हे सूर्य देव! तुम महान हो।

बट् सत्यनाम (निघण्टु. ३।१०)

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।
अपा रेतांसि जिन्वति।।

साम. उत्त. ७।१।४१, क्र. सं. १५३२
यजु. ३।१४, (पाठभेद) ३।१२,१५।२०, ऋग्. ८।४४।१६

यह अग्नि (दिवः मूर्धा ककुत्) द्युलोक में सबसे ऊपर, बैल अथवा ऊँट की पीठ पर उठे हुये ऊँचे भाग के समान, सूर्य के रूप में स्थित है। (पृथिव्याः पतिः अयं अग्निः) पृथिवी का पालन करने वाला, उसकी रक्षा करने वाला यह अग्नि (अपां रेतांसि जिन्वति) जलों में तथा जल की उपलब्धता होने पर विभिन्न स्थानों पर जीवन उत्पन्न करता है।

सूर्य की किरणें, जल से पूर्ण स्थान में विभिन्न प्रकार के अनेकानेक पेड़ पौधों को तथा प्राणियों को जीवन देती है और उनकी रक्षा करती है।

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं,
विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत्।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो,
दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम्।।

ऋग्. १०।१७०।३

(ज्योतिषां श्रेष्ठं उत्तमं इदं ज्योतिः) सभी ज्योतिर्मय पदार्थों में श्रेष्ठ तथा उत्कृष्ट ज्योति रूपी यह सूर्य (विश्वजित् धनजित् बृहत् उच्यते) सब पर विजय प्राप्त करने वाला, समस्त धनों को जीतेने वाला, समस्त प्रकार के धनों का स्वामी तथा महान कहा जाता है। (विश्वभ्राट् भ्राजः सूर्यः दृशे) यह समस्त जगत् का प्रकाशक, स्वयं प्रकाशमान तथा महान् सूर्य

दिखायी देता है। (उरु सहः अच्युतं ओजः पप्रथे) यह विस्तीर्ण, सबको अपने तेज से अभिभूत करने वाला, अन्धकार को नष्ट करने वाला (अच्युत) कभी क्षीण न होने वाला, अविनाशी, अपने तेजो रूप बल का विस्तार करता है, समस्त संसार को अपने तेज से व्याप्त करता है।

विभ्राजञ्ज्योतिंषा स्व१रगंच्छो रोचनं दिवः।
येनेमा विश्वा भुवंनान्याभृंता विश्वकंर्मणा विश्वदेंव्यावता।।

ऋग्. १०।१७०।४

(ज्योतिषा स्वः विभ्राजन्) यह सूर्य अपने तेज से समस्त जगत् को प्रकाशित करते हुये, (दिवः रोचनं अगच्छ) द्युलोक को शोभायमान करता हुआ उदित होता है। (येन विश्व कर्मणा विश्व देव्यावता इमा विश्वा भुवनानि आभृता) जिस तेज की सहायता से विश्व के समस्त कार्य सम्पादित किये जाते हैं, उसी तेज से सभी देवों का, सभी प्राणियों का हितकारी सूर्य समस्त लोकों का पोषण करता है।

अन्तश्चंरति रोचनास्य प्राणादंपानती।
व्यंख्यन् महिषो दिवंम्।।

सामः पूर्वा. ६।५।५, क्रं.सं. ६३१

अथर्व. १०।१८९।२,

यजु. ३।७

साम. उत्त. ६।१।२, क्र.सं. १३७७,

(अस्य रोचना) इस अग्नि की दीप्तिमयी शक्ति (प्राणात्) प्राण तथा अपान के रूप में शरीर के अन्दर संचरण करती है तथा यह महान् अग्नि सूर्य के रूप में द्युलोक को भी प्रकाशित करती है।

अद्या देंवा उदिंता सूर्यंस्य
निरꣳहंसः पिपृता निरंवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुंणो मामहन्ता-,
मदिंतिः सिन्धुंः पृथिवी उतद्यौः।।

यजु. ३३।४२

ऋग्. १।११५।६,

(देवाः) हे देवो! (अद्य सूर्यस्य उदिता) आज सूर्य के उदय होने के समय से ही, (अवद्यात् अं हसः नः निः पिपृत्) अपकीर्ति, अपमान, पाप तथा दुःख एवं निन्दा से हमें दूर रखें। (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः) मित्र, वरण, अदित, समुद्र, पृथिवी तथा द्युलोक (नः तत्) हमारी इस प्रार्थना को, इस इच्छा को स्वीकार करें तथा (माम् हन्ताम्) हमारा अनुमोदन करें।

सूर्य, विद्युत, अग्नि

ऋषिः-दीर्घतमा औचक्ष्यः, देवता-विश्वेदेवाः

इनके मन्त्र अत्यन्त सुन्दर पहेलियों की भाँति हैं।

अस्य वामस्यं पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम्।।

अथर्व. ९।९।१, ऋग्.१।१६४।१

(अस्य वामस्य पलितस्य) इस सुन्दर पालन करने वाले तथा (होतुः आह्लाता) गृहों एवं उपगृहों आदि को अपने आकर्षण से यथास्थिति में रखने वाले सूर्य का (मध्यमः भ्राता अश्नः अस्ति) मध्यम भ्राता, बीच का भाई (अश्नः अशति) अन्तरिक्ष स्थित विद्युत है, (अस्य तृतीयः भ्राता घृतपृष्ठः) इसका तीसरा भाई अग्नि है। अग्नि में घृत की आहुति दी जाती है, अतः इसे घृतपृष्ठः कहा गया है। (अत्र सप्तपुत्रं विश्पतिं अपश्यम्) इन तीनों भाइयों में, मैं सप्त पुत्रों वाले सूर्य को विशेष रूप से प्राणियों का पालन करने वाला देखता हूँ।

सूर्य की सात रंगों वाली किरणें ही इसके सात पुत्र हैं।

पालित= पालयिता। अश्न= अशन अशनि। विश्= विश्व= सर्व।

सूर्य तथा चन्द्रमा

पूर्वापरं चरतो माययैतो शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम्।
विश्वान्यो भुवना विचष्टे ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः।।

ऋग्.१०।८५।१८, (पाठभेद)

अथर्व. १३।२।११, (पाठभेद), अथर्व.७।८१।१, १४।१।२३

(एतौ) ये दोनों सूर्य तथा पूर्णिमा का चन्द्रमा बालकों के समान (क्रीडन्तौ) क्रीड़ा करते हुये (मायया) भगवान् के नियमानुसार (पूर्वा परम्) मानो एक दूसरे के पीछे चलते हुये (अर्णवम्) अन्तरिक्ष के एक छोर से दूसरे छोर तक, पूर्व से पश्चिम तक (यातः) जाते हैं। (अन्यः अन्यः) इनमें से एक अर्थात् सूर्य (विश्वा भुवना विचष्टे) सब भुवनों को देखता है, प्रकाशित करता है तथा दूसरा चन्द्रमा, ऋतुओं के पक्ष, मास आदि का निर्माण करता हुआ फिर फिर नया होकर उत्पन्न होता है।

अग्नि

तनूपा अंग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अंग्नेऽस्यायुंर्मे देहि वर्चोदा अंग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म ऽआपृंण।।

यजु. ३।१७

(अग्ने) हे अग्ने! (तनूपा असि) आप शरीर की रक्षा करने वाले हैं, (तन्वं में पाहि) मेरे शरीर की रक्षा कीजिये, (अग्ने आयुर्दा असि आयुः मे देहि) हे अग्ने! आप आयु देने वाले हैं, मुझे आयु दीजिये, (वर्चोदा अग्ने असि वर्चः में देहि) हे अग्ने! आप तेजस्विता देने वाले हैं, मुझे तेजस्विता दीजिये। (अग्ने यत् मे तन्वा ऊनं) हे अग्ने! मेरे शरीर में जो न्यूनता हो, अस्वस्थता आदि हो, (तत् मे आ पृण) मेरी उस कमी को पूर्ण कीजिये।

देवो देवानांमसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूंनामसि चारुंरध्वरे।
शर्मन्त्स्याम तवं सप्रथंस्तमे ऽग्नें सख्ये मा रिषांमा वयं तवं।।

ऋग्. १।९४।१३

(अग्ने) हे अग्ने! (देवः देवानाम्) देवों में श्रेष्ठ देव तथा दिव्य गुणों से युक्त एवं प्रकाशमान आप (अद्भुतः मित्रः असि) अद्भुत मित्र हैं तथा (अध्वरे) यज्ञ में (चारुः) शोभायमान होने वाले आप (वसूनाम् वसुः असि) अष्ट वसुओं में श्रेष्ठ वसु हैं, (तव सप्रथस्तमे) आपके द्वारा प्रदान किये गये सर्वत्र विस्तृत (शर्मन्) सुख में अथवा सुख देने वाले गृह में (वयम् स्याम)

हम रहें अर्थात् आपके द्वारा प्रदान किये गये सुख का हम उपभोग करें तथा (तव सख्ये) आपकी मित्रता में रहकर (वयं मा रिषाम) हम किसी प्रकार की हिंसा, दुःख अथवा कष्ट को प्राप्त न हों।

अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्युलोक, चन्द्रमा तथा नक्षत्र ये आठ वसु हैं, जिनके आधार पर प्राणि मात्र वसते हैं, जीवित रहते हैं।

प्र सो अ॑ग्ने॒ तवो॒तिभिः॑ सु॒वीरा॑भिस्तरति॒ वाज॑कर्मभिः।
यस्य॒ त्वꣳ स॒ख्यमावि॑थ॥

ऋग्. ८।१९।३० (पाठभेद), साम. पूर्वा. १।२।२, क्र.सं. १०८
साम. उत्त. २०।६।१, क्र.सं. १८२२

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरुप परब्रह्म! (यस्य त्वं सख्यं आविथ) जिसकी मित्रता आप स्वीकार कर लेते हैं अर्थात् आप जिसके मित्र हो जाते हैं, (सः तव सुवीराभिः ऊतिभिः वाजकर्मभिः) वह आपकी अत्यन्त वीरतापूर्ण रक्षाओं तथा आपके बलशाली कर्मों से (प्रतरति) सभी दुःखों, कष्टों एवं संकटों से पार हो जाता है।

त्वम॑ग्ने य॒ज्ञाना॒ꣳ होता॒ विश्वे॑षां हि॒तः। दे॒वेभि॒र्मानु॑षे॒ जने॑॥

साम. पूर्वा. क्र.सं.२ तथा ४७४, ऋग्. ६।१६।१

हे अग्ने ! (त्वम् यज्ञानां होता) तुम यज्ञों को सम्पन्न करवाने वाले तथा (देवेभिः) सूर्य, वायु आदि देवों के साथ (मानुषे जने विश्वेषां हितः) मनुष्यों में सभी का हित करने वाले हो।

त्वाम॑ग्ने॒ पुष्क॑रा॒दध्यथ॑र्वा॒ निर॑मन्थत।
मू॒र्ध्नो विश्व॑स्य वा॒घतः॑॥

यजुर्वेद,११।३२, ऋग्वेद, ६।१६।१३
सामवेद पूर्वार्चिक १।१।९ क्रम सं.९

आध्यात्मिक अर्थ

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म ! (मूर्ध्न: विश्वस्य) समस्त संसार के मूर्धारूप, शिरस्थानीय अर्थात् सर्वश्रेष्ठ तथा (वाघत:) मेधावी अथवा (वाघत: वोढार:) समस्त विश्व को वहन करने वाले (त्वाम्) आपको (अथर्वा) निश्चल, स्थिरचित्त ज्ञानी (पुष्कराद् अधि) अपने हृदयाकाश में, हृदय कमल में (निरमन्थत) ज्ञान द्वारा निरन्तर मंथन करके, मनन, ध्यान एवं चिन्तन करके प्राप्त करता है, आपका साक्षात्कार करता है।

यहाँ निरमन्थत शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार अरणियों के मंथन से अग्नि प्राप्त की जाती है, उसी प्रकार ज्ञानपूर्वक निरन्तर चिन्तन एवं ध्यान से प्रकाशस्वरूप परब्रह्म का साक्षात्कार हृदयाकाश में किया जाता है।

थर्व शब्द चलनात्मक है अत: अथर्वा का अर्थ है ऐसा योगी जिसका मन, बुद्धि तथा चित्त चंचलता से रहित होकर केवल ब्रह्म में स्थिर होता है।

१. पुष्करं अन्तरिक्षं, पोषति भूतानि। उदकं पुष्करं, पूजाकरं पूजयितव्यं वा। इदमपीतरत् पुष्करमेतस्मादेव, पुष्करं वपुष्करं वा। पुष्पं पुष्पते:। निरुक्त ५।१३

(क) 'पुष धारणे' धातु से सिद्ध करने पर अर्थ होगा धारण करने वाला, अन्तरिक्ष यह लोकों को धारण करता है।

(ख) यह पुष्ट करता है अत: पुष्कर है। पुष्ट करने वाली "पुष पुष्टौ" धातु से पुष्कर शब्द सिद्ध होता है अत: इसका अर्थ है पुष्ट करने वाला। व्योम में ही सभी पदार्थ पुष्ट होते हैं, बढ़ते हैं। अत: पुष्कर का अर्थ हुआ आकाश।

(ग) उदक, यह पूजा का साधन है अथवा (पूजयितव्य) आदरणीय है।

(घ) कमल पुष्प, यह भी पूजा का साधन तथा आदरणीय होता है। पुष्करं पुण्डरीकं पद्मं अर्थात् कमल।

(च) शरीर को पुष्ट करने वाला होने के कारण हृदय को भी पुष्कर कहते हैं। पुरुष शरीर में हृदय को पुण्डरीक कहा जाता है।

अ॒ग्न आयूँ॑षि पवस॒ आ सु॒वोर्ज॒मिषं॑ च नः।
आ॒रे बा॑धस्व दु॒च्छुना॑म्॥

यजु. १९।३८,३५।१६, साम. पूर्वा. ६।५।१, क्र.सं. ६२७
साम. उत्त. १४।३(३)।१, क्र.सं. १५१८ तथा १४६४, ऋग्. ९।६६।१९

(अग्ने) हे अग्ने! (आयूंषि पवस) आप हमारी आयुओं को, हमारे जीवनों की रक्षा करने वाले हैं। (नः इषं ऊर्जं आसुव) हमें अन्न, रस तथा बल प्राप्त कराइये तथा (दुच्छुनाम्) दुष्ट कुत्तों के समान शत्रुओं एवं दुष्ट मनुष्यों को हमसे (आरे) दूर रखकर (बाधस्व) पीड़ित कीजिये, दण्डित कीजिये।

अग्ने॒ पव॑स्व॒ स्वपा॑ अ॒स्मे वर्चः॑ सु॒वीर्य॑म्।
दध॑द्र॒यिं मयि॒ पोषं॑॥

यजु. ८।३८ (पाठभेद), साम.उत्त.१४।३(३)।३,क्र.सं.१५२०, ऋग्. ९।६६।२१

(अग्ने) हे अग्ने! (स्वपाः) आप उत्तम कर्म करने वाले हैं, (अस्मे वर्चः सुवीर्यम् पवस्व) हमारे लिये शोभनीय तेज एवं उत्तम बल तथा पराक्रम दीजिये। (मयि रयिं पोषं दधत्) मुझमें धन, ऐश्वर्य एवं पुष्टि अर्थात् निरोगिता एवं शक्ति धारण कीजिये।

नम॑स्ते॒ हर॑से शो॒चिषे॒ नम॑स्ते अस्त्व॒र्चिषे॑। अ॒न्याँस्ते॑
अ॒स्मत्त॑पन्तु हे॒तयः॑ पाव॒को अ॒स्मभ्य॑ꣳ शि॒वो भ॑व॥

यजु. १७।११, ३६।२०

हे अग्ने! (ते हरसे शोचिषे नमः) पापों का हरण करने वाली तथा रसों का शोषण करने वाली आपकी पवित्र दीप्तिमान् ज्वाला को नमस्कार है, (ते अर्चिषे नमः अस्तु) आपके स्तुति योग्य तेज के लिये नमस्कार है। (ते हेतयः) आपकी ज्वालायें (अस्मत् अन्यान् तपन्तु) हमसे भिन्न अन्य लोगों को अर्थात् हमारे शत्रुओं को तपायें, भस्म करें। (अस्मभ्यं

पावकः शिवः भव) हे अग्ने! आप हमारे लिये पवित्र करने वाले एवं कल्याणकारी होइये।

त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे,
हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम्।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं,
विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे।।

साम. उत्त. १५।४।२, क्र.सं. १५६८, ऋग्. ६।१५।८

(अमृतं युगे युगे हव्यवाहं) अविनाशी तथा युग युग में अर्थात् सदैव हव्य का वहन करने वाले, (पायुं ईड्यं) रक्षा करने वाले तथा स्तुति के योग्य (अग्ने) हे अग्ने! (देवासः च मर्तासः च) देवों तथा मनुष्यों ने (त्वां दूतं दधिरे) आपको देवों को बुलाने के लिये दूत के रूप में धारण किया है, स्वीकार किया है। (जागृविं विभुं विश्पतिं) सदैव जागृत रहने वाले, सर्वत्र व्याप्त तथा प्रजाओं का पालन करने वाले हे अग्ने! (नमसा नि षेदिरे) हम आपकी नमन के द्वारा, नमस्कार पूर्ण वचनों द्वारा विनम्रता पूर्वक उपासना करते हैं।

यज्ञ परक अर्थ में अग्नि का अर्थ यज्ञाग्नि होता है जब कि आध्यात्मिक अर्थ में अग्नि का अर्थ परमात्मा होता है।

यज्ञाग्नि में आहुत द्रव्यों को अग्नि ही समस्त देवों तक पहुँचाता है। इसी प्रकार शरीर में भोजन किये गये समस्त पदार्थों को जठराग्नि ही पचाने के उपरान्त रक्त एवं प्राण वायु के संचार द्वारा समस्त देवों अर्थात् इन्द्रियों को पहुँचाती है।

सुजातं जातवेदसमग्निं वैश्वानरं विभुम्।
हव्यवाहं हवामहे स नो मुञ्चत्वंहसः।।

अथर्व. ४।२३।४

(सुजातं) सुन्दर एवं शोभायमान स्वरुप में प्रकट होने वाले, (जातवेदसम्) संसार में उत्पन्न समस्त पदार्थों में व्याप्त रहने के कारण

उन्हें जानने वाले, (वैश्वानरं) विश्व के समस्त प्राणियों के हितकारी, उन्हें जीवन, प्रेरणा, ऊर्जा एवं गति देने वाले, (विभुम्) सर्वव्यापक (हव्यवाहम्) अन्न आदि समस्त हव्य पदार्थों का वहन करने वाले तथा यज्ञ में आहुत हवि को विभिन्न देवों के लिये ले जाने वाले (अग्निं) अग्नि का हम (हवामहे) आह्वान करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि (सः नः) वह हमें (अंहसः मुञ्चन्तु) पाप से मुक्त करायें अर्थात् हमें पाप से दूर रखें तथा हमारे पापों को नष्ट करें।

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेतत् सत्यमङ्गिरः।।

ऋग्. १।१।६

आध्यात्मिक अर्थ

(अङ्ग अग्ने) सबके प्रिय मित्र, (अङ्गिरः) ब्रह्माण्ड के अंग स्वरूप पृथिवी आदि में व्याप्त तथा शरीर में अन्तर्यामी रूप से समस्त अंगों के रस के रूप में, प्राणशक्ति के रूप में व्याप्त हे प्रभो! (यत् त्वं दाशुषे भद्रं करिष्यसि) जो आपका यह नियम है कि आप दान देने वाले का कल्याण करते हो, (तव तत् सत्यं इत्) वह निःसन्देह सत्य है, अटल है।

प्राणो वा अङ्गानां रसः प्राणो हि वा अङ्गानां रसः।

शतपथ.१४।४।१।२९

प्राण अंगों का रस है। प्राण ही अंगों का रस है। (इसलिये जिस अंग से प्राण निकल जाता है, वह अंग सूख जाता है।)

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः।।

यजु. ४।१६, (पाठभेद) ऋग्. ८।११।१

(देव अग्ने) हे अग्नि देव! (त्वं मर्त्येषु आ व्रतपा असि) आप मनुष्यों में उनके व्रतों के रक्षक हो (यज्ञेषु त्वं ईड्यः) तथा यज्ञों में स्तुति के योग्य हो।

अनेक मन्त्रों में अग्नि को व्रतपा अथवा व्रतपते, व्रत की रक्षा करने वाला कहा गया है। शरीर में जब इच्छाशक्ति, तेज तथा ऊर्जा होगी

तभी मनुष्य श्रेष्ठ नियमों का पालन कर सकेगा।

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः।।

यजु. ३।२५,१५।४८,२५।४७, (पाठभेद) ऋग्. ५।२४।१

(अग्ने) हे अग्ने! हे प्रभो! (त्वं नः अन्तमः) आप हमारे समीप रहकर अथवा अन्तर्यामी रूप से हमारे अन्दर विद्यमान रहकर (वरूथ्यः त्राता उत शिवः भव) स्तुति योग्य, हमारे रक्षक तथा हमारा कल्याण करने वाले होइये और हमें श्रेष्ठ गुण, स्वभाव तथा कर्मों से युक्त कीजिये।

वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः।।

यजु. ३।२५, (पाठभेद) ऋग्. ५।२४।२

(वसुः वसुश्रवाः अग्निः) समस्त प्राणियों को बसाने वाले तथा उनकी रक्षा करने वाले, धन धान्य से युक्त अग्नि (अच्छा नक्षि) हमारे शरीर में अच्छी प्रकार व्याप्त रहे, स्थित रहे तथा (द्युमत्तमं रयिंदाः) हमें तेजस्वी पवित्र धन प्रदान करे।

स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात्।।

यजु. ३।२६, (पाठभेद) ऋग्. ५।२४।३

हे अग्ने! (सः नः बोधि) वह आप हमें ज्ञान दीजिये, (हवं श्रुधि) हमारी प्रार्थना को सुनिये तथा (समस्मात् अघायतः नः उरुष्य) समस्त पापियों तथा दुष्टों से हमारी रक्षा कीजिये।

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः।
स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्याणो अघायतः समस्मात्।।

ऋग्. ५।२४।४, (पाठभेद) यजु. ३।२६

(शोचिष्ठ दीदिवः) शुद्धस्वरूप और देदीप्यमान हे प्रभो! (नः सखिभ्यः) हम आपके मित्र, अपने लिये तथा अपने मित्रों के लिये (तं त्वा सुम्नाय नूनम् ईमहे) उस आपसे निश्चय पूर्वक सुख के लिये प्रार्थना करते हैं, याचना करते हैं। (स नः बोधि) वह आप हमारे ऊपर कृपा कीजिये (हवं श्रुधि) और हमारी प्रार्थना को सुनिये (नः समस्मात् अघायतः उरुष्य) तथा

सब प्रकार के पापों से हमारी रक्षा कीजिये।

उषा

त्वं त्येभिरा गंहि वाजेंभिर्दुहितर्दिवः। अस्मे रयिं नि धारय।।

ऋग्. १।३०।२२

(दिवः दुहितः) हे द्युलोक की पुत्री! (त्येभिः वाजेभिः त्वा आगहि) उन बलों तथा अन्न आदि के साथ तुम आओ और (अस्मे रयिं नि धारय) हमें धन प्रदान करो।

उषस्तच्चित्रमा भंराऽस्मभ्यं वाजिनीवति।
येनं तो कं च तनंयं च धामंहे।।

ऋग्. १।९२।१३

(वाजिनी वति उषः) ऐश्वर्य एवं समृद्धि से युक्त उषा देवि! (अस्मभ्यं तत् चित्रम् आभर) हमारे लिये वह उत्तम धन तथा वैभव भरपूर दीजिये, (येन तोकं तनयं च धामहे) जिससे हम पुत्र तथा पौत्र के भरण पोषण में समर्थ हो जायँ।

एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात्।
अप द्वेषो बाधंमाना तमांस्युषा दिवो दुंहिता ज्योतिषागांत्।।

ऋग्. ५।८०।५

(स्नाती उर्ध्वा इव) स्नान करके जल में से ऊपर उठकर (तन्वा विदाना) अपने शरीर के अंगों को दिखाती हुयी, (एषा शुभ्रा न) गौरवर्ण वाली स्त्री के समान (उषाः) उषा (नः दृशये अस्थात्) हम सब के देखने के लिये ऊपर आकाश में स्थित हुयी है। (द्वेषां तमांसि अपबाधमाना) अन्धकार तथा द्वेष करने वाले शत्रुओं आदि को हटाती हुयी (दिवः दुहिता) द्युलोक की यह पुत्री (ज्योतिषा आगात्) अपने प्रकाश के साथ आ गयी है।

व्युंषा आंवो दिविजा ऋतेनांऽविष्कृण्वाना मंहिमानमागांत्।
अप द्रुहस्तमं आवरजुंष्टमङ्गिंरस्तमा पथ्यां अजीगः।।

ऋग्. ७।७५।१

(उषाः दिविजाः वि आवः) उषा आकाश में प्रकट होकर विशेष रूप से प्रकाशित हो रही है, (ऋतेन महिमानं आविष्कृण्वाना आ अगात्) यह तेज से अपनी महिमा को प्रकट करते हुये आ रही है। (द्रुहः अजुष्टं तमः अप आवः) यह उषा शत्रुओं को तथा अप्रिय अन्धकार को दूर करती है और (अङ्गिरस्तमा पथ्याः अजीगः) चलने के मार्गों को प्रकाशित करती है।

महे नो अद्य सुंविताय बोध्युषो महे सौभंगाय प्र यन्धि।
चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम्।।

ऋग्. ७।७५।२

(अद्य नः महं सुविताय बोध) आज हम बड़ा सुख प्राप्त करने के लिये जागें, (उषः) हे उषा देवि! (महे सौभगाय प्र यन्धि) हमें बड़ा सौभाग्य प्रदान कीजिये, (चित्रं रयिं यशसं अस्मे धेहि) हमें नाना प्रकार का श्रेष्ठ धन तथा यश दीजिये। (मानुषि देवि) हे मनुष्यों का हित करने वाली देवि! (मर्तेषु श्रवस्युम्) मनुष्यों को अन्न तथा यशस्वी पुत्र दीजिये।

कन्येव तन्वाऽ शाशंदानाँ एषिं देवि देवमियंक्षमाणम्।
संस्मयंमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती।।

ऋग्. १।१२३।१०

(तन्वा शाशदानां कन्या इव) जिस प्रकार अपने शरीर को स्पष्ट रूप से दिखाती हुयी कन्या (इयक्षमाणं देवं एषि) इच्छित सुख देने वाले पति के पास जाती है तथा (युवतिः संस्मयमाना) जिस प्रकार मुस्कराती हुयी युवती अपने पति के (पुरस्तात्) समक्ष (वक्षांसि आविः कृणुषे) अपने सुन्दर वक्षस्थलों को प्रकट करती है, दिखाती है, उसी प्रकार (एषि देवि विभाती) यह उषा देवी अपने शरीर की सुन्दरता दिखाती हुयी शोभायमान होती है।

एषा दिवो दुंहिता प्रत्यंदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात्।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रंजानतीव न दिशो मिनाति।।

ऋग्. १।१२४।३

(ज्योतिः वसाना समना) ज्योति रूप वस्त्र पहनने वाली तथा उत्तम मन वाली, सब को प्रसन्नता देने वाली (एषा दिवः दुहिता) यह द्युलोक की पुत्री (पुरस्तात् अदर्शि) पूर्व दिशा में दिखायी देने लगी है। यह (प्रजानती इव) विदुषी स्त्री के समान (ऋतस्य पन्थां साधु अनु एति) सत्य के मार्ग का सम्यक् रूप से अनुसरण करती है और (दिशः न मिनाति) अपनी उत्तम दिशा को नहीं छोड़ती।

उषा सदैव पूर्व दिशा में ही रहती है, वह अपनी श्रेष्ठ पवित्र दिशा को नहीं छोड़ती।

एवेदेषा पुंरुतमां दृशे कं नाजांमिं न परिं वृणक्ति जामिम्।
अरेपसां तन्वा३ शाशंदाना नार्भादीषंते न महो विंभाती।।

ऋग्. १।१२४।६

(एषा एव इत्) यह उषा (पुरुतमा) विस्तीर्ण होते हुये (कं दृशे) सुख की अनुभूति कराने के लिये किसी के साथ भेदभाव नहीं करती, (अजामिं न परि वृणक्ति) न विजातीय को छोड़ती है और न (जामिं) स्वजातीय को। यह अपने प्रकाश एवं अपनी सुन्दरता से सभी को सुख की अनुभूति करवाती है। (अरेपसा तन्वा शाशदाना) अपने निष्पाप शरीर को प्रकाशित करती हुयी उषा (न अर्भात् ईषते) न छोटे लोगों से दूर भागती है और (न महः) न बड़ों से। यह सबको (विभाती) प्रकाशित करती है, सुखी करती है।

यह छोटी वस्तु को भी प्रकाशित करती है और पर्वत को भी।

सह वामेनं न उषो व्युंच्छा दुहितर्दिवः।
सह द्युम्नेनं बृहता विंभावरि राया देंवि दास्वंती।।

ऋग्. १।४८।१

(दिवः दुहितः) द्युलोक की पुत्री, (विभावरी) दीप्तियुक्त तेजस्विनी (दास्वती) दान देने वाली (उषः) उषा (वामेन सह) हमारे लिये उत्तम प्रकाश एवं धन तथा (नि बृहता द्युम्नेन राया सह व्युच्छ) प्रभूत अन्न एवं वैभव के साथ प्रकाशित हो।

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा।
यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युषसे योनिमारैक्।।

ऋग्. १।११३।१

(ज्योतिषां श्रेष्ठं इदं ज्योतिः) समस्त ज्योतियों में श्रेष्ठ यह ज्योति (आगात्) पूर्व दिशा में उदित हो गयी है, आ गयी है, (चित्रः प्रकेतः विभ्वा अजनिष्ट) यह विलक्षण रमणीय प्रकाश फैलता हुआ प्रकट हो रहा है। (यथा रात्रिः सवितुः सवायं प्रसूता एवा) जिस तरह से रात्रि सूर्य की उत्पत्ति के लिये उत्पन्न हुयी है अर्थात् सूर्य के लिये स्थान रिक्त करती है, उसी प्रकार यह रात्रि (उषसे योनिं आरैक्) उषा के जन्म के लिये भी स्थान रिक्त करती है। रात्रि के समाप्त होने पर ही उषा प्रकट होती है।

उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता।।

ऋग्. १०।१७२।४

(उषाः स्वसुः तमः अप सं वर्तयति) उषा अपनी बहिन रात्रि के अन्धकार को अपने तेज से दूर करती है तथा (सुजातता वर्तनिं) अपने जन्म की (सुजातता) श्रेष्ठता को प्रकाशित करती है, तदनुसार व्यवहार करती है।

इसी प्रकार अग्नि को 'सुजातं जातवेदसं' कहा गया है। (अ. ४।२३।४)

जीवात्मा

विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार। देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान।।

साम. क्र.सं. १७८२, अथर्व. ९।१०।९, (पाठभेद), ऋग्. १०।५५।५

(विधुं समने बहूनां दद्राणं) विविध कर्मों को करने वाले और युद्ध में बहुत से शत्रुओं को भगाने वाले, (युवानं सन्तं पलितः जगार) युवा पुरुष को भी मृत्यु रूपी वृद्ध ने निगल लिया। (देवस्य महित्वा पश्य काव्यं)

भगवान् की महिमा से पूर्ण इस अनोखी सामर्थ्य को, उनके महत्व से पूर्ण इस अद्भुत कर्म को देखो। (यः ह्यः समान) जो कल जीवित था वह (अद्या ममार) आज मर गया और जो (ह्यः ममार) कल मर गया वह (अद्य समान) आज पुनः जीवन धारण कर रहा है।

तात्पर्य यह है कि आत्मा अमर है और मृत्यु के पश्चात् नवीन शरीरों में चला जाता है, जैसा कि गीता में कहा गया है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।

गीता. २।२२

जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, उसी प्रकार जीवात्मा पुराने शरीर को त्यागकर दूसरे नये शरीर को धारण करता है।

अथर्वाणं पितरं देवबन्धुं मातुर्गर्भं पितुरसुं युवानम्।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः।।

अथर्व. ७।२।१

(इमं यज्ञं अथर्वाणं पितरं) इस पूजनीय, अपने पास, अपने शरीर में जीवन पर्यन्त रहने वाले तथा पिता के समान रक्षा करने वाले, (देवों के बन्धु) शरीर मे सब देवों के अंशों को बन्धुओं के समान अपने साथ रखने वाले, (मातुः गर्भं) माता के गर्भ में (पितुः असुं) जीवन रक्षक प्राण के साथ स्थित रहने वाले, (युवानम्) सदा तरुण आत्मा को (मनसा चिकेत) जो मन से जानता है, वह (इह तं नः प्रवोचः) यहाँ उसके विषय में हमें उपदेश करे, बताये।

अथर्वा- थर्वः चरति कर्मा तत् प्रतिषेधः। (निरुक्त. ११।२।१९)
(निश्चल जीवन पर्यन्त शरीर में रहने वाला)
अथ अर्वाक्- यहीं शरीर के अन्दर रहने वाला आत्मा।

(देव बन्धुं) का अर्थ यह है कि जब तक शरीर में आत्मा रहता है, तब तक वह आत्मा समस्त देवताओं, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, जल, पृथिवी आदि के अंश अपने साथ शरीर में बाँध कर रखता है। आत्मा के जाने के साथ ही इन सभी देवताओं के अंश शरीर से निकल जाते हैं।

अनच्छंये तुरगांतु जीवमेजंत् ध्रुवं मध्य आ पस्त्या॑नाम्।
जीवो मृतस्यं चरति स्वधाभिरमंर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।।

ऋग्. १।१६४।३०, अथर्व. ९।१०।८

(तुरगातु) शीघ्र गतिमान होते हुये भी (जीवं) जीवात्मा (ध्रुवं) स्थिर होकर (पस्त्यानाम्) शरीर रूपी गृहों में (अनत् शये) प्राण शक्ति से सम्पन्न होकर रहता है और शरीर को (एजत्) गतिमान् करता है। (मृतस्य अमर्त्यः जीवः) मृत व्यक्ति का अमर जीवात्मा (मर्त्येन) अपने कर्म जनित संस्कारों के साथ नये मरणधर्मा शरीर में, (सयोनिः) उस शरीर की समान योनि में (स्वधाभिः चरति) अपनी धारक शक्तियों के साथ चला जाता है।

तात्पर्य यह है कि जो योनि आत्मा को प्राप्त होती है, उसी योनि के शरीर में आत्मा चला जाता है। यदि मनुष्य की योनि प्राप्त हुयी तो मनुष्य शरीर में चला जाता है और किसी पशु की योनि प्राप्त हुयी तो उस पशु के शरीर में चला जाता है।

पस्त्यं गृहनाम् (निघण्टु. ३।४)

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतो-,
ऽमंर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वंन्ता विषूचीनां वियन्ता-,
न्यं१॒न्यं चिक्युर्न नि चिंक्युरन्यम्।।

ऋग्. १।१६४।३८, अथर्व. ९।१०।१६

(अमर्त्यः मर्त्येन सयोनिः) मरणधर्मा शरीर के साथ अमर आत्मा समान योनि में प्राप्त होकर (स्वधया गृभीतः) अपनी धारणा शक्ति तथा अपने कृत कर्मों के संस्कारों से, वासनाओं से युक्त होकर (अपाङ् प्राङ्

एति) फल भोगने के लिये अधम अथवा उच्च योनि में जाता है। (ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता) विरुद्ध गति वाले वे दोनों अर्थात् मरणधर्मा शरीर और अमर आत्मा शाश्वत काल से विविध योनियों में विचरण करते हैं। तात्पर्य यह है कि आत्मा शाश्वत काल से विविध योनियों में विभिन्न शरीरों को प्राप्त करता है। (अन्यम् निचिक्युः) उनमें से एक को अर्थात् शरीर को हम जानते हैं, (अन्यं न निचिक्युः) दूसरे अर्थात् आत्मा को नहीं जानते।

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।।

अथर्व. १०।८।३२

(अन्ति सन्तं न जहाति) समीप रहते हुये यह जीवात्मा आजीवन शरीर को नहीं छोड़ता, उसके साथ ही रहता है, (अन्तिसन्तम् न पश्यति) पास रहते हुये भी इसे कोई देख नहीं पाता, (देवस्य पश्य काव्यं) भगवान् के काव्य, उसकी लीला अथवा उसके आश्चर्य जनक कर्म को देखो, (न ममार न जीर्यति) यह जीवात्मा न तो मरता है और न जीर्ण होता है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।

गीता. २।२३

इस आत्मा को न तो शस्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न जल गीला कर सकता है और न वायु सुखा सकती है।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।।

गीता१५।७

शरीर में जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है और वही प्रकृति में स्थित मन तथा पाँचों इन्द्रियों को आकर्षित करके शरीर में रखता है।

तात्पर्य यह है कि बुद्धि, मन तथा इन्द्रियाँ सभी आत्मा पर ही आधारित हैं और आत्मा के साथ ही शरीर में रहती हैं।

भगवान् पिता हैं, मित्र हैं

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे ।। अथर्व. २०।१०८।२,

ऋग्. ८।९८।११(पाठभेद), साम. उत्त. ८।६ (२) ।२ क्र. सं.११७०,(पाठभेद)

(शतक्रतो) सैकड़ों पराक्रम तथा यज्ञ अर्थात् श्रेष्ठ कर्म करने वाले हे इन्द्र! (वसो) हे जगन्निवास! (त्वं हि नः पिता) निश्चय ही आप हमारे पिता तथा (त्वं माता बभूविथ) आप ही हमारी माता हो, (अधा ते सुम्नम् ईमहे) अतः हम आप से सुख की प्रार्थना करते हैं ।

त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः।
सखा सखिभ्य ईड्यः।।

साम. उत्त. १५।१।२, क्र.सं. १५३६, ऋग्. १।७५।४

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म! (त्वं जनानम् जामिः) आप सब मनुष्यों के बन्धु तथा (प्रियः मित्रः असि) प्रिय मित्र हैं और (सखिभ्यः ईड्यः सखा) मित्रों के द्वारा स्तुति किये जाने योग्य सखा हैं।

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे।
सखाय इन्द्रमूतये।।

यजु. ११।१४, ऋग्. १।३०।७, अथर्व. २०।२६।१
साम. पूर्वा. २।७।९, क्र.सं. १६३, साम. उत्त. क्रं.सं. २।३।३।१,७४३

(सखायः) परस्पर मित्रता को प्राप्त करते हुये हम लोग (योगे योगे) प्रत्येक अवसर पर, प्रत्येक कर्म में (वाजे वाजे) तथा जीवन के प्रत्येक संग्राम में (तवस्तरं) अत्यन्त बलशाली (इन्द्रम् ऊतये) इन्द्र का अपनी रक्षा के लिये (हवामहे) आवाहन करते हैं।

शास इत्था महाँ अस्यमित्रखादो अद्भुतः।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन।।

ऋग्. १०।१५२।१

हे प्रभो! (शास) आप शासन करने वाले, (महान्) महान्, (अमित्र खादः) शत्रुनाशक एवं (इत्था अद्भुतः असि) ऐसे अद्भुत हैं, (यस्य सखा न हन्यते) जिनका मित्र न तो मारा जाता है और (न जीयते कदाचन) न कभी पराजित होता है अथवा कष्ट भोगता है।

भगवान् अपने कृपा पात्रों के शत्रुओं को स्वयं ही नष्ट कर देते हैं और स्वयं ही उनके योग तथा क्षेम को वहन करते हैं।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।

गीता, ९।२२

अनन्य भाव से चिन्तन करते हुये जो मेरी उपासना करते हैं उन, भक्तिभाव से मुझ में नित्य अभियुक्त होने वाले, भली प्रकार जुड़ जाने वाले, भक्तों के योग तथा क्षेम को मैं स्वयं वहन करता हूँ।

(अलब्धलाभो योगः) अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति का नाम योग है तथा (प्राप्तस्य संरक्षणं क्षेमः) प्राप्त वस्तु के संरक्षण का नाम क्षेम है।

तथा तदंस्तु सोमपाः सखें वज्रिन् तथां कृणु ।
यथां त उश्मसीष्टयें ।। ऋग्वेद. १।३०।१२

(सोमपाः सखे वज्रिन्) हे सोम पान करने वाले वज्रधारी मित्र! (तथा तदस्तु) वैसा ही हो, वही हो (तथा कृणु) तथा आप वैसा ही करें, (यथा त) जैसा हम आपसे (इष्टये उश्मसि) अपने इष्ट की, अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिये इच्छा करें, प्रार्थना करें।

यदंग्ने स्यामहं त्वं त्वं वां धा स्या अहम्।
स्युष्टें सत्या इहाशिषंः।। ऋग्. ८।४४।२३

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप प्रभो! (यत् अहं त्वं स्याम्) जब मैं तुम हो जाऊँ (वा धा) अथवा (त्वम् अहम् स्याः) तुम मैं हो जाओ (ते इह आशिषः) तब इस संसार में तुम्हारे समस्त आशीर्वाद (सत्याः स्युः) सत्य हो जायँ। यह भक्ति की पराकाष्ठा है। भक्त भगवान् के साथ एकाकार होना चाहता है।

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा।।

अथर्व. ७।२७।६, ऋग्. १।२२।१९
साम. १८।२।३, क्र.सं. १६७१, यजु. ६।४

(विष्णोः कर्माणि पश्यत) विष्णु के, भगवान् के कार्यों को देखो, (यतः व्रतानि पस्पशे) जिनसे सृष्टि के समस्त व्यापार, समस्त कार्य तथा समस्त शाश्वत नियम चलते हैं। (इन्द्रस्य युज्यः सखा) वह परमात्मा, जीवात्मा का योग्य एवं अनुकूल मित्र है।

आत्मा में परमात्मा का मित्र बनने की समस्त योग्यतायें हैं, आवश्यकता है प्रयास, ज्ञान, कर्म, भक्ति एवं उपासना की।

आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये।
सखा सख्ये वरेण्यः।।

ऋग्. १।२६।३

(आ वरेण्यः पिता) श्रेष्ठ पिता जिस प्रकार अपने पुत्र की, (अपिः आपये) बन्धु अपने बन्धु की तथा (सखा सख्ये) मित्र अपने मित्र की (आयजति) सहायता करता है, (हि स्म) उसी प्रकार हे प्रभो! आप हमारी सहायता कीजिये।

इस प्रकार स्पष्ट है कि परमात्मा हमारा पिता, बन्धु तथा मित्र है। परमात्मा और आत्मा का सम्बन्ध स्वामी और दास के समान नहीं है।

शिव तथा रुद्र

रुद्र को प्रसन्न करने के लिये निम्नाङ्कित सोलह मन्त्रों से शत रुद्रिय होम किया जाता है, जिसमें तिल, अर्क पत्र तथा गवेधुका की आहुतियाँ दी जाती हैं।

नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः।
बाहुभ्यामुत ते नमः।।

यजु. १६।१

(नमः ते रुद्र मन्यव) हे रुद्र! आपके क्रोध को नमस्कार है, (उतो त इषवे नमः) आपके वाणों के लिये नमस्कार है (उत ते बाहुभ्याम् नमः) तथा आपकी दोनों भुजाओं को मेरा नमस्कार है।

निराकार परमात्मा का कैसा सुन्दर आलंकारिक चित्रण है यह।

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि।।

यजु. १६।२

(गिरिशन्त रुद्र) पर्वत पर निवास करने वाले हे रुद्र! (या ते) आपका जो (शिवा अघोरा अपापकाशिनी) कल्याणमय, मंगलमय, सौम्य, अक्रूर, निष्पाप तथा पापों का नाश करने वाला (तनूः) शरीर अथवा स्वरुप है, (तया शन्तमया तन्वा) अपने उस आनन्दमय तथा आनन्ददायक स्वरूप से (नः अभिचाकशीहि) हमें देखिये, हमारे ऊपर अपनी आनन्ददायक कृपा दृष्टि डालिये।

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंꣳसीः पुरुषं जगत्।।

यजु. १६।३

(गिरिशन्त) पर्वत पर निवास करने वाले अथवा मेघों से वृष्टि के द्वारा समस्त जगत् को सुख देने वाले तथा (गिरित्र गिरि वाचि स्थितः) वाणी में स्थित अर्थात् वेद वाणी में स्थित होकर समस्त प्राणियों की ज्ञान द्वारा रक्षा करने वाले, हे रुद्र! (यां इषुं अस्तवे हस्ते बिभर्षि) चलाने के लिये जो बाण आप अपने हाथ में धारण किये हुये हैं, (तां शिवां कुरु) उसे हमारे लिये कल्याणकारी कीजिये (मा हिंसीः पुरुषं जगत्) तथा जगत् के मनुष्यों, पशुओं एवं अन्य प्राणियों को कष्ट मत दीजिये, उनका नाश मत कीजिये।

'गिरौ स्थितः शं सुखं तनोति विस्तारयति इति गिरिशन्तः'।

शि॒वेन॒ वच॑सा त्वा॒ गिरि॒शाच्छा॑ वदामसि।
यथा॑ नः॒ सर्व॒मिज्जग॑दय॒क्ष्मꣳ सु॒मना॒ अस॑त्।।

यजु. १६।४

(गिरिश) हे पर्वतवासी सुखदायक रुद्र अथवा मेघ वृष्टि द्वारा सुख देने वाले अथवा वेद वाणी में निवास करने वाले सुखदायक हे प्रभो! (शिवेन वचसा त्वा अच्छा वदामसि) हम सुन्दर मधुर वचनों से आपको अच्छा कहते हैं, आपकी स्तुति एवं प्रशंसा करते हैं तथा आपसे निवेदन करते हैं, (यथा नः सर्व इत् जगत् अयक्ष्मं सुमना असत्) कि आपकी कृपा से हमारा समस्त जगत् निरोग एवं सुन्दर मन वाला अर्थात् सुखी समृद्ध एवं शुभ विचारों वाला हो।

अध्य॑वोचदधिव॒क्ता प्र॑थ॒मो दैव्यो॑ भि॒षक्।
अही॑ंश्च॒ सर्वा॑ञ्ज॒म्भय॒न्त्सर्वा॑श्च यातुधा॒न्यो॒ऽध॒राची॒: परा॑ सुव।।

यजु. १६।५

(अधिवक्ता) अधिकार पूर्ण ढंग से कहने वाला ऐसा श्रेष्ठ आदरणीय वक्ता जिसके वचनों का सम्मान किया जाय (प्रथमः दैव्यः भिषक् अधि अवोचत) तथा सर्वश्रेष्ठ दिव्य वैद्य रुद्र हमसे अधिकार पूर्वक कहता है, हमें आदेश देता है कि (सर्वान् अहीन् जम्भयन्) समस्त प्राणघाती सर्पों आदि दुष्ट जीवों का नाश करके, (सर्वाः अधराचीः यातुधान्यः) हमें अधोगति की ओर ले जाने वाले समस्त नीच प्रवृत्ति के दुष्टों तथा दूसरों को यातना देने वाले, पीड़ा देने वाले राक्षसों अथवा रोग उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं आदि को (परासुव) अपने से दूर कर दो।

अ॒सौ यस्ता॒म्रो अ॑रु॒ण उ॒त ब॒भ्रुः सु॑म॒ङ्गल॑ः।
ये चै॑नꣳ रु॒द्रा अ॒भितो॑ दि॒क्षु श्रि॒ताः स॑हस्र॒शोऽवै॑षा॒ꣳ हेड॑ ईमहे।।

यजु. १६।६

(असौ यः ताम्रः) जो वह आदित्य रुपी रुद्र उदय काल में ताम्रवर्ण का तथा (अरुण उत बभ्रुः) अस्त काल में अरुण अर्थात् लाल अथवा रक्तवर्ण का एवं शेष दिवस में बभ्रु अर्थात् स्वर्ण अथवा सूर्य की धूप के

समान रंग धारण करने वला (सुमंगलः) तथा समस्त संसार का श्रेष्ठ प्रकार से कल्याण करने वाला है, (ये च एनं सहस्रशः रुद्राः) उसके जो असंख्य किरणों रुपी रुद्र गण (अभितः दिक्षु श्रिताः) चारों ओर सब दिशाओं में फैले हुये हैं, (एषां हेडः अव ईमहे) उनके क्रोध से रक्षा के लिये हम प्रार्थना करते हैं।

असौ योऽवसर्पति नीलंग्रीवो विलोहितः।
उतैनं गोपा ऽअंदृश्रन्नदृंश्रन्नुदहार्य्यः स दृष्टो मृंडयाति नः।।

यजु. १६।७

(यः असौ नीलग्रीवः विलोहितः अवसर्पति) जो यह नील ग्रीवा तथा (उदय काल) में विशेष लोहित अर्थात् विशेष रक्त वर्ण का आदित्य रूपी रुद्र उदयाचल से अस्ताचल की ओर निरन्तर धीरे धीरे गमन करता हुआ दिखायी देता है, (एनं गोपा अदृश्रन्) इसे गोपाल अर्थात् गौवें चराने वाले देखते हैं (उत) तथा (उदहार्यः अदृश्रन्) (उदकं हरन्ति ता उदहार्यः) जल लाने वाली स्त्रियाँ देखती हैं, (तात्पर्य यह है कि बाहर कार्य करने वाले पुरुष एवं स्त्रियाँ इस सूर्य रूपी रुद्र को देखती हैं।) (सः दृष्टः मृडयाति नः) वह सूर्य देखा जाने पर हमें सुखी करता है।

सूर्य का दर्शन करने से तथा सूर्य के प्रकाश में रहने से हम सुखी एवं निरोग होते हैं।

नमोऽस्तु नीलंग्रीवाय सहस्राक्षायं मीढुषें।
अथो ये अंस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमंः।।

यजु. १६।८

(नमः अस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे) आकाश रुपी नीली ग्रीवा तथा असंख्य किरणों रूपी नेत्रों वाले एवं समस्त संसार में जीवनी शक्ति एवं सुख का सञ्चार करने वाले, वसुधा को वृष्टि द्वारा सींचने वाले आदित्य रूपी रुद्र को नमस्कार है, प्रणाम है (अथो ये अस्य सत्वानः) तथा इसकी जो सत्वरूपी जीवन एवं प्रकाश दायिनी किरणें हैं, (अहं तेभ्यः अकरम् नमः) मैं उन्हें भी प्रणाम करता हूँ।

अथवा,

(नीलग्रीवाय) आकाश के समान नीलवर्ण अर्थात् सुन्दर, शुद्ध एवं शोभायमान कण्ठ वाले, (सहस्राक्षाय) सहस्रों नेत्रों वाले अर्थात् सब कुछ देखने वाले एवं जानने वाले सर्वज्ञ, (मीढुषे) प्राणिमात्र पर सुखों की वर्षा करने वाले (नमः अस्तु) रुद्र को मेरा प्रणाम हो। साथ ही उनकी आज्ञानुसार कार्य करने वाले सत्वगुण एवं बल से युक्त जो उनके वीर एवं श्रेष्ठ गण अथवा सेवक हैं, उन्हें भी मैं प्रणाम करता हूँ।

भगवान् के साथ साथ उनके पवित्र आचरण वाले आज्ञाकारी वीर सेवकों को भी मेरा प्रणाम हो।

प्रमुंञ्च धन्वंनस्त्वमुभयोरात्न्योर्ज्याम् ।
याश्चं ते हस्त इषंवः परा ता भंगवो वप।।

यजु. १६।९

(भगवः) हे ऐश्वर्य सम्पन्न भगवान् रुद्र! (त्वम् धन्वनः उभयोः आत्न्योः ज्यां प्रमुञ्च) आप धनुष के दोनों सिरों से प्रत्यञ्चा को ढीला कर दीजिये (याः च ते हस्त इषवः ताः परावप) तथा आपके हाथ में जो वाण है, उसे दूर रख दीजिये।

यह कैसी सुन्दर आलंकारिक प्रार्थना है कि भगवान् अपने धनुष की डोरी उतार दें तथा वाण अलग रख दें अर्थात् हमें किसी प्रकार का कष्ट अथवा दुःख न दें। इसीलिये प्रथम मन्त्र में भगवान् के क्रोध, उनके वाण तथा उनकी भुजाओं को प्रणाम किया गया था ताकि उनका क्रोध शान्त हो सके और उनकी कृपा हमें प्राप्त हो सके।

विज्यं धनुंः कपर्दिनो विशंल्यो बाणवाँ२ उत।
अनेशन्नस्य या इषंव आभुरंस्य निषङ्गधिः।।

यजु. १६।१०

(कपर्दिनः धनुः विज्यं) जटाधारी रुद्र का धनुष प्रत्यञ्चा रहित हो (उत) तथा (बाणवान् विशल्यः) उनका तूणीर बाणों से शून्य हो। (याः अस्य इषवः अनेशन्) जो उनके वाण हैं, वह हमें दिखायी न पड़ें (अस्य

निषङ्गधिः आभुः) तथा उनके खड्ग रखने का कोश रिक्त हो जाय।

या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः।
तयाऽस्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परि भुज।।

यजु. १६।११

(मीढुष्टम) सुख का सिंचन करने वाले अत्यन्त पराक्रमी रुद्र, (या ते हेतिः) आपके हाथ में जो वज्र के समान अस्त्र है (हस्ते बभूव ते धनुः) तथा आपके हाथ में जो धनुष है, (तया अयक्ष्मया अस्मान् विश्वतः त्वम् परिभुज) उस अपराजित अथवा अमोघ अस्त्र से आप हमारी सब ओर से भली प्रकार रक्षा कीजिये।

परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः।
अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्निधेहि तम्।।

यजु. १६।१२

(ते धन्वनः हेतिः अस्मान् विश्वतः परिवृणक्तु) हे रुद्र! आपके धनुष, वाण तथा अन्य आयुध सब ओर से हमारा परित्याग करें, हमसे दूर रहें (अथो यः तव इषुधिः) तथा आपका जो तूणीर है, (तं अस्मत् आरे निधेहि) उसे हमसे दूर स्थान में रख दीजिये।

अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे।
निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव।।

यजु. १६।१३

(सहस्राक्ष शतेषुधे) सहस्रों नेत्रों तथा सैकड़ों तूणीरों वाले हे रुद्र! (अवतत्य धनुः त्वं) आप अपने धनुष की प्रत्यञ्चा उतार कर (शल्यानां मुखाः निशीर्य) तथा वाणों के मुखों अर्थात् उन पर लगे हुये फालों को निकालकर (नः शिवः सुमनाः भव) हमारे लिये कल्याणकारी तथा सुन्दर कृपा पूर्ण मन वाले होइये।

नमस्त आयुधायानाततायं धृष्णवे।
उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने।।

यजु. १६।१४

(ते अनातताय आयुधाय नमः) हे रुद्र! आपके धनुष पर न चढ़े हुये वाण के लिये नमस्कार है, (ते उभाभ्याम् बाहुभ्यां) आपकी दोनों बाहुओं के लिये (उत) तथा (तव धृष्णवे धन्वने नमः) शत्रु को पराजित करने में समर्थ आपके धनुष को नमस्कार है।

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः।।

ऋग्. १।११४।७, यजु. १६।१५

(रुद्र) हे रुद्र! (मा नः महान्तम् उत मा नः अर्भकं वधीः) हमारे वृद्धजनों को न मारिये तथा हमारे छोटे शिशुओं को न मारिये। (मा नः उक्षन्तम् उत मा नः उक्षितम्) वीर्य सिंचन करने में समर्थ हमारे युवकों को तथा हमारे गर्भस्थ शिशुओं को मत मारिये, (मा नः पितरं उत मातरं) हमारे पिता को तथा हमारी माता को मत मारिये (मा नः प्रियाः तन्वः रीरिषः) तथा हमारे अन्य प्रिय जनों के शरीरों को नष्ट न कीजिये, उन्हें न मारिये।

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे।।

ऋग्. १।११४।८, यजु. १६।१६

(रुद्र) हे रुद्र! (मा नः तोके तनये रीरिषः) हमारे पुत्र तथा पौत्र को अथवा हमारे शिशुओं एवं किशोरों को मत मारिये, (मा नः आयुषि) हमारी आयु को नष्ट न कीजिये। (मा नः गोषु मा नः अश्वेषु) हमारी गायों को मत मारिये, हमारे अश्वों को मत मारिये। (मा नः वीरान् भामिनः वधीः) शत्रुओं पर क्रोध करने वाले हमारे वीरों का हनन मत कीजिये।

(हविष्मन्तः सद् इत् त्वा हवामहे) आपके लिये हवियुक्त होकर, हवि की आहुति देने वाले होकर हम सदा आपका आवाहन करते हैं, उपासना करते हैं तथा आपकी शरण में आते हैं।

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी।
शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे।।

यजु. १६।४९

(रुद्र) हे रुद्र! (विश्वाहा शिवा भेषजी) संसार के दुःखों को सर्वथा दूर करने वाली कल्याणकारी औषधि के समान (या ते शिवा तनूः) जो आपका कल्याणकारी दिव्य स्वरूप है तथा (रुतस्य शिवा भेषजी) शरीर की व्याधियों को दूर करने वाली आपकी कृपा रुपी जो कल्याणकारी औषधि है, (तया नः मृड जीवसे) उससे आप हमें जीवित रहने के लिये सुखी कीजिये अर्थात् हमारे जीवन को सुखमय बनाइये जिससे हम भली प्रकार जीवित रह सकें।

मीढुंष्टम शिवंतम शिवो नंः सुमनां भव। परमे वृक्ष
आयुंधं निधाय कृत्तिं वसांन आ चंर पिनांकं बिभ्रदा गंहि।।

यजु. १६।५१

(मीढुष्टम) अभिलषित फल के दाता (शिवतम) तथा अतिशय कल्याणकारी हे रुद्र! (नः शिवः सुमनाः भव) हमारे लिये कल्याणकारी तथा सुन्दर मन वाले होइये। (परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिं वसानः आचर) श्रेष्ठ ऊँचे वृक्ष पर अपने आयुधों को रखकर तथा चर्म के वस्त्र धारण करके विचरण कीजिये (पिनाकं बिभ्रत आगहि) और अपने धनुष पिनाक को ग्रहण करके हमारे पास आइये।

इसीलिये शिव जी की स्तुति में उन्हें 'पिनाक हस्ताय सनातनाय' कहा गया है-

यक्षस्वरूपाय जटाधराय पिनाकहस्ताय सनातनाय।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय तस्मै यकाराय नमः शिवाय।।

शिवपञ्चाक्षर स्तोत्र

कृष्ण यजुर्वेद में रुद्र को 'पिनाकहस्तः' कहा गया है।

सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः।
तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि।।

यजु. १६।५३

(भगवः) हे ऐश्वर्य सम्पन्न रुद्र! (तव बाह्वोः सहस्राणि सहस्रशः हेतयः) आपकी भुजाओं में बहुत प्रकार के सहस्रों आयुध हैं। (ईशानः) हे संसार के स्वामी! आप (तासां मुखा पराचीना कृधि) उनके मुखों को हमसे दूर कर दीजिये।

भगवान् से अभय की यह कितनी सुन्दर आलंकारिक प्रार्थना है।

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्।
तेषांꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि।।

यजु. १६।५४

(ये असंख्याताः सहस्राणि रुद्राः भूम्यां अधि) जो असंख्य रुद्र पृथिवी के ऊपर स्थित हैं, (तेषां धन्वानि) उनके धनुषों को हम (सहस्र योजने अवतन्मसि) हज़ारों योजन दूर करें।

जो भिन्न भिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न करने वाले कीटाणु आदि हैं, वे सब रुद्र हैं, हमें उन्हें अपने से दूर करने का, नष्ट करने का प्रयास करना चाहिये।

एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि।
अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिंꣳसन्नः शिवोऽतीहि।।

यजु. ३।६१

(रुद्राः) हे रुद्र! (एतत् ते अवसं) यह आपके लिये मार्ग में खाने वाला भोजन है, (तेन मूजवतः परः अतीह) उसे लेकर मूजवान् नाम के पर्वत के उस पार चले जाइये। (अवतत् धन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासः) धनुष की प्रत्यञ्चा उतार कर तथा पिनाक को आच्छादित करके और चर्म

का वस्त्र धारण किये हुये (नः अहिंसन्) आप हमें किसी प्रकार का कष्ट न देते हुये (शिवः अतीहि) कल्याणकारी बनकर जाइये।

अवसं पथ्यदानं (मार्ग का भोजन)

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्।
तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि।।

यजु. १६।६२

(ये अन्नेषु) जो भोज्य पदार्थों में तथा जो (पात्रेषु) जल, दुग्ध आदि पीने वाले पात्रों में स्थित किन्तु सामान्य रूप से नेत्रों को न दिखायी देने वाले रोगाणु रूपी रुद्र (जनान् विविध्यन्ति) मनुष्यों को रोग ग्रस्त कर देते हैं, (तेषां धन्वानि सहस्र योजने अवतन्मसि) उनके धनुषों को हम हज़ारों योजन दूर हटाते हैं अर्थात् उन्हें समूल नष्ट करते हैं।

ऋषिः-अथर्वा, देवता-रुद्र

तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोऽर्वन्तरिक्षम्।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणत् पृथिवीमनु।।

अथर्व. ११।२।१०

(उग्र) हे तेजस्वी प्रभो! (तव चतस्रः प्रदिशः) ये चारों दिशायें तुम्हारी हैं, (तव द्यौः तव पृथिवी) द्युलोक तुम्हारा है, पृथिवी तुम्हारी है। (तव इदं उरु अन्तरिक्षं) यह विस्तृत अन्तरिक्ष तुम्हारा है, (इदं सर्व आत्मन्वत् तव) यह सब आत्मा से युक्त चेतन जगत् तुम्हारा है। (यत् पृथिवीं अनु प्राणत्) जो पृथिवी पर जीवन धारण करता है, श्वास लेता है, वह सब तुम्हारा है।

मा नो हिंसीरधिं नो ब्रूहि परि णो वृङ्ग्धि मा क्रुधः।
मा त्वया समरामहि।।

अथर्व. ११।२।२०

(नः मा हिंसीः) हे रुद्र! हमारी हिंसा मत कीजिये, (नः परिवृङ्ग्धि) हमारी सब ओर से रक्षा कीजिये, (मा क्रुधः) हमारे ऊपर क्रोध मत

कीजिये, (नः अधि ब्रूहि) हमें उपदेश दीजिये जिससे (त्वया मा समरामहि) हम आपका विरोध न करें, आपसे विपरीत मार्ग पर न चलें।

सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः। अथर्व. १३।४।४

(सः अर्यमा, सः वरुणः, सः रुद्रः, सः महादेवः) वह सविता अर्थात् परमात्मा ही अर्यमा है, वही वरुण है, वही रुद्र है तथा वही महादेव है।

रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः।।

अथर्व. १३।४।९

(रश्मिभिः नभ) उसके तेज की रश्मियों से आकाश (आभृतम्) भरा हुआ है, (महेन्द्रः आवृतः एति) वह महान् इन्द्र तेज से आवृत्त होकर चलता है।

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वंन्तर्य ओषंधीर्वीरुधं आविवेशं।
य इमा विश्वा भुवंनानि चाक्लृपे तस्मैं रुद्राय नमो अस्त्वग्नयें।।

अथर्व. ७।९१।१

(यः रुद्रः अग्नौ) जो रुद्र अग्नि में स्थित है, (यः अप्सु अन्तः) जो जलों के अन्दर है, (यः ओषधीः वीरुधः आविवेश) जो ओषधियों एवं वनस्पतियों में प्रविष्ट हुआ है, अर्थात् जो सर्वव्यापक है (यः इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे) तथा जो इन समस्त भुवनों को रचकर उन्हें समर्थ बनाता है, (तस्मै रुद्राय नमः अस्तु अग्नये) उस अग्नि के समान तेजस्वी तथा सर्वाग्रणी रुद्र के लिये नमस्कार है।

दीर्घ जीवन

तच्चक्षुंर्देवहिंतं पुरस्तांच्छुक्रमुच्चंरत् । पश्येंम शरदंः शतं जीवेंम शरदंः शतꣳ शृणुंयाम शरदंः शतं प्र ब्रंवाम शरदंः शतमदींनाः स्याम शरदंः शतं भूयंश्च शरदंः शतात् ।।

यजुर्वेद. ३६।२४

(देवहितं) परब्रह्म द्वारा स्थापित, देवों का हित करने वाला (तत्)

वह (शुक्रं) पवित्र, पाप रहित, प्रकाशमान (चक्षुः) आदित्य रूपी जगत् का चक्षु (पुरस्तात् उच्चरत्) सृष्टि के आदि काल से ही ऊपर उदित हुआ है। अथवा, (तत् चक्षुः) वह परब्रह्म समस्त संसार का चक्षु है, सबका मार्ग दर्शक है, सबको ज्ञान एवं प्रकाश देने वाला है, (देवहितम्) वह विद्वानों का हित करने वाला है (शुक्रम्) शुद्ध स्वरूप है (पुरस्तात् उत् चरत) तथा अनादि काल से ऊपर अपने दिव्य स्वरूप में स्थित है।(त्रिपाद् ऊर्ध्व उदैत् पुरुषः – यजुर्वेद)।

परमात्मा की कृपा से हम (पश्येम शरदः शतं) सौ वर्षों तक देखें, (जीवेम शरदः शतं) सौ वर्षों तक जीवित रहें, (शृणुयाम शरदः शतं) सौ वर्षों तक सुनें, (प्र ब्रवाम शरदः शतं) सौ वर्षों तक ठीक प्रकार बोल सकें, (अदीनाः स्याम शरदः शतं) सौ वर्षों तक दीनता को प्राप्त हुये बिना, स्वाभिमान एवं सम्मान पूर्वक रहें (भूयः च शरदः शतात्) तथा सौ वर्षों से भी अधिक समय तक हृष्ट पुष्ट होकर सुखी जीवन व्यतीत करें।

तनूपा अंग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अंग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्चोदा अंग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म ऽआपृंण।।

यजु. ३।१७

(अग्ने) हे अग्ने! (तनूपा असि) आप शरीर की रक्षा करने वाले हैं, (तन्वं में पाहि) मेरे शरीर की रक्षा कीजिये, (अग्ने आयुर्दा असि आयुः मे देहि) हे अग्ने! आप आयु देने वाले हैं, मुझे आयु दीजिये, (वर्चोदा अग्ने असि वर्चः में देहि) हे अग्ने! आप तेजस्विता देने वाले हैं, मुझे तेजस्विता दीजिये। (अग्ने यत् मे तन्वा ऊनं) हे अग्ने! मेरे शरीर में जो न्यूनता हो, अस्वस्थता आदि हो, (तत् मे आ पृण) मेरी उस कमी को पूर्ण कीजिये।

त्र्यायुषं जमदंग्नेः कुश्यपंस्य त्र्यायुषम्।
यद्देवेषुं त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्।।

यजु. ३।६२

(जमदग्नेः त्र्यायुषं) हमारे चक्षु की दृष्टि शक्ति की तिगुनी आयु हो, (कश्यपस्य त्र्यायुषं) हमारी प्राणशक्ति की तिगुनी आयु हो, (यत् देवेषु त्र्यायुषं) देवों में जो तिगुनी आयु होती है, (तत् नः अस्तु त्र्यायुषं) वह तिगुनी आयु हमें प्राप्त हो।

चक्षुर्वै जमदग्निः ऋषिः। यजु. १३।५६

कश्यपो वै कूर्मः, कूर्मो वै प्राणः। कश्यप= प्राण - शतपथ.८।१।२।३६

यहाँ चक्षु ज्ञानेन्द्रियों के प्रतीक हैं। देवों का अर्थ इन्द्रियाँ भी होता है। इस प्रकार सभी ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों की तिगुनी आयु तथा उनके दिव्य शक्तियों से सम्पन्न होने की प्रार्थना की गयी है।

आ नं एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षांय जीवसें। ज्योक् च सूर्यं दृशे।।

ऋग्. १०।५७।४ (पाठभेद), यजु. ३।५४

(नः मनः) हमारा मन (क्रत्वे) सत्कर्म करने के लिये, (दक्षाय) बल के संवर्धन के लिये तथा (जीवसे) दीर्घ जीवन प्राप्त करने के लिये (पुनः आ एतु) पुनः पुनः प्रवृत्त हो (ज्योक् च) तथा हम दीर्घ काल तक (सूर्यं दृशे) सूर्य के दर्शन करें।

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रां नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्रं पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः।।

ऋग्. १।८९।९, यजु. २५।२२

(यत्र पुत्रासः पितरः भवन्ति) जिस आयु में हमारे पुत्र अपने पुत्रों के पिता बन जाते हैं, उस अवस्था तक (गन्तोः) पहुँचते हुये (नः आयुः मध्या मा रीरिषत्) हमारी आयु बीच में ही समाप्त न हो जाय। हे देवो! आपके समीप रहते हुये हमारी वृद्धावस्था का जीवन कम से कम (शतः शरदः) सौ वर्ष का हो।

स्वामी दयानन्द जी तथा श्री सातवलेकर जी के अनुसार इसका अर्थ है कि हमारी वृद्धावस्था सौ वर्ष के बाद प्रारम्भ हो और हम १२० वर्षों तक जीवित रहें।

आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ।।

यजु. १४।१७

हे प्रभो! (आयुः मे पाहि) मेरी आयु की रक्षा कीजिये, (प्राणं मे पाहि) मेरे प्राणों की रक्षा कीजिये, (अपानं मे पाहि) मेरे अपान की रक्षा कीजिये, (व्यानं मे पाहि) मेरे व्यान की रक्षा कीजिये, (चक्षुः मे पाहि) मेरे चक्षुओं की रक्षा कीजिये, (श्रोत्रं मे पाहि) मेरे कानों की रक्षा कीजिये, (वाचं मे पिन्व) मेरी वाणी को प्रसन्नता पूर्ण तथा मधुर कीजिये, (मनः मे जिन्व) मेरे मन को प्रसन्नता से परि पूर्ण कीजिये, (आत्मानं मे पाहि) मेरे आत्मा की रक्षा कीजिये तथा (ज्योतिः मे यच्छ) मुझे तेज प्रदान कीजिये।

दृते दृꣳह मा ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासं ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासम्।।

यजु. ३६।१९

(दृते) दुष्टों एवं दुःखों का नाश करने वाले हे प्रभो! (दृं ह मा) मुझे दृढ़ कीजिये, शक्तिशाली बनाइये ताकि मैं (ते संदृशि) आपके संदर्शन में अर्थात् ज्ञान चक्षुओं से आपके दर्शन करता हुआ, आपकी स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना करता हुआ, (ज्योक्) चिरकाल तक (जीव्यासम्) जीवित रह सकूँ। (ज्योक् ते संदृशि जीव्यासम्) आदर एवं विनम्र प्रार्थना हेतु यह पुनर्वचन है।

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम्।।

अथर्व. १।३१।४

(नः मात्रे उत पित्रे) हमारी माता तथा हमारे पिता के लिये (स्वस्ति अस्तु) कल्याणकारी तथा सुखकारी स्थिति हो, (गोभ्यः) गौवों के लिये तथा (जगते पुरुषेभ्यः) संसार के समस्त पुरुषों एवं प्राणियों के लिये

कल्याणकारी परिस्थिति हो, (विश्वं सुभूतं सुविदत्रं) समस्त विश्व हमारे लिये उत्तम परिस्थितियाँ उत्पन्न करने वाला, उत्तम धन प्रदान करने वाला तथा रक्षा करने वाला हो (ज्योग् एव सूर्यम् दृशेम) और हम चिरकाल तक सूर्य का दर्शन करें।

यथाहांन्यनुपूर्वं भवन्ति यथं ऋतवं ऋतुभिर्यन्तिं साधु।
यथा न पूर्वमपरो जहांत्ये वा धांतरायूँषि कल्पयैषाम्।।

ऋग्. १०।१८।५

(यथा अहानि अनुपूर्वं भवन्ति) जैसे दिन क्रम से एक दूसरे के बाद होते हैं, (यथा ऋतवः ऋतुभिः साधु यन्ति) जैसे ऋतुयें, ऋतुओं के पश्चात् भली प्रकार से क्रमानुसार व्यतीत होती हैं, (यथा पूर्वम् अपरः न जहाति) जैसे बाद में उत्पन्न होने वाली सन्तान पहले उत्पन्न हुये माता पिता आदि को नहीं छोड़ती है अर्थात् उनसे पहले मृत्यु को प्राप्त नहीं होती (धातरः) हे धारण करने वाले प्रभो! (एव) उसी प्रकार (एषां आयूँषि कल्पय) इन सब लोगों की आयु दीर्घ कीजिये, किसी की अकाल मृत्यु न हो।

न देवानामतिं व्रतं शतात्मा चन जीवति। तथा युजा वि वांवृते।।

ऋग्. १०।३३।९

(देवानां व्रतं अति) देवों के व्रत अर्थात् नियमों आदि का उल्लंघन करने वाला कोई मनुष्य (शतात्मा चन न जीवति) सौ वर्ष तक जीवित नहीं रहता (तथा युजा विवावृते)) तथा पूर्ण आयु से पहले ही अपने संबन्धियों और साथियों से बिछुड़ जाता है।

उन्नति के लिये आशीर्वाद

तुभ्यं वातः पवतां मातरिश्वा तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः।
सूर्यस्ते तन्वे३शं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः।।

अथर्व.८।१।५

(मातरिश्वा वातः तुभ्यं पवतां) अंतरिक्ष में संचरण करने वाला

वायु तेरे लिये पवित्र होकर प्रवाहित हो, (आपः तुभ्यं अमृतानि वर्षन्तां) जल तेरे लिये अमृत की वर्षा करें, (सूर्यः ते तन्वेशं तपति) सूर्य तेरे शरीर के लिये सुखदायक होकर तपे, मृत्यु तेरे ऊपर दया करे। (मा प्र मेष्ठाः) तू किसी प्रकार की हिंसा अथवा मृत्यु को प्राप्त न हो।

मेष्ठाः, मीड् हिंसायाम् लुङ्।

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षंतातिं कृणोमि।
आ हि रोहेममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वंदासि।।

अथर्व. ८।१।६

(पुरुष) हे पुरुष! (ते उद्यानं) तेरी गति उन्नति की ओर हो, उन्नति की ओर अग्रसर होने वाली हो, (न अवयानं) अवनति की ओर नहीं। (ते जीवातुं) तुम्हारे दीर्घ जीवन के लिये तुझे (दक्षताम्) दक्ष तथा बलशाली बनाता हूँ, (इमं अमृतं सुखं रथम्) इस अमृतमय अर्थात् मोक्ष की ओर ले जाने वाले सुखकारक शरीर रुपी रथ पर चढ़ और (अथ जिर्विः) वृद्ध होने पर (विदथं आवदासि) ज्ञान का उपदेश कर।

कठोपनिषद् में कहा गया है-

आत्मानः रथिनं विद्धि शरीरः रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।

कठोपनिषद्. १।३।३

जीवात्मा को रथ का स्वामी और शरीर को रथ समझो तथा बुद्धि को सारथि और मन को ही लगाम समझो, जिससे इन्द्रिय रुपी अश्वों को नियन्त्रण में रखा जाता है।

मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम्।
आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे।।

अथर्व. ८।१।८

(गतानां मा आदीधीथा) चले जाने वालों के लिये विलाप न करो, (ये परावतां नयन्ति) जो कर्तव्य पथ से दूर ले जाते हैं। (आ इहि) यहाँ

आओ, (तमसः ज्योतिः आरोह) अन्धकार से ऊपर उठकर ज्योति पर, प्रकाश पर आरोहण करो, प्रकाश की ओर अग्रसर हो, (ते हस्तौ रभामहे) हम तुम्हारे दोनों हाथों को पकड़कर तुम्हें सहारा देते हैं।

चले जाने वालों के लिये विलाप करने से मनुष्य अपने कर्तव्यों से विमुख हो जाता है, इसीलिये यहाँ यह शिक्षा दी गयी है।

ऋषी बोधप्रतीबोधावस्वप्नो यश्च जागृविः।
तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ दिवा नक्तं च जागृताम्।।

अथर्व. ५।३०।१०

बोध अर्थात् ज्ञान और प्रतिबोध अर्थात् जागृत रहना, ये दो ऋषि हैं, (अस्वपनः यः च जागृविः) एक निद्रा रहित है और दूसरा जागता है। (तौ ते प्राणस्य गोप्तारौ) वे दोनों तुम्हारे प्राणों के रक्षक हैं, (दिवा नक्तं च जागृतां) वे तुम्हारे अन्दर दिन रात जागते रहें।

उन्नति के लिये जहाँ सब प्रकार का ज्ञान आवश्यक है, वहीं जीवन में प्रतिबोध अर्थात् आलस्य रहित होकर सावधान रहना, अपनी बुराइयों तथा संभावित आपत्तियों आदि से अपनी रक्षा करने के लिये सदा जागृत रहना, सतर्क रहना भी आवश्यक है।

बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वानवद्राणश्च रक्षताम्।
गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम्।। अथर्व. ८।१।१३

(बोधः च प्रती बोधः च त्वा रक्षतां) ज्ञान और विज्ञान तथा जागरुकता तेरी रक्षा करें। (अस्वप्नः च अनवद्राणः च त्वा रक्षतां) न सोने वाला तथा आलस्यरहित होकर सदा सतर्क रहने वाला स्वभाव तेरी रक्षा करे। (गोपायन् च जागृविः च त्वा रक्षतां) आत्मरक्षा करना और सदा जागृत रहना तेरी रक्षा करे। कुछ विद्वानों के अनुसार प्रतिबोध का अर्थ है सत्य ज्ञान अथवा आध्यात्मिक ज्ञान।

मा त्वां क्रव्यादभि मंस्तारात् संकंसुकाच्चर। रक्षंतु त्वा द्यौ रक्षंतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षंतां चन्द्रमांश्च। अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः।।

अथर्व. ८।१।१२

(क्रव्याद् त्वा) कच्चा मांस खाने वाले जानवर तथा राक्षस तुम्हारी हिंसा न करें, (संकसुकात् आरात् चर) दुष्टों से अलग रहो, (द्यौः त्वा रक्षतु) द्युलोक तुम्हारी रक्षा करे, (पृथिवी रक्षतु) पृथिवी तुम्हारी रक्षा करे, (सूर्यः च चन्द्रमाः च त्वा रक्षताम्) सूर्य तथा चन्द्रमा तुम्हारी रक्षा करें। (अन्तरिक्षम् रक्षतु देवहेत्याः) दैवी आघात से अन्तरिक्ष तुम्हारी रक्षा करे।

इदाह्नंः पीतिमुत वो मदं धुर्न,
ऋते श्रान्तस्यं सख्यायं देवाः।
ते नूनमस्मे ऋंभवो वसूंनि,
तृतीयें अस्मिन् त्सवंने दधात।।

ऋग्. ४।३३।११

(श्रान्तस्य ऋते देवाः सख्याय न भवन्ति) कठिन परिश्रम के बिना देवता किसी से मित्रता नहीं करते, किसी की सहायता नहीं करते। (ऋभवो) हे ऋभवः! (इदा अह्नः) दिन के इस भाग में (वः) आपको (पीतिं मदं धुः) श्रेष्ठ पेय पदार्थ तथा आनन्द प्रदान किया है। (अस्मिन् तृतीये सवने) इस तृतीय सवन में (अस्मे वसूनि नूनं दधात्) हमें धन अवश्य दीजिये।

जीवन में सफलता एवं धन की प्राप्ति के लिये बुद्धिमत्ता एवं दक्षता से, कठिन परिश्रम तथा देवों की सहायता अत्यन्त आवश्यक है।

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम्। अस्तृतो नामाहमयमंस्मि स आत्मानं नि दंधे द्यावां पृथिवीभ्यां गोपीथायं।। अथर्व. ५।९।७

(सूर्यः मे चक्षुः) सूर्य मेरा चक्षु है, (वातः प्राणो) वायु प्राण है, (आत्मा अन्तरिक्ष) अन्तरिक्ष आत्मा है तथा (पृथिवी शरीरम्) पृथिवी मेरा शरीर है। (अस्तृतः नामः अयं अहं अस्मि) यह मैं अमर नाम वाला हूँ (आत्मा अजर अमर है) कोई भी शक्ति इसका नाश नहीं कर सकती। (सः आत्मानं) वह मैं अपने आत्मा को (द्यावा पृथिवीभ्यां गोपीथाय) द्युलोक तथा पृथिवी लोक अर्थात् तीनो लोकों द्वारा सुरक्षित होने के लिये निधि के रूप में देता हूँ, समर्पित करता हूँ। तीनों लोकों की शक्तियों से बने हुये इस शरीर को, इस जीवन को उसी के साथ संयुक्त करता हूँ।

अस्तृतः= अ+ स्तृणाति वधकर्मा। निघण्टु. २।१९

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।

गीता. २।२३

इस आत्मा को न तो शस्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न जल गीला कर सकता है और न वायु सुखा सकती है।

बृहता मन उप ह्वये मातरिश्वना प्राणापानौ।
सूर्याच्चक्षुरन्तरिक्षाच्छ्रोत्रं पृथिव्याः शरीरम्।
सरस्वत्या वाचमुप ह्वयामहे मनोयुजा ।।

अथर्व. ५।१०।८

(बृहता मन उपह्वये) बृहद् मन का अपने समीप आह्वान करता हूँ। मेरा मन संकुचित न हो बल्कि सब का कल्याण करने वाला तथा उदार हो। (मातरिश्वना प्राणापानौ) वायु से प्राण तथा अपान, (सूर्यात् चक्षुः) सूर्य से चक्षु, (अन्तरिक्षात् श्रोत्रम्) अन्तरिक्ष से कान, (पृथिव्याः शरीरम्) पृथिवी से शरीर तथा (मनोयुजा सरस्वत्या वाचं) मनन युक्त विद्या और ज्ञान से सम्पन्न वाणी को (उपह्वयामहे) अपने समीप बुलाता हूँ, उसका आह्वान करता हूँ।

स्वस्थ शरीर एवं इन्द्रियों तथा विशाल एवं उदार मन के साथ और विद्या तथा ज्ञान से युक्त वाणी ही मनुष्य की उन्नति का आधार है।

प्रियं मा कृणु देवेषुं प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये।।

अथर्व. १९।६२।१

(देवेषु) देवों में, विद्वानों में, ब्राह्मणों में (मा) मुझे (प्रियं कृणु) प्रिय कीजिये, (राजसु) राजाओं तथा क्षत्रियों में (मा) मुझे (प्रियं कृणु) प्रिय कीजिये (उत) और (शूद्रे) शूद्रों में (उत आर्ये) तथा श्रेष्ठ आचरण वाले वैश्यों में मुझे प्रिय कीजिये। (पश्यतः सर्वस्य) सभी देखने वाले अर्थात् सभी प्राणियों में मुझे (प्रियम्) प्रिय कीजिये।

सब का प्रिय बनना, सब की भलायी करना सफलता का मूल मंत्र है।

अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः।
यथा संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै।।

अथर्व. ६।४२।१

(धन्वनः इव ज्याम् अव) धनुष से प्रत्यञ्चा उतारने के समान (ते हृदः मन्युम् अव तनोमि) तेरे हृदय से क्रोध को हटाता हूँ। (यथा संमनसौ भूत्वा सखायौ इव सचावहै) जिससे हम एक मन वाले होकर मित्र के समान परस्पर मिलकर रहें।

स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व।
महिमा तेऽन्येन न सन्नशे।।

यजु. २३।१५

(वाजिन्) हे बलवान्! (तन्वं स्वयं कल्पयस्व) अपने शरीर को स्वयं समर्थ बनाओ, (स्वयं यजस्व) स्वयं यज्ञ करो, श्रेष्ठ कर्म करो, (स्वयं जुषस्व) स्वयं राष्ट्र तथा समाज की प्रेमपूर्वक सेवा करो। (ते महिमा न अन्येन सन्नशे) तुम्हारी महानता दूसरों पर निर्भर रहने से नष्ट न हो जाय।

मनुष्य को स्वयं उन्नति करने का प्रयास करना चाहिये, दूसरों पर निर्भर नहीं रहना चाहिये, श्रेष्ठ कल्याणकारी मार्ग पर अकेला चलने का साहस रखना चाहिये।

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते वने।
विक्रमार्जितराज्यस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता।।

सुभाषित

जंगल में शेर का न तो कोई संस्कार करता है और न राजतिलक। वह तो वन के राज्य का स्वामित्व तथा पशुओं के राजा होने का अधिकार स्वयं अपने पराक्रम से अर्जित करता है।

रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सप्ततुरगाः,
निरालम्बो मार्गश्चरणरहितः सारथिरपि।
रविर्गच्छत्यन्तं प्रतिदिनमपारस्य नभसः,
क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे।।

सुभाषित

सूर्य के रथ में केवल एक ही पहिया है, इसमें सर्प जैसी (कमज़ोर) रश्मियों से जुते हुये सात घोड़े हैं। आकाश में चलने वाले उनके रथ के मार्ग का कोई आधार भी नहीं है तथा सारथि केवल एक पैर वाला है, फिर भी सूर्य प्रतिदिन अपार आकाश को पार करता है। महान लोगों के कार्यों की सिद्धि उनके पराक्रम से होती है, साधनों से नहीं।

कर्म तथा तप

तपंश्चैवास्तां कर्मं चान्तर्महत्यर्णवे।
तपो ह जज्ञे कर्मणस्तत् ते ज्येष्ठमुपासत।।

अथर्व. ११।८।६

(तपः कर्म च एव) तप और कर्म ही (महति अर्णवे आस्तां) महान् संसार सागर में थे। (कर्मणः तपः ह जज्ञे) निश्चय ही तप कर्म से उत्पन्न हुआ (अतः कर्म ज्येष्ठ हुआ) (ते तत् ज्येष्ठं उपासते) अतः वे सब लोग उस ज्येष्ठ की उपासना करते थे।

इस प्रकार बताया गया है कि कर्म ही संसार में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।

इसीलिये तुलसीदास जी ने कहा है-

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा। जो जस करहि सो तस फल चाखा।।

मनुष्य शरीर में देवता

दशं साकमंजायन्त देवा देवेभ्यंः पुरा।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स वा अद्य महद् वंदेत्।।

अथर्व. ११।८।३

(पुरा) पहले (देवेभ्यः दश देवाः साकं अजायन्त) दश देव साथ साथ उत्पन्न हुये, (यः वै तान् प्रत्यक्षं विद्यात्) जो उनको निश्चय से प्रत्यक्ष जानता हो (सः वै अद्यः महत् वदेत्) वही आज महत् ब्रह्म के विषय में निश्चय से बता सकता है।

प्राणपानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षिंतिश्च क्षितिंश्चया।
व्यानोदानौ वाङ् मनस्ते वा आकूंतिमावंहन्।।

अथर्व. ११।८।४

(प्राण, अपान, चक्षुः, श्रोत्रं) प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र, (अक्षितिः च क्षितिः च) न क्षीण होने वाली ज्ञान शक्ति, क्षीण होने वाली कर्म शक्ति, (व्यान उदानौ वाङ् मनः) व्यान, उदान, वाणी तथा मन निश्चय ही (ते वै आकूतिं आवहन्) ये दश देव ही शरीर में संकल्प शक्ति को धारण करते हैं।

संसिचो नाम ते देवा ये संम्भारान्त्समभरंन्।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुंषमाविंशन् ।।

अथर्व. ११।८।१३

(ते देवाः संसिचः नाम) वे देव संसिच अर्थात् सींचने वाले इस नाम के हैं। (ये संभारान् समभरन्) जिन्होंने शरीर में समस्त सामग्री अर्थात् सभी अङ्ग प्रत्यङ्गों रोम, त्वचा, मांस, मज्जा, केश, अस्थियों, स्नायुओं आदि को भरा है। (सर्वं मर्त्यं संसिच्य) समस्त मरणधर्मा शरीरों को पूर्णतया सींचकर, (देवाः पुरुषं आविशन्) वे देव शरीर में ही प्रविष्ट हो गये।

सर्वे देवा उपाशिक्षन् तदजानाद् वधूः सती।
ईशा वशस्य या जाया सास्मिन् वर्णमाभरत्।।

अथर्व. ११।८।१७

(सर्वे देवाः उपाशिक्षन्) सभी देव साथ मिलकर शरीर में रहना चाहते थे, (तत् अजानात् सती वधूः) सती वधू ने उनकी इस इच्छा को जान लिया, (ईशा वशस्य या जाया) वह वधू समस्त जगत् को वश में रखने वाली ईश्वरी शक्ति रूपी ब्रह्म की पत्नी है, (जो इस शरीर को उत्पन्न करके जीवित रखती है तथा भगवान् के सत्य नियमों के अनुसार चलाती है।) (सा अस्मिन् वर्णम् आभरत्) उसी ने सब देवताओं के साथ मिलकर इस शरीर में वर्ण अर्थात् रूप, रंग एवं शोभा आदि को भरा है, जिससे यह रुचिकर लगता है।

यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर्य उत्तरः।
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन्।।

अथर्व. ११।८।१८

(यः त्वष्टुः पिता उत्तरः त्वष्टा) त्वष्टा का पिता जो उच्चतर श्रेष्ठ त्वष्टा अर्थात् परमात्मा है, (यदा व्यतृणत्) उसने जब शरीर में छिद्र कर दिये तब (मर्त्यं गृहं देवाः पुरुषं आविशन्) उन छिद्रों से मरणधर्मा शरीर को गृह बनाकर देवों ने पुरुष शरीर में प्रवेश किया।

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्।।

ऐतरेयोपनिषद्. १।२।४

अग्नि वाक् इन्द्रिय बनकर मुख में प्रविष्ट हो गया, वायु प्राण बनकर नासिका के छिद्रों में प्रविष्ट हो गया, सूर्य नेत्र इन्द्रिय बनकर

आँखों के गोलकों में प्रविष्ट हो गया, दिशाओं के अभिमानी देवता श्रोत्र इन्द्रिय बनकर कानों में प्रविष्ट हो गये, ओषधि और वनस्पतियों के अभिमानी देवता रोयें बनकर त्वचा में प्रविष्ट हो गये, चन्द्रमा मन बनकर हृदय में प्रविष्ट हो गया, मृत्यु देवता अपान वायु बनकर नाभि में प्रविष्ट हो गये, जल का अभिमानी देवता वीर्य बनकर लिङ्ग में प्रविष्ट हो गया।

विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम्।
शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः सामाथो यजुः।।

अथर्व. ११।८।२३

(विद्या च वै अविद्याः च) विद्या और अविद्यायें (यत् च अन्यत् उपदेश्यं) तथा जो अन्य उपदेश करने योग्य ज्ञान है, वह (ऋचः साम अथो यजुः ब्रह्म शरीरं प्राविशत्) ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और ब्रह्मवेद के रूप में शरीर में प्रविष्ट हुये।

या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह।
शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापतिः।।

अथर्व. ११।८।३०

(यः आपः याः च देवताः) जो जल तथा जो देवता हैं और (या विराट् ब्रह्मणा सह) जो ब्रह्म के साथ रहने वाली विविध रूपों में दीप्यमान ईश्वरकी शक्ति है, (जिसे मन्त्र सं. अथर्व. ११।८।१७ में ब्रह्म की जाया अथवा उत्पन्न करने वाली शक्ति कहा गया है।) उन सब के साथ (शरीरं ब्रह्म प्राविशन्) वह ब्रह्म शरीर में प्रविष्ट हुआ और प्रजापति रूपी शरीर का अधिष्ठाता हुआ।

ब्रह्म का जो अंश जीव भाव से शरीर में आता है, वही प्रजापति संज्ञक शरीर का अधिष्ठाता बनता है।

सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये।।

अथर्व. ११।८।३१

(पुरुषस्य चक्षुः सूर्यः) पुरुष की चक्षु सूर्य से तथा (प्राणं वातः वि भेजिरे) वायु को विशेष रूप से विभक्त करके प्राण बनाये गये हैं (अथ अस्य इतरं आत्मानं देवाः) और इस शरीर की जो अन्य इन्द्रियाँ तथा अन्य भाग हैं उन्हें (देवाः अग्नये प्रयच्छन्) देवों ने अग्नि को दे दिया अर्थात् शरीर में स्थित वैश्वानर अग्नि इनका पालन पोषण करता है।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।।

गीता. १५।१४

मैं ही सब प्राणियों के शरीर में स्थित हुआ वैश्वानर अग्नि के रूप में प्राण और अपान से युक्त होकर चारों प्रकार के अन्नों को पचाता हूँ।

तस्माद्वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेतिं मन्यते।
सर्वा ह्यऽस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासंते।।

अथर्व. ११।८।३२

(तस्मात् वै विद्वान्) इसीलिये निश्चित रूप से विद्वान् (इदं पुरुषं ब्रह्म इति मन्यते) इस पुरुष को यह ब्रह्म है, ऐसा मानते हैं (हि सर्वाः देवता अस्मिन् आसते) क्योंकि समस्त देवता इस पुरुष शरीर में उसी प्रकार निवास करते हैं (गावः इव गोष्ठे) जैसे गौवें गोष्ठ अर्थात् गायों के रहने के स्थान में रहती हैं।

अनेक तथाकथित विद्वान्, जो वास्तव में मूर्ख हैं, शरीर को मल मूत्र आदि गंदगी से भरा हुआ अपवित्र पिंजड़ा मानते हैं जब कि वेद में शरीर को कितना पवित्र तथा पुरुष को कितना श्रेष्ठ माना गया है यह दर्शनीय है। अस्तु हम सभी का कर्तव्य है कि निन्दनीय विचारों एवं कर्मों से ऊपर उठकर मनसा, वाचा, कर्मणा भगवान् के द्वारा बताये गये श्रेष्ठ मार्ग पर चलें और अपने शरीर को पवित्र रखकर मोह तथा अन्धकार आदि से ऊपर उठते हुये ब्रह्म का साक्षात्कार करने, मोक्ष प्राप्त करने का प्रयास करें।

सप्तर्षि

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ।।

यजु. ३४।५५

आध्यात्मिक अर्थ-

(सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे) सात ऋषि अर्थात् मन तथा बुद्धि सहित पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ शरीर तथा जीवात्मा में निहित हैं। (सप्त अप्रमादं सदं रक्षन्ति) ये सातों ऋषि प्रमाद रहित होकर शरीर की रक्षा करते हैं, (सप्त आपः स्वपतः लोकं ईयुः) शरीर में व्याप्त रहने वाले ये सात ऋषि मनुष्य अथवा जीवात्मा के सो जाने पर, प्रगाढ़ निद्रा में होने पर हृदयाकाश में स्थित विज्ञानात्मा अर्थात् उसी जीवात्मा में चले जाते हैं, स्थित हो जाते हैं। (तत्र) उस समय (अस्वप्नजौ सत्र सदौ च देवौ) कभी न सोने वाले तथा शरीर की रक्षा के लिये सदैव तत्पर रहने वाले प्राण और अपान (जागृतौ) जागृत रहते हैं।

आपः आप्नुवन्ति व्याप्नुवन्ति।

निरुक्त. १२।४।२५ में कहा गया है-

अत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ प्राज्ञश्चात्मा तैजसश्च-इत्यात्मगतिमाचष्टे।

अर्थात् जीवात्मा तथा प्राण ये दो देव जागते रहते हैं। तात्पर्य यह है कि जीवात्मा का सोना केवल व्यावहारिक दृष्टि से कहा जाता है, यथार्थ में जब जीवात्मा सो जाता है तब मृत्यु हो जाती है।

१. प्राणो वै वसिष्ठ ऋषिः।

यजु. १३।५४, शतपथ. ८।१।१।६

श्रेष्ठ होने से प्राण वसिष्ठ है अथवा इसके द्वारा वसते हैं, जीवित रहते हैं, इसीलिये प्राण वसिष्ठ हैं।

२. मनो वै भरद्वाज ऋषिः।

यजु. १३।५५, शतपथ.८।१।१।९

वाज कहते हैं अन्न को। जिसके पास मन है, वह अन्न प्राप्त करने की चेष्टा करता है। समस्त प्राणी अपने मन के अनुरूप अन्न को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करत हैं।

३. चक्षुर्वै जमदग्निः ऋषिः।

यजु. १३।५६, शतपथ.८।१।२।३

इससे जगत् को देखता है और मनन करता है।

४. श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिः।

यजु. १३।५७, शतपथ.८।१।२।६

श्रोत्र ही विश्वामित्र ऋषि हैं। क्योंकि इसी से सब ओर सुनते हैं और इसके लिये सब ओर मित्र मिल जाते हैं।

५. वाग्वै विश्वकर्म ऋषिः।

यजु. १३।५८, शतपथ.८।१।२।९

वाणी ही इस सबको बनाती है।

६. मुख वाची अत्रि शब्द का निर्वचन है- **अत्तीति अत्रिः**। खाता है, इसलिये अत्रि।

७. अन्न प्राण भृत है क्योंकि अन्न ही प्राणों को धारण करता है।

शतपथ ब्राह्मण में इसका उल्लेख निम्न प्रकार से भी किया गया है।

ये कान ही गोतम तथा भरद्वाज हैं। एक कान गोतम है, दूसरा भरद्वाज। ये नेत्र ही विश्वामित्र तथा जमदग्नि हैं। यह आँख विश्वामित्र है, वह आँखा जमदग्नि है। ये नाक के दो नथुने वसिष्ठ तथा कश्यप हैं। यह एक वसिष्ठ है, दूसरा कश्यप। वाणी अत्रि है, वाणी से ही खाया जाता है। अत्ति का अत्रि हो गया।

शतपथ. १४।५।२।६

मुख में ही वाणी तथा जिह्वा होती है, अतएव मुख के स्थान पर वाणी कहा गया है।

प्राण मुख में रहता है, इसीलिये इसको अयास्य तथा अङ्गिरस कहते हैं क्योंकि यह अंगों का रस है।

शतपथ. १४।४।१।९

प्राण ने अन्न को अपने लिये रख लिया। यह जो अन्न खाया जाता है, वह इसी प्राण द्वारा खाया जाता है, इसी में प्रतिष्ठित होता है। शरीर में रहने वाले अन्य देवता इसी से तृप्त हो जाते हैं।

शतपथ. १४।४।१।१८-१९

मूर्धानंमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोधिं शीर्षतः।।

अथर्व. १०।२।२६

(अथर्वा) स्थिर मन एवं चित्त वाला योगी (अस्य मूर्धानं) अपने सिर (यत् च हृदयं) और जो हृदय है उनको (संसीव्य) आपस में जोड़कर अर्थात् अपने विचारों तथा ज्ञान को भावनाओं और भक्ति के साथ जोड़कर, तर्क वितर्क से ऊपर उठकर (पवमानः शीर्षतः अधि) अपने प्राण को शिर में (मस्तिष्कात् ऊर्ध्व प्रैरयत्) मस्तिष्क के ऊपर प्रेरित करता है।

श्री सातवलेकर जी ने लिखा है कि सिर में, मस्तिष्क के उच्चतम भाग में ब्रह्मलोक है। इस ब्रह्म लोक में प्राण के साथ आत्मा जाता है, जहाँ उसे ब्रह्म के दर्शन होते हैं, ब्रह्म से साक्षात्कार होता है। इसके लिये प्राण को मूलाधार से ऊपर उठकर स्वाधिष्ठान आदि चक्रों से होते हुये सहस्रार चक्र तक ले जाया जाता है।

पृष्ठवंश अथवा मेरुदण्ड में स्थित ये आठ चक्र निम्नाङ्कित हैं-

१. मूलाधार चक्र- गुदा के पास पृष्ठवंश समाप्ति के स्थान में है, यही इस शरीर रूपी नगरी का मूल आधार है। **२.** स्वाधिष्ठान चक्र- उसके ऊपर है, **३.** मणिपूरक चक्र- नाभि स्थान में है, **४.** अनाहत चक्र- हृदय स्थान में है, **५.** विशुद्धि चक्र- कंठ स्थान में है, **६.** ललना चक्र- जिह्वा मूल में है, **७.** आज्ञा चक्र- दोनों भौहों के बीच में है, **८.** सहस्रार चक्र- मस्तिष्क में है।

तद् वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः।
तत् प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः।।

अथर्व. १०।२।२७

(तद् वा अथर्वणः शिरः) निश्चय ही योगी का वह शिर (समुब्जितः देवः कोशः) देवों का सुरक्षित कोश है, सुरक्षित स्थान है। (तत् शिरः प्राणः अन्नं अथो मनः अभि रक्षति) उस शिर की रक्षा प्राण, अन्न तथा मन के द्वारा की जाती है।

प्राणायाम, सात्विक पौष्टिक अन्न तथा वश में किये गये शिव संकल्प वाले मन के द्वारा देवताओं के कोश रूपी इस शिर की रक्षा होती है।

ऊर्ध्वो नु सृष्टा३ स्तिर्यङ् नु सृष्टाः३ सर्वा दिशः पुरुष आ बभूवाँ३। पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते।।

अथर्व. १०।२।२८

(पुरुषः ऊर्ध्वः नु) पुरुष अर्थात् ब्रह्म निश्चय ही ऊपर (सृष्टाः) फैला हुआ है, सब ओर व्याप्त है, (तिर्यक् नु सृष्टाः) निश्चय से वह तिरछा अर्थात् पार्श्वों में तथा नीचे भी फैला हुआ है। (पुरुषः सर्वाः दिशः आबभूव) वह पुरुष सब दिशाओं में व्याप्त है। (यः ब्रह्मणः पुरं वेद) जो ब्रह्म की इस पुरी को जानता है, (यस्याः पुरुष उच्यते) जिसके सम्बन्ध से उसे पुरुष कहा जाता है।

पुरिशेते इति पुरुषः अथवा पुरिवसति इति पुरुषः।

पुरि+वस्। वस्=उस=उष्

पुरि+उष्=पुरुषः। ब्रह्माण्ड रूपी पुरी में वसने के कारण ब्रह्म को पुरुष कहते हैं। इसी प्रकार शरीर रूपी पुरी में वसने के कारण जीवात्मा को भी पुरुष कहते हैं। अन्तर केवल इतना है कि ब्रह्म परम पुरुष, सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापी एवं सर्वान्तर्यामी है और जीवात्मा केवल शरीर में स्थित रहने वाला अल्पज्ञ है।

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः।।

अथर्व. १०।२।२९

(यः वै तां अमृतेन आवृतं पुरम् वेद) जो निश्चय से, भली प्रकार से, अमृत से आवृत्त अर्थात् अमृत से परिपूर्ण ब्रह्म की उस पुरी को जानता है, (तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माः च) उसके लिये ब्रह्म तथा ब्रह्मा आदि सभी देवता, (चक्षुः, प्राणं, प्रजाम् ददुः) चक्षु आदि सभी इन्द्रियाँ, प्राण तथा आयु और श्रेष्ठ सन्तान देते हैं।

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते।।

अथर्व. १०।२।३०

(ब्रह्मणः पुरं यः वेद) जो ब्रह्म की उस पुरी को जानता है, (यस्याः पुरुष उच्यते) जिस पुरी में शयन करने के कारण, निवास करने के कारण आत्मा तथा परमात्मा को पुरुष कहते हैं, (पुरि शेते इति पुरुषः), (तं) उस ज्ञानी को (वै) निश्चय ही (जरसः पुरा चक्षुः न जहाति) वृद्धावस्था के पूर्व चक्षु नहीं छोड़ता, उसके नेत्र वृद्धावस्था तक ठीक प्रकार से देखते रहते हैं (न प्राणः) और न प्राण ही उसे छोड़ता है अर्थात् उसकी अकाल मृत्यु नहीं होती और उसकी इन्द्रियाँ तथा प्राण हृष्ट पुष्ट रहकर अपना कार्य करते रहते हैं।

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषा वृतः।।

अथर्व. १०।२।३१

(अष्टाचक्रा) यह पुरुष शरीर आठ चक्र तथा (नव द्वारा) नौ द्वारों वाली (देवानां पूः अयोध्या) देवों की अयोध्या नगरी है, समस्त देव इसमें निवास करते हैं। (तस्यां हिरण्ययः कोशः ज्योतिषा आवृतः स्वर्गः) उस शरीर रुपी अयोध्या नगरी में ज्योति से आवृत्त अर्थात् तेज से परिपूर्ण एक

स्वर्णिम कोश रूपी स्वर्ग है।

इस शरीर रूपी अयोध्या नगरी में, दो आँखें, दो नासिका, दो कान, मुख, जननेन्द्रिय तथा गुदा, ये छिद्र रूपी नौ द्वार हैं।

तस्मिंन् हिरण्यये कोशे त्र्यऽरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः।।

अथर्व. १०।२।३२

(तस्मिन् हिरण्यये कोशे) उस स्वर्णिम तेजस्वी हृदय रूपी कोश में (त्रि अरे) तीन अरों से युक्त (यत् आत्ममन्वत् यक्ष) जो आत्मा रूपी यक्ष (त्रि प्रतिष्ठिते) तीन प्रकार से स्थित रहता है, (तद् वै ब्रह्मविदः विदुः) उसे ब्रह्मज्ञानी ही निश्चित रूप से जानते हैं।

चक्र की नाभि को परिधि से जोड़ने वाले अवयवों को 'अरे' कहते हैं। मन्त्र में उल्लिखित 'अरे' सत्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण हैं, जिनमें से युक्त होकर आत्मा शरीर में निवास करता है। यह अरे एक समान नहीं हैं प्रत्युत अलग अलग तीन प्रकार के हैं, इसीलिये 'त्रिप्रतिष्ठि' शब्द का प्रयोग हुआ है। कोई भी मनुष्य अपने जीवन काल में इन तीन गुणों से मुक्त नहीं हो सकता क्योंकि आत्मा इनके ही शरीर में रहता है।

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः।।

अथर्व. १०।८।४३

(नवद्वारम्) नौ द्वारों वाले शरीर में स्थित् (पुण्डरीकम्) हृदय कमल (त्रिभिः गुणोभिः) तीन गुणों द्वारा (आवृतम्) ढका हुआ है।

(तस्मिन्) उस हृदय कमल में (यद्) जो (यक्षम्) पूजनीय है, (आत्मन्वत्) जो कि जीवात्म रूप सखा वाला है, (तत्) उसे (वै) निश्चय से (ब्रह्मविदः) ब्रह्मज्ञानी (विदुः) जानते हैं।

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम्।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम्।।

अथर्व. १०।२।३३

(प्रभ्राजमानां) आनन्द अथवा प्रकाश से युक्त, (हरिणीम्) दुःखों का का नाश करने वाली, (यशसा संपरीवृताम्) यश से सब ओर से आवृत्त तथा परीपूर्ण, (हिरण्ययीं) स्वर्ण के समान चमकीली, मनोहारिणी, (अपराजित) अजेय पुरी में (ब्रह्म आविवेश) ब्रह्म प्रविष्ट हुआ है।

भगवान् की शक्ति

आठ मन्त्रों का यह सूक्त ऋग्वेद तथा अथर्व वेद में कुछ पाठान्तर तथा क्रम में अन्तर के साथ आया है।

कुछ लोग इसे देवी सूक्त के रूप में मानते हैं और दुर्गा जी की उपासना में इसका पाठ करते हैं।

अथर्व वेद में इसके ऋषि अथर्वा तथा देवता वाक् है, जबकि ऋग्वेद में ऋषि वागाम्भृणी तथा देवता आत्मा है।

वाक्=वाणी, वेदवाणी का प्रदाता होने के कारण परमात्मा वाक् है। अम्भृण- महद्वाची है। (निघण्टु)।

वाक् के सम्बन्ध से अम्भृणी भी स्त्रीलिङ्ग है। अतः वागाम्भृणी का अर्थ हुआ वेदवाणी का प्रदाता परमात्मा।

मन्त्र में उत्तम पुरुष 'अहं' का प्रयोग होने से स्पष्ट है कि यहाँ परमात्मा का वर्णन है।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।।

अथर्व. ४।३०।१, ऋग्.१०।१२५।१

(अहं रुद्रेभिः, वसुभिः, आदित्यैः उत विश्वदेवैः चरामि) मैं (परमात्म शक्ति) रुद्रों के, वसुओं, आदित्यों तथा विश्वदेवों के साथ चलती हूँ। (अहं मित्रावरुणा उभा बिभर्मि) मैं मित्र और वरुण दोनों को धारण करती हूँ तथा (अहं इन्द्राग्नी उभा अश्विना अहम्) मैं ही इन्द्र, अग्नि और दोनों अश्विनी देवों को धारण करती हूँ।

आठ वसु-

अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्चनक्षत्राणि चैते वसव एतेषु हीदꣳसर्वꣳहितमिति तस्माद् वसव इति। बृहदारण्यक उपनिषद्,३।९।३

अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, द्युलोक, आदित्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्र, ये सब को वसाते हैं, जीवित रखते हैं, इसलिये इन सबको वसु कहा जाता है।

रुद्र- दश प्राण तथा आत्मा को भी रुद्र कहा जाता है क्योंकि जब ये शरीर से निकलते हैं तो प्रेम करने वालों को रुलाते हैं।

आदित्य- संवत्सर के बारह मासों को भी आदित्य कहा जाता है क्योंकि ये मनुष्य की आयु लेते हुये जाते हैं।

मित्र वरुण- दिन और रात तथा सूर्य और चन्द्रमा को भी मित्रावरुणौ कहा जाता है।

अश्विनौ- दिन और रात तथा द्युलोक और पृथिवी को भी अश्विनौ कहा जाता है।

मित्रावरुणौ- सूर्य तथा चन्द्रमा। दिन तथा रात्रि

अश्विनौ- **अहो रात्रौ** (निरु. १२।१।१) सूर्य तथा चन्द्रमा।

अहं सोमंमाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगंम्।
अहं दंधामि द्रविंणं हविष्मंते सुप्राव्ये३ यजंमानाय सुन्वते।।

अथर्व.४।३०।६, ऋग्.१०।१२५।२

(अहं आहनसं सोमं बिभर्मि) मैं रात्रि के अन्धकार रूपी शत्रु का हनन करने वाले सोम अर्थात् चन्द्रमा, (अहं त्वष्टारं उत पूषणं भगम्) मैं त्वष्टा और पूषा तथा भग को धारण करती हूँ। (अहं हविष्मते सुन्वते यजमानाय) मैं अन्न आदि हविष्य पदार्थों की उत्तम हवियों से देवों को तृप्त करने वाले तथा सोमयज्ञ करने वाले यजमान को (सुप्राव्ये द्रविणं दधामि) उत्तम प्रकार से रक्षा करने वाला धन प्रदान करती हूँ।

अहं राष्ट्री संगमंनी वसूंनां चिकितुषीं प्रथमा यज्ञियांनाम्।
तां मां देवा व्यंदधुः पुरुत्रा भूरिंस्थात्रां भूर्यांवेशयंन्तीम्।।

अथर्व.४।३०।२, ऋग्.१०।१२५।३

(अहं राष्ट्री वसूनां संगमनी) मैं समस्त जगत् की तथा समस्त सम्पत्तियों की स्वामिनी हूँ और धन प्रदान करने वाली हूँ। (यज्ञियानां प्रथमा चिकितुषी) मैं ज्ञानवती हूँ तथा यज्ञों में पूजनीय देवों में प्रथम अर्थात् सर्वश्रेष्ठ हूँ। (तां भूरिस्थात्रां भूरि आवेशयन्ती) उस अनेक रूपों में विद्यमान तथा सबका भरण पोषण करने वाली मुझ को ही (देवाः पुरुषा वि अदधुः) देव अनेक प्रकार से प्रतिपादित करते हैं, वर्णित करते हैं।

मया सो अन्नंमत्ति यो विपश्यंति यः प्राणिंति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उपं क्षियन्ति श्रुधि श्रुंत श्रद्धिवं ते वदामि।।

अथर्व.४।३०।४, ऋग्.१०।१२५।४

(सः यः अन्नं अत्ति) वह जो अन्न खाता है, (यः विपश्यति) जो देखता है, (यः प्राणिति) जो प्राण धारण करता है, (यः ईं श्रृणोति) जो इस कथन को श्रवण करता है, (मया) वह सब मेरी सहायता से करता है। (मां अमन्तवः ते उपक्षियन्ति) जो मुझे नहीं मानते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं, नीचे गिर जाते हैं, दुःख एवं कष्ट को प्राप्त होते हैं। (श्रुत श्रुधि) हे प्राज्ञ मित्र! तुम सुनो (ते श्रद्धिवं वदामि) तुम्हें मैं श्रद्धेय ज्ञान को कहती हूँ, उपदेश करती हूँ।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।।

अथर्व.४।३०।३, ऋग्.१०।१२५।५

(अहं) मैं स्वयं ही (देवानाम् उत मानुषाणाम्) देवों तथा मनुष्यों के लिये (जुष्टम्) हितकारी (इदम् वदामि) यह बात कहती हूँ कि (यं कामये) मैं जिसकी कामना करती हूँ, जिसे अच्छा तथा कृपापात्र समझती हूँ, (तम् उग्रं) उसी को तेजस्वी तथा श्रेष्ठ बनाती हूँ, (तं ब्रह्माणं) उसी को ब्रह्मा अर्थात् वेदों का ज्ञाता, (तम् ऋषिं) उसी को ऋषि (तम् सुमेधाम्) तथा उसी को उत्तम मेधा वाला (कृणोमि) बनाती हूँ।

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उं।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश।।

अथर्व.४।३०।५, ऋग्.१०।१२५।६

(ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवै उ रुद्राय धनुः अहं आ तनोमि) वेद तथा ब्रह्म से द्वेष करने वाले हिंसक शत्रु का वध करने के लिये मैं रुद्र के धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाती हूँ, तानती हूँ। (अहं जनाय समदं कृणोमि) मैं मनुष्यों के कल्याण के लिये युद्ध करती हूँ, (अहं द्यावा पृथिवी आ विवेश) मैं द्युलोक तथा पृथिवी में प्रविष्ट हुयी हूँ।

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वो तामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि।।

अथर्व.४।३०।७, ऋग्. १०।१२५।७

(अहं अस्य मूर्धनि पितरं सुवे) मैं इस संसार के पिता अर्थात् द्युलोक को मूर्धा के स्थान में उत्पन्न करती हूँ, (मम योनिः समुद्रे अप्सु अन्तः) मेरी उत्पत्ति का कारण परमात्मा है (ततः विश्वा भुवना अनु वि तिष्ठे) तथा मैं समस्त लोकों को व्याप्त करके स्थित रहती हूँ (उत अमूं द्यां वर्ष्मणा उप स्पृशामि) तथा मैं इस संसार से ऊपर उठकर द्युलोक को स्पर्श करती हूँ, व्याप्त रहती हूँ। समुद्र का अर्थ अन्तरिक्ष भी होता है।

समुद्रवन्त्यस्माद्भूत जातानीति समुद्रः परमात्मा। (सायण भाष्य)

अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यै तावती महिना सं बभूव।।

अथर्व.४।३०।८, ऋग्.१०।१२५।८

(विश्वा भुवनानि आरभमाणा) सब भुवनों का निर्माण करती हुयी, (अहमेव वातः इव प्रवामि) मैं ही वायु के समान प्रवाहित हो रही हूँ, (दिवा परः) द्युलोक (एना पृथिव्यै परः) तथा इस पृथिवी से श्रेष्ठ मैं (एतावती महिना सं बभूव) अपनी इतनी बड़ी महिमा से, अपने महान् सामर्थ्य से प्रकट हुयी हूँ।

देवता

देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा, द्युस्थानो भवतीति वा। यो देवः सा देवता।

निरुक्त. ७।४।१५

दान, दीपन या द्योतन करने से अथवा द्युस्थानीय होने से देव कहा जाता है। दाता, प्रदीपक, द्योतक या द्युस्थानीय पदार्थ को देव कहा जाता है।

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता।।

यजु. १४।२०

अग्नि देवता, वायु देवता, सूर्य देवता, चन्द्रमा देवता, (वसवः देवताः) आठ वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा तथा नक्षत्र, (रुद्रा देवताः) ग्यारह रुद्र अर्थात् रुलाने वाले, दश प्राण तथा जीवात्मा, जो शरीर से निकलने के समय प्रियजनों को रुलाते हैं, (आदित्याः देवताः) त्वष्टा, सविता, भग, सूर्य, पूषा, विष्णु, विश्वानर,

वरुण, केशी (केशिनः), वृषाकपि, यम तथा अज एकपात् अथवा वर्ष के बारह मास, मरुत देवता, विश्वेदेव देवता, बृहस्पति देवता, इन्द्र देवता तथा (वरुणः देवता) वरुण देवता।

यह समझना अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सविता, प्रजापति आदि भगवान् के ही भिन्न भिन्न नाम हैं, ये कोई अलग अलग देवता नहीं हैं।

उपरोक्त ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, इन्द्र तथा प्रजापति, ये तैंतीस देवता हैं।

आठ वसु-

अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा तथा नक्षत्र।

'वसु आच्छादने धातु' से 'वसु'। इन्होंने सम्पूर्ण जगत् का आच्छादन किया हुआ है, इसलिये वसु हैं, अथवा, ये सब को बसाते हैं, इनके आधार पर ही सब जावित रहते हैं, अतः ये वसु हैं।

द्वादश आदित्य-

त्वष्टा, सविता, भगः, सूर्यः, पूषा, विष्णुः, विश्वानरः, वरुणः, केशी (केशिनः) वृषाकपि, यमः, अज, एकपात्।

निघण्टु. ५।६

इस विषय में शतपथ ब्राह्मण. १४।६।९।७-१० में कहा गया है कि याज्ञवल्क्य ने शाकल्य के प्रश्न करने पर बताया कि मुख्य देवता निम्न प्रकार हैं-

१. देव ६ हैं- अग्नि, पृथिवी, वाय. अन्तरिक्ष, आदित्य तथा द्युलोक।

२. देव तीन हैं- यह तीन लोक तीन देव हैं।

३. देव डेढ़ हैं। वायु ही डेढ़ देव हैं क्योंकि इन्हीं से समृद्धि होती है।

४. देव एक है, वह ब्रह्म है, जिसको त्यद् कहते हैं।

इसके स्थान पर बृहदारण्यक उपनिषद् ३।९।९ में निम्नाङ्कित वाक्य आया है-

शाकल्य- कतं एको देव इति- एक देव कौन है।

याज्ञवल्क्य- प्राण इति, स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते।

प्राण, यह ब्रह्म है, उसको त्यद् कहते हैं।

इस प्रकार स्वयं ब्रह्म को ही प्राण कहा गया है। प्राणों का भी प्राण होने से ब्रह्म महाप्राण है।

जिस ब्रह्म तेज से प्रकाशित होकर आत्मा इस सन्देह युक्त गहन शरीर में प्रविष्ट हुआ है, वही विश्व को बनाने वाला और सबक कर्ता है, उसी का यह सब प्रकाश है, वह स्वयं प्रकाश है। (शतपथ. १४।७।२।१७)

ब्रह्म की महिमा नित्य है, वह कर्म से न बढ़ती है, न घटती है। इसलिये विश्रान्त होकर तथा दमन करके सब कामनाओं को त्यागकर श्रद्धापूर्वक आत्मा में आत्मा को देखे।

शतपथ. १४।७।२।२८

वही एक महान्, अज, अजर, अमर, अभय, अमृत आत्मा है। ब्रह्म अभय है। जो इस रहस्य को समझता है, वह भी अभय और ब्रह्म के समान हो जाता है।

शतपथ. शतपथ. १४।७।२।३१

तमिदं निगंतं सहः स एष एकं एकवृदेकं एव।।

अथर्व. १३।४।१२

(तं इदं निगतं सहः) यह बल उस परब्रह्म में प्रविष्ट है, उसमें आश्रित है। (सः एषः एकः एव)वह ब्रह एक है, एक ही है, (एकवृत् एक एव) समस्त विश्व उसमें एक रूप हो जाता है।

एते अंस्मिन् देवा एंकवृतो भवन्ति।।

अथर्व. १३।४।१३

(एते देवाः अस्मिन् एकवृतः भवन्ति) ये सब देव इस सविता में, परब्रह्म में एकरूप हो जाते हैं।

परोक्ष कामा हि देवाः। शतपथ. १४।१।१।१३

देव परोक्ष प्रिय होते हैं।

परोक्ष प्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्ष द्विषः।- शतपथ. १४।६।२।६

देव परोक्ष प्रिय होते हैं, प्रत्यक्ष से उनको द्वेष होता है।

देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यं तस्माद् सत्यमेव वदेत्। शतपथ. १४।१।१।३३

देवता सत्य का व्रत रखते हैं, अतः सत्य ही बोले।

अग्नि के द्वारा ही देवों में जो ब्रह्मा हुआ, वही मनुष्यों में ब्राह्मण। इसलिये लोग देवों में अग्नि से और मनुष्यों में ब्राह्मण से लोक अर्थात् कल्याण की कामना करते हैं।

शतपथ. १४।४।२।२६

सविता वै देवानां प्रसविता। शतपथ. १।१।३।६

सविता देवों का प्रेरक है।

भूमिः, भवन्ति पदार्था अस्यामिति।

उणादि सूत्र. ४।४६

इसमें पदार्थ उत्पन्न होते हैं, अतः यह भूमि कही जाती है। फैली होने के कारण इसे पृथिवी कहते हैं। (पृथ विस्तारे धातु से पृथिवी)

एने हीदꣳ सर्वं कुर्वन्ति देवानां हृदयेस्य इत्यग्निर्वायुरादित्य।

यही तो सब कुछ करते हैं। अग्नि वायु और आदित्य। ये देवों के हृदय हैं।

न मृषः श्रान्तं पदवन्ति देवा। ऋग्. १।१।७९।३

जिसकी रक्षा देव करते हैं, उसका तप व्यर्थ नहीं जाता।

श्रमेण ह स्म वै तद्देवा जयन्ति येदेषां जय्यमास ऋषयश्च।

शतपथ. १।६।२।३

श्रम से ही देवों ने जो कुछ जीतना चाहा जीता और ऋषियों ने भी।

देवों की सुमति

वैश्वानरस्यं सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।
इतो जातो विश्वंमिदं वि चंष्टे वैश्वानरो यंतते सूर्येण।।

यजु. २६।७, (पाठभेद) ऋग्. १।९८।१

(वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम) हम समस्त विश्व का नेतृत्व करने वाले अथवा उसे ले जाने वाले, गति देने वाले, अग्नि की सुमति में रहें, उसकी कृपा दृष्टि में रहें। (हि भुवनानाम् कं अभिश्रीः राजा) क्योंकि निश्चय ही वह वैश्वानर समस्त प्राणियों को सुख देने वाला, कल्याण करने वाला तथा उनके द्वारा सेवा किये जाने योग्य, आश्रयणीय, समस्त भुवनों का स्वामी है, राजा है। (इतः वैश्वानरः जातः) यहाँ प्राप्त होकर, उत्पन्न होकर, यह वैश्वानर अग्नि (इदं विश्वं विचष्टे) इस समस्त विश्व को विशेष रुप से प्रकाशित करता है। (यतते सूर्येण) तथा सूर्य के साथ संयुक्त होता है, सूर्य के साथ मिलकर समस्त जगत् का कल्याण करता है, उसे जीवन, गति, प्रकाश एवं ऊर्जा प्रदान करता है।

इस वैश्वानर अग्नि के तीन रुप हैं-अग्नि, विद्युत तथा आदित्य।

विश्वान् नरान् नयति इति वैश्वानरः। विश्व एनं नरा नयन्तीति वा।

निरुक्त. ७।६।२०।३

समस्त मनुष्यों को ले जाता है, गति देता है अथवा सब मनुष्य इसको प्राप्त करते हैं।

आध्यात्मिक अर्थ में वैश्वानर का अर्थ परमात्मा होता है।

उतेदानीं भगंवन्तः स्यामोत प्रंपित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदिंता मघवन्तसूर्यस्य वयं देवानां॑ सुमतौ स्याम।।

अथर्व. ३।१६।४, यजु. ३४।३७

(मघवन्) हे धनवान् इन्द्र! (वयं इदानीं भगवन्तः स्याम) हम इस समय समस्त ऐश्वर्य एवं ज्ञान से युक्त हों (उत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्) तथा सूर्यास्त के समय एवं मध्याह्न में (उत सूर्यस्य उदिता) और सूर्योदय के समय ऐश्वर्यवान् हों। (वयं देवानां सुमतौ स्याम) हम सब, देवों की सुमति

में, उनकी कल्याणमयी कृपा दृष्टि में रहें।

भगं एव भगंवाँ२ अस्तु देवास्तेनं वयं भगंवन्तः स्याम।
तं त्वां भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भंवेह।।

अथर्व. ३।१६।५, यजु. ३४।३८

(देवः भग एव) भग देव ही (भगवान् अस्तु) सभी ऐश्वर्यों का स्वामी है, (तेन वयं भगवन्तः स्याम) उसकी कृपा से हम भी समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी हों। (भग) हे परमेश्वर! (सर्वः इत्) समस्त संसार (तं त्वा जोहवीति) आपको अपनी सहायता के लिये बुलाता है, आपकी कृपा की इच्छा करता है, (भग) हे ऐश्वर्य के स्वामी! (सः नः पुर एता भव इह) वह आप इस लोक में हमारे मार्ग दर्शक होइये और हमें ऐश्वर्य की ओर ले चलिये।

तस्यं वयꣳ सुंमतौ यज्ञियस्यापिं भद्रे सौमनसे स्यांम।
स सुत्रामा स्ववाँ२ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु।।

ऋग्. १०।१३१।७, यजु. २०।५२

(वयं तस्य यज्ञियस्य सुमतौ स्याम) हम उस पूजनीय इन्द्र की सुमति में रहें और (भद्रे सौमनसे अपि) उनका मन भी हमारे प्रति अच्छी कल्याणकारी सुन्दर भावनाओं वाला हो, (सः सुत्रामा स्ववान् इन्द्रः) उत्तम प्रकार से रक्षा करने वाला वह ऐश्वर्यवान् इन्द्र (अस्मे आदात् चित्) हमसे दूर होता हुआ भी (द्वेषः सनुतः युयोतु) हमसे दूर स्थित और निकट स्थित सभी प्रकार के शत्रुओं को सदा हमसे पृथक् करे।

धाता दंधातु दाशुषे प्राचीं जीवातुमक्षिंताम्।
वयं देवस्यं धीमहि सुमतिं विश्वरांधसः।।

अथर्व. ७।१७।२

(धाता) धारणकर्ता परमेश्वर (दाशुषे) दाता के लिये (प्राचीम्) प्राप्त करने योग्य (अक्षिताम् जीवातुम् दधातु) अक्षय जीवन शक्ति दे। (वयम् विश्वराधसः देवस्य सुमतिम् धीमहि) हम समस्त धनों के स्वामी

परमात्मा की सुमति का ध्यान करते हैं, सुमति के लिये प्रार्थना करते हैं।

'राधः धन नाम'। (निघ. २।१०)

सब के कल्याण की प्रार्थना

नित्यंश्चाकन्यात् स्वपंतिर्दमूंना यस्मां उ देवः संविता जजानं।
भगो वा गोभिंरर्यमेमंनज्यात्सो अंस्मै चारुंश्छदयदुत स्यांत्।।

ऋग्. १०।३१।४

(देवः सविता यस्मै आ जजान) सविता देव ने जिसे उत्पन्न किया है, (स्वपतिः दमूनाः नित्यः चा कन्यात्) धनों का स्वामी और दानशील प्रजापति उसे शुभ फल दे, (भगः वा अर्यमा ईम् गोभिः अनज्यात्) भग और अर्यमा स्तुतियों से प्रसन्न होकर उसके प्रति स्नेह करने वाले तथा लाभ देने वाले हों (उत अस्मै चारुः छदयत् स्यात्) तथा हमारे लिये सब प्रकार से शुभ एवं सुखद तथा अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करने वाले हों।

भग का अर्थ सूर्य तथा अर्यमा का अर्थ वायु भी होता है।

दमूना दानमनाः। गोभिः स्तुति रूपाभिः वाग्भिः स्तुतः।

सायण भाष्य

दान देने वाले के लिये प्रार्थना

धाता विश्वा वार्यां दधातु प्रजाकांमाय दाशुषे दुरोणे।
तस्मैं देवा अमृतं सं व्यंयन्तु विश्वें देवा अदिंतिः सजोषांः।।

अथर्व. ७।१८।३

(धाता) धारण तथा पोषण करने वाला परमेश्वर (प्रजाकामाय) प्रजा अर्थात् सन्तान की कामना करने वाले (दाशुषे) दाता के लिये (दुरोणे) उसके गृह में (विश्वा वार्या दधातु) धन तथा समस्त वरणीय पदार्थों को भरपूर दे। (तस्मै देवाः विश्वेदेवाः सजोषाः अदितिः) उसके लिये समस्त देव, अदिति अर्थात् अविनाशी दैवी शक्ति अथवा अदीना देव माता तथा विद्वान् (अमृतं संव्ययन्तु) प्रेमपूर्वक जीवन में अमृत के समान सुखदायी परिस्थितियाँ उत्पन्न करें तथा मोक्ष प्रदान करें।

ब्रह्मचर्य

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।
तं रात्रीस्तिस्त्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ।।

अथर्ववेद, ११।५।३

(ब्रह्मचारिणं उपनयमानः आचार्यः) उपनयन संस्कार द्वारा ब्रह्मचारी को अपने समीप प्राप्त करता हुआ, अपने निकट रखता हुआ आचार्य (कृणुते गर्भम् अन्तः) उसे मानो गर्भ के समान स्नेह पूर्वक अपने अन्दर धारण करता है तथा (तं तिस्त्रः रात्रीः उदरे बिभर्ति) उसे तीन रात्रि तक मानो अपने उदर में रखता है । (तं जातं द्रष्टुम् अभिसंयन्ति देवाः) तत्पश्चात् उपनयन संस्कार द्वारा आचार्य के गर्भ से उत्पन्न होने वाले उस द्विजन्मा ब्रह्मचारी को देखने के लिये विद्वान् लोग आते हैं ।

जिस प्रकार नवजात शिशु को देखने के लिये इष्ट मित्र तथा सम्बन्धी आते हैं, उसी प्रकार इस नवजात, नव-सुसंस्कृत ब्रह्मचारी को देखने के लिये विद्वान् लोग आते हैं और उसे आशीर्वाद देते हैं । गुरु तथा शिष्य के सम्बन्ध का कैसा अलौकिक एवं आलंकारिक वर्णन है यह! वैदिक धर्म एवं संस्कृति का कैसा सुन्दर रूप है यह !

यह उल्लेखनीय है कि कठोपनिषद् के अनुसार नचिकेता भी अपने गुरु यम के यहाँ तीन रात्रि तक रहा था जिसके पश्चात् ही यम ने उसे ब्रह्म ज्ञान की शिक्षा दी थी ।

यह आलंकारिक वर्णन आचार्य तथा उसके ब्रह्मचारी के बीच पवित्र तथा अत्यन्त निकट संबंध का दिग्दर्शन कराता है। आचार्य अपने शिष्य का इसी प्रकार पालन पोषण करता है, जैसे माँ अपने बच्चे को गर्भ में धारण करती है। इसीलिये शिक्षा पूर्ण हो जाने के पश्चात् ब्रह्मचारी का पुनर्जन्म होना कहा गया है। त्रयी विद्या रूपी वेदों की शिक्षा में लगने वाले समय को यहाँ तीन रात्रि कहा गया है, जिसके पश्चात् वह ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करता है, ज्ञान के प्रकाश से युक्त दिन में जन्म लेता है।

मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने ।

तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात् ।। मनु. २।१६९

वेद के अनुसार द्विज के तीन जन्म होते हैं । प्रथम माता से, द्वितीय उपनयन संस्कार से तथा तृतीय यज्ञ दीक्षा से ।

तत्र यद्ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिह्नितम्।

तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते ।।

मनुस्मृति २।१७०

इनमें यज्ञोपवीत संस्कार से ब्राह्मण का जो जन्म होता है, उसमें उसकी माता सावित्री तथा पिता आचार्य कहा जाता है ।

आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद् वेदपारगः ।

उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साजरामरा ।।

मनुस्मृति २।१४८

वेद का ज्ञाता आचार्य उपनयन संस्कार के समय विधिपूर्वक गायत्री मन्त्र के उपदेश से जो जन्म प्रदान करता है, वह सत्य, अजर और अमर होता है ।

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः।

प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद् वशी।।

अथर्व. ११।५।१६

(आचार्यः ब्रह्मचारी) आचार्य को ब्रह्मचारी होना चाहिये, (प्रजापतिः) प्रजापति अर्थात् प्रजा का पालक राजा भी ब्रह्मचारी होना चाहिये। इस प्रकार का प्रजापालक (विराजति) विशेष शोभा को प्राप्त होता है। (विराट्) ऐसा तेजस्वी (वशी) जितेन्द्रिय राजा, इन्द्र के समान होता है।

(इदि परमैश्वर्ये) इन्द्र का अर्थ है परम ऐश्वर्य सम्पन्न।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।

आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ।।

अथर्व. ११।५।१७

ब्रह्मचर्य तथा तप से राजा राष्ट्र की विशेष रूप से रक्षा करता है। आचार्य स्वयं ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये ब्रह्मचारी शिष्य की इच्छा करता है।

स्पष्ट है कि भोगी, विलासी तथा दुराचारी राजा राष्ट्र की रक्षा नहीं कर सकता। इसी प्रकार कोई दुराचारी व्यक्ति शिक्षक बनकर शिष्य को ज्ञान नहीं दे सकता।

व्यास जी ने योगदर्शन के भाष्य में स्पष्ट रूप से लिखा है कि ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा वाला सिद्ध योगी ही शिष्यो में ज्ञान धारण कराने में समर्थ होता है। इसीलिये आचार्य को ब्रह्मचारी होना आवश्यक बताया गया है।

ब्रह्मचर्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम्।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिंगीर्षति।।

अथर्व. ११।५।१८

(ब्रह्मचर्येण कन्या) ब्रह्मचर्य धारण करने के उपरान्त कन्या (युवानं) युवा पुरुष को (पतिम् विन्दते) पति के रूप में प्राप्त करती है। (अनड्वान् अश्वः) बैल तथा अश्व (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य की शक्ति से ही (घासं जिगीर्षति) घास खाकर भी बलवान् तथा वीर्यवान् होता है।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्व३राभरत्।।

अथर्ववेद, ११।५।१९

ब्रह्मचर्य तथा तप से देवों ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की है। इन्द्र ने ब्रह्मचर्य के द्वारा ही देवों के लिये स्वर्ग, सुख तथा तेज उपलब्ध कराया है।

इन्द्र को भोग विलासी के रूप में चित्रित करने वाले मूर्ख लोग इस मन्त्र को ध्यान पूर्वक पढ़ें।

ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः।।

अथर्व. ११।५।२०

(ओषधयः वनस्पतयः) ओषधियाँ, वनस्पतियाँ (ऋतुभिः सह संवत्सरः) ऋतुओं के साथ वर्ष, (अहोरात्रः) दिन रात, (भूतं च भव्यं च) भूत और भविष्य, (ते जाता ब्रह्मचारिणः) ये सब ब्रह्मचारी ही हैं अर्थात् सत्य नियमों के अनुसार ही संयमित रूप से अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

तात्पर्य यह है कि ब्रह्मचर्य ही प्रकृति का नियम है और प्रकृति के सभी अङ्ग, सभी स्वरूप ब्रह्मचारी होते हैं।

पार्थिवा दिव्याः पशवं आरण्या ग्राम्याश्च ये।
अपक्षाः पक्षिणंश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणंः।।

अथर्व. ११।५।२१

(पार्थिवाः) पृथिवी पर उत्पन्न होने वाले, (आरण्या ग्राम्याश्च) अरण्य में रहने वाले, ग्रामवासी, (अपक्षाः पशवः) बिना पंखों के पशु तथा जो (दिव्याः पक्षिणः) आकाश में विचरण करने वाले पक्षी हैं, वे भी सब (जाता ब्रह्मचारिणः) जन्म से ही ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करने वाले हैं, वे समयानुसार सन्तान उत्पन्न करके उनकी रक्षा करते हैं।

प्रथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति।
तान्त्सर्वान् ब्रह्मं रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृंतम्।।

अथर्व. ११।५।२२

(सर्वे प्राजापत्याः) प्रजापति से उत्पन्न हुये समस्त प्राणी (आत्मसु प्राणान्) अपने शरीरों में प्रथक् प्रथक् प्राणों को (बिभ्रति) धारण करते हैं। (तान् सर्वान्) उन सब प्राणियों की (ब्रह्मचारिणि आभृतं ब्रह्म) ब्रह्मचारी में स्थित ज्ञान (रक्षति) रक्षा करता है।

देवानांमेतत् पंरिषूतमनंभ्यारूढं चरति रोचंमानम्।
तस्मांज्जातं ब्राह्मंणं ब्रह्मं ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेंन साकम्।।

अथर्व. ११।५।२३

(देवानां एतत्) देवों का यह (अन् अभ्यारूढं) सर्वश्रेष्ठ (परिषूतम्

रोचमानम् चरति) निचोड़ अर्थात् सार रूप उत्साहवर्धक तेज ब्रह्मचारी के रूप में चलता है। (तस्मात्) उससे (ब्राह्मणं ज्येष्ठ ब्रह्म) ब्रह्म सम्बन्धी श्रेष्ठ ज्ञान (जातम्) प्रकट होता है तथा (सर्वे देवाश्च) समस्त देव अपनी अमृत अर्थात् कभी नष्ट न होने वाली शक्तियों से उस ब्रह्मचारी के साथ मिलकर कार्य करते हैं, उसे अपनी शक्तियाँ प्रदान करते हैं।

ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजंद् बिभर्ति तस्मिंन् देवा अधि विश्वें समोताः।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदंयं ब्रह्मं मेधाम् ।।

अथर्ववेद, ११।५।२४

(ब्रह्मचारी भ्राजत् ब्रह्म बिभर्ति) ब्रह्मचारी देदीप्यमान् वेद ज्ञान को धारण करता है। (तस्मिन् विश्वे देवाः अधि समोताः) उस वेद में समस्त देव सम्यक् रूप से ओत प्रोत होकर निवास करते हैं। वह ब्रह्मचारी अपने प्राण, अपान, व्यान, वाणी, मन तथा हृदय पर नियन्त्रण करता है और तदनन्तर (ब्रह्म मेधाम् जनयन्) ब्रह्म को प्राप्त कराने वाली पवित्र धारणावती बुद्धि को उत्पन्न करता है, प्राप्त करता है।

प्राण

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशें।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिंष्ठितम्।।

अथर्ववेद, ११।४।१

(प्राणाय नमः) प्राण को नमस्कार है, (यस्य सर्वं इदं वशे) जिसके वश में यह सब कुछ है, (यः सर्वस्य ईश्वरः भूतः) जो समस्त स्थावर जङ्गम जगत् का ईश्वर है (यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्) तथा जिसमें यह सब प्रतिष्ठित है।

प्राण परमात्मा की प्रमुख जीवनी शक्ति है। इसीलिये यहाँ ब्रह्म को ही प्राण के रूप में वर्णित किया गया है।

नमंस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते।
नमंस्ते प्राण तिष्ठंत आसीनायोत ते नमंः ।।

अथर्व, ११।४।७

मन्त्र में प्राणायाम का वर्णन है।

(नमस्ते अस्तु आयते) अन्दर आने वाले (पूरक) प्राण को प्रणाम, (नमस्ते अस्तु परायते) बाहर जाने वाले (रेचक) प्राण को प्रणाम, (नमस्ते प्राण तिष्ठत) शरीर के अन्दर स्थिर किये गये (आभ्यन्तर कुम्भक) प्राण को प्रणाम (उत आसीनाय ते नमः) तथा बाहर रोके हुये प्राण तुम्हें प्रणाम है।

यहाँ 'आयते प्राण' का तात्पर्य पूरक से है, 'परायते प्राण' का तात्पर्य रेचक से है, 'तिष्ठत प्राण' का तात्पर्य अन्तः कुम्भक से है तथा 'आसीन प्राण' का तात्पर्य शरीर से बाहर रोके हुये प्राण अर्थात् बाह्य कुम्भक से है।

प्राणः प्रजा अनुं वस्ते पिता पुत्रमिंव प्रियम्।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्चं प्राणति यच्च न।।

अथर्व. ११।४।१०

(पिता प्रियं पुत्रं इव) जिस प्रकार पिता अपने प्रिय पुत्र के साथ रहता है, उसी प्रकार (प्राणः प्रजाः अनुवस्ते) प्राण सब प्रजाओं अर्थात् प्राणियों तथा पदार्थों के साथ रहता है, (यत् प्राणिति) जो प्राण लेते हैं और (यत् च न) जो प्राण धारण नहीं करते, (प्राणः सर्वस्य ईश्वरः) प्राण सब का ईश्वर है।

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपांसते।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमांहुः प्रजापंतिम्।।

अथर्व. ११।४।१२

(प्राणः विराट्) प्राण विराट् है, विशेष प्रकार से दीप्तिवान् है, (प्राणः देष्ट्री) प्राण सब को प्रेरणा देने वाला है, (प्राणं सर्वे उपासते) प्राण की सब लोग उपासना करते हैं। (प्राणः ह सूर्यः चन्द्रमाः) प्राण ही निश्चय से सूर्य तथा चन्द्रमा है, (प्राणं प्रजापतिं आहुः) प्राण को प्रजापति कहते हैं।

यहाँ प्राण के रूप में परमात्मा का वर्णन है क्योंकि जिस प्रकार प्राण शरीर की रक्षा करता है, उसी प्रकार परमात्मा समस्त जगत् की रक्षा करता है।

प्राणमांहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिंष्ठितम्।।

अथर्व. ११।४।१५

(प्राणं मातरिश्वानं आहुः) प्राण को मातरिश्वा कहते हैं (वातः ह प्राणः उच्यते) तथा वायु को ही प्राण कहते हैं। (प्राणे ह भूतं भव्यं च) प्राण में ही भूत, भविष्य तथा वर्तमान हैं, (सर्वं प्राणे प्रतिष्ठितम्) सब कुछ प्राण में प्रतिष्ठित है।

समष्टि वायु शरीर में प्रवेश करने पर प्राण कहलाती है, अन्तरिक्ष में उसी वायु को मातरिश्वा कहते हैं। समस्त संसार प्राण पर ही आधारित है क्योंकि प्राण न रहने पर प्राणी के लिये भूत, भविष्य तथा वर्तमान सब कुछ नष्ट हो जाता, समाप्त हो जाता।

यदा प्राणो अभ्यवंर्षीद् वर्षेणं पृथिवीं महीम्।
ओषंधयः प्र जांयन्तेऽथो याः काश्चं वीरुधंः।।

अथर्व. ११।४।१७

(यदाः प्राणः महीं पृथिवीं अभ्यवर्षीद्) जब प्राण वर्षा के द्वारा इस महती पृथिवी को सींचता है, तब (ओषधयः वीरुधः याः काः च) ओषधियाँ, वनस्पतियाँ तथा लतायें और झाड़ियाँ आदि जो कुछ हैं (प्रजायन्ते) वे प्रकर्ष रूप से उत्पन्न होती हैं, बढ़ती हैं।

गेहूँ, जौ, चना, धान आदि की फसलों को ओषधियाँ कहते हैं।

एकं पादं नोत्खिंदति सलिलाद्धंस उच्चरंन्।
यदङ्ग स तमुंत्खिदंनैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री नाहंः स्यान्न व्युऽच्छेत् कदाचन।।

अथर्व. ११।४।२१

(सलिलात् हंस उच्चारन्) हृदय रूपी मानसरोवर के जल से ऊपर उठता हुआ प्राण रूपी हँस अपना (एकं पादं न उत्खिदति) (अपने दो पादों में से) एक पाद ऊपर नहीं उठाता है। (अंग) हे प्रिय! (यत् स तं उत्खिदेत्)

यदि वह इस दूसरे पैर को भी उठा ले, उसे हृदय में न छोड़ दे अर्थात् शरीर से पूर्ण रूप से बाहर चला जाय तो व्यक्ति के लिये (न एव अद्य स्यात्) न आज रहेगा, (न श्वः न रात्रीः न अहः स्यात्) न कल होगा, न रात्रि होगी, न दिन होगा और (न कदाचन व्युच्छेत्) न कभी उषा चमकेगी अर्थात् उसके लिये न कभी रात्रि का अन्धकार होगा और न दिन का प्रकाश होगा।

श्वास के शरीर के अन्दर जाते समय 'स' की ध्वनि होती है और उच्छ्वास अर्थात् बाहर जाते समय 'हं' की ध्वनि होती है। इन्हीं 'हं' तथा 'स' को मिलाकर श्वास-उच्छ्वास रूपी प्राण को 'हंस' कहा जाता है।

इन्हीं 'स' तथा 'ह' में 'ओम्' मिलाकर 'सोऽहम्' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है जीवात्मा। शरीर में आत्मा तथा प्राण के संम्बन्ध पर ही आधारित है, ब्रह्मा का वाहन हंस तथा उनके कमलासन की कल्पना।

ब्रह्म	परमात्मा
पुत्र- ब्रह्मा, ब्रह्मदेव-	जीवात्मा, आत्मा
वाहन- हंस	वाहन-प्राण
आसन- कमल	आसन-हृदय कमल
हंस का निवास स्थान- मानसरोवर	प्राण का निवास स्थान- हृदय रूपी मानसरोवर
सृष्टि के नियन्ता-ब्रह्माजी	शरीर का नियन्ता जीवात्मा

इसी प्रकार का रूपक राम तथा हनुमान का भी है।

जिस प्रकार शरीर में वायु का पुत्र प्राण, जीवात्मा की सेवा करता है, उसी प्रकार संसार में वायु पुत्र हनुमान, राम रूपी परमात्मा की सेवा करते हैं। जिस प्रकार शरीर की समस्त शक्ति वायु पुत्र प्राण में रहती है, उसी प्रकार संसार में सबसे अधिक शक्ति वायु पुत्र हनुमान में रहती है।

यो अस्य विश्वजंन्मन ईशे विश्वंस्य चेष्टंतः।
अन्येषु क्षिप्रधंन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते।।

अथर्व. ११।४।२३

(यः अस्य विश्व जन्मनः) जो नाना प्रकार से जन्म लेने वाले तथा

(चेष्टतः) चेष्टा करने वाले (अस्य विश्वस्य) इस विश्व का (ईशे) ईश्वर है, स्वामी है तथा (अन्येषु क्षिप्र धन्वने) अन्य पदार्थों की अपेक्षा शीघ्र गति वाला है, (तस्मै प्राण नमः अस्तु) उस प्राण के लिये प्रणाम हो, नमन हो।

यो अस्य सर्वजंन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टंतः।
अतंन्द्रो ब्रह्मंणा धीरंः प्राणो माऽनुं तिष्ठत।।

अथर्व. ११।४।२४

(यः अस्य सर्वजन्मनः चेष्टतः सर्वस्य ईशे) जो प्राण धारण करने वाले तथा चेष्टा करने वाले सब प्राणियों का ईश्वर है, स्वामी है, वह (अतन्द्रः ब्रह्मणा धीरः) आलस्य रहित, धैर्यवान् आत्मशक्ति तथा ज्ञान से युक्त प्राण (मा अनुतिष्ठतु) मेरे पास रहे।

ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् निपंद्यते।
न सुप्तमंस्य सुप्तेष्वनुं शुश्राव कश्चन।।

अथर्व. ११।४।२५

(सुप्तेषु) सोते हुये प्राणियों में भी यह प्राण (ऊर्ध्वः) खड़ा रहकर (जागार) जागता रहता है। (ननु तिर्यङ् निपद्यते) कभी तिरछा होकर लेटता नहीं है, सोता नहीं है, (सुप्तेषु अस्य) सोते हुये मनुष्य के भी प्राण को (कश्चन सुप्तं न अनुशुश्राव) कभी किसी ने सोता हुआ नहीं सुना।

इहैव स्तं प्राणापानौ मापं गातमितो युवम्।
शरीरमस्याङ्गानि जरसें वहतं पुनंः।।

अथर्व. ३।११।६

(प्राणापानौ) हे प्राण और अपान! (युवम्) तुम दोनों (इह एव) इस शरीर में ही (स्तम्) रहो, (इतः मा अप गातम्) इस शरीर से दूर न जाओ तथा (अस्य शरीरं अङ्गानि पुनः जरसे वहतम्) इस शरीर और इसके अंगों को वृद्धावस्था तक के लिये फिर से ले चलो।

सोऽयास्य अङ्गिरसोऽङ्गानां हि रसः।

शतपथ.१४।४।१।९

(अयास्य= प्राण क्योंकि यह मुख मे रहता है।) वह प्राण आंगिरस है क्योंकि वह अंगों का रस है।

प्राणा वै समिधः। शतपथ. १।५।४।१

प्राण ही समिधा है। यह पुरुष प्राणों द्वारा ही प्रज्वलित किया जाता है। प्राण से पुरुष का शरीर गरम रहता है।

प्राणा वै समिधः प्राणा हीदं सर्वं समिन्धते यदिदं किं च।

ऐतरेय. द्वितीय पंचिका. १।४

समिधा प्राण हैं क्योंकि जगत् में जो भी प्राणी हैं, वह सभी प्राण से ही प्रकाशित होते हैं।

प्रजयति इति प्राणः।

ऐतरेय. २५. ६ पंचम पंचिका.५।६

आदित्य सब को प्रेरणा देते हैं, सभी प्राणियों को चेष्टा प्रदान करते हैं, इसलिये आदित्य को प्राण कहा जाता है।

पृथिवी

सर्पराज्ञी ऋषिः।

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः।
पितरं च प्रयन्त्स्वः॥

अथर्व. २०।४८।४, ऋग्. १०।१८९।१

साम. पूर्वा. ६।५।४, क्रं.सं. ६३०, साम. क्र.सं. १३७६ यजु. ३।६

(आयं गौः मातरम्) यह पृथिवी माता (प्रश्निः अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष में (आक्रमीत् आक्रमणं कुर्वन् सन्) घूमती हुयी (पितरं स्वः) समस्त प्राणियों की पिता के समान रक्षा करने वाले प्रकाशमान सूर्य के (पुरः) सामने (असदत्) स्थित होकर (प्रयन्त्सन् परितो याति) उसके चांरों ओर घूमती है।

पृश्निः अन्तरिक्षम्। निरुक्त. २।१४

स्वः आदित्यो भवति। निरुक्त. २।१४

गौः पृथिवी नामसु पठितम्। निघण्टु. १।१

श्री सायणाचार्य ने इस मन्त्र का अर्थ करते हुये लिखा है कि गमनशील सूर्य पृथिवी के चारों ओर घूमता है, जो सर्वथा असत्य है।

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी।
यच्छा नः शर्म सप्रथाः।।

ऋग्. १।२२।१५ (पाठभेद), यजु. ३५।२१,३६।१३

(पृथिवी) हे पृथिवी! (नः स्योना अनृक्षरा) हमारे लिये सुख देने वाली तथा निष्कंटक एवं (निवेशनी भव) निवास के लिये उत्तम स्थान देने वाली होइये (नः सप्रथाः शर्म यच्छ) तथा हमें विस्तृत सुख एवं सुखदायी निवास स्थान प्रदान कीजिये।

अथर्व वेद के बारहवें काण्ड के प्रथम सूक्त को पृथिवी सूक्त कहा जाता है। इसके बारहवें मन्त्र में पृथिवी को माता कहा गया है 'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः' (अथर्व. १२।१।१२)। भूमि मेरी माता है और मैं मातृभूमि का पुत्र हूँ।

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म,
यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं,
लोकं पृथिवी नः कृणोतु।।

अथर्व. १२।१।१

(बृहत् सत्यम्) महान् सत्य, अत्यन्त सत्यनिष्ठा, (उग्रम् ऋतम्) भगवान् के अटल सत्य नियमों का ज्ञान तथा उनका कठोरता से पालन, (तपः) तप, (दीक्षा) ज्ञान तथा कर्म करने में दक्षता, (ब्रह्म) वैदिक ज्ञान तथा यज्ञ (पृथिवीम् धारयन्ति) पृथिवी को, मातृभूमि को धारण करते हैं, उसकी रक्षा करते हैं, उन्नति करते हैं। (भूतस्य भव्यस्य) हमारे भूत, भविष्य तथा वर्तमान का निर्माण करने वाली, (पत्नी) सदैव हमारा पालन पोषण करने वाली (सा पृथिवी) वह पृथिवी (नः) हमारे लिये (उरुम् लोकम् कृणोतु) विस्तृत कार्य क्षेत्र तथा सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिये

विस्तृत स्थान प्रदान करे।

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे,
यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा,
भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु।।

अथर्व. १२।१।५

(यस्याम् पूर्व जनाः विचक्रिरे) जिस भूमि में पूर्व समय के लोग, हमारे पूर्वज पराक्रम करते थे, अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते थे, (यस्यां देवाः असुरान् अभ्यवर्तयन्) जिसमें विद्वान् तथा दिव्य गुणों वाले वीर असुरों पर विजय प्राप्त करते थे, जो (गवाँ अश्वानां वयसः विष्ठाः) गौओं, अश्वों तथा पशु पक्षियों को विशेष सुख देने वाला स्थान है, (सा नः पृथिवी) वह पृथिवी हमें (भगम्, वर्चः दधातु) ऐश्वर्य तथा तेज, वीर्य एवं शौर्य प्रदान करे।

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम्।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा।।

अथर्व. १२।१।१७

(विश्वस्वम् ओषधीनाम्) समस्त ओषधियों, वनस्पतियों, वृक्षों तथा लता आदि की (मातरं ध्रुवां पृथिवीम्) माँ, विस्तीर्ण, स्थिर पृथिवी (धर्मणा धृताम्) तथा सत्य, ज्ञान, शूरता आदि धर्मों से पालित पोषित (शिवाम् स्योनाम्) इस कल्याणकारी, सुख देने वाली (भूमिम्) मातृभूमि की (विश्वहा अनुचरेम) हम सदा सब प्रकार से सेवा करें।

यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः।
यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन।।

अथर्व. १२।१।२३

(पृथिवि यस्ते गन्धः संबभूव) हे पृथिवी! तुम्हारे अन्दर से जो सुगन्धि उत्पन्न होती है, (यं ओषधयः बिभ्रति) जिस गन्ध को ओषधियाँ अर्थात् अन्न आदि की फसलें धारण करती हैं, (यं आपः बिभ्रति) जिसे जल धारण करते हैं, (यं गन्धर्वा अप्सरसः च) जिसका सूर्य तथा चन्द्रमा की किरणें और गन्धर्व तथा अप्सरायें (भेजिरे) सेवन करती हैं, (तेन मा सुरभिं कृणु) उस गन्ध से मुझे सुगन्धित कीजिये। (नः कश्चन मा द्विक्षत) हम लोगों से कोई द्वेष न करे और हम सब आपस में मित्रता से रहें।

यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्यायां विवाहे।अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेनं मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन।।

अथर्व. १२।१।२४

(पृथिवि) हे पृथिवी! (यः ते गन्धं पुष्करं) जो तुम्हारी गन्ध कमल पुष्प तथा अन्तरिक्ष में (आविवेश) प्रविष्ट हुयी है, (यं अग्रे) जिस श्रेष्ठ गन्ध को, (अमर्त्यः) वायु आदि देव (सूर्यायाः विवाहे) सूर्य पुत्री अर्थात् सूर्य की किरण के सोम अर्थात् चन्द्रमा के साथ विवाह के समय, मिलन के समय अर्थात् शुभ अवसरों पर (संजभ्रुः) धारण करते हैं, (तेन मां सुरभिं कृणु) उस सुगन्धि से मुझे सुगन्धित कीजिये। (नः कश्चन मा द्विक्षत) हम लोगों से कोई द्वेष न करे, हम सब आपस में मित्रता से रहें।

पुष्करं अन्तरिक्षं। निघण्टु. १।३

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अंकरं नमः।।

अथर्व. १२।१।२६

(शिला भूमिः अश्मा पांसुः) शिलाओं, पर्वतों, पत्थरों तथा धूलि आदि से युक्त जो भूमि है, (सा भूमिः) वह भूमि हम लोगों द्वारा (संधृता) तप, ज्ञान, वीरता आदि सम्यक् साधनों से (धृता) भली प्रकार धारण की गयी है, सुरक्षित की गयी है। (हिरण्यवक्षसे) अपने वक्ष में, अपने अन्दर

स्वर्ण आदि बहुमूल्य धातुओं को धारण करने वाली (तस्यै पृथिव्यै) उस अपनी मातृभूमि के लिये, (नमः अकरं) हम नमस्कार करते हैं।

यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम्।
उत्तानास्त्वां प्रतीचीं यत् पृष्टीभिरधिशेमहे।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि।।

अथर्व. १२।१।३४

(भूमे) हे मातृभूमि! (यत् शयानः) जब सोते हुये हम (दक्षिणं सव्यं पार्श्वं अभिपर्यावर्ते) दाहिने और बायीं ओर करवट लें (यत् त्वा) जब तुम पर (प्रतीचीं) पश्चिम की ओर पैर करके (उत्तानाः पृष्टीभिः) तथा ऊपर की ओर मुंह और नीचे की ओर पीठ रखकर हम (अधिशेमहे) सोयें, तब उस अवस्था में (सर्वस्य प्रतिशीवरि) सबको सहारा देकर सुलाने वाली हे मातृभूमि! (नः मा हिंसीः) हमें किसी प्रकार का कष्ट न दे।

सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्रं एतु पुरोगवः।।

अथर्व. १२।१।४०

(सा नो भूमिः) वह मातृभूमि हमें (धनं) वह धन (आदिशतु) दे, जिसकी (यत् कामयामहे) हम कामना करते हैं। (भगः) समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री अर्थात् सौभाग्य (अनुप्रयुक्तान्) हमारी सहायता करे और (इन्द्रः एतु पुरोगवः) इन्द्र हमारे आगे चलने वाला हो, हमारा मार्ग प्रशस्त करने वाला हो।

मातृभूमि की रक्षा के लिये युद्ध के समय धन सम्पन्न लोगों को युद्ध करने वाले वीरों की पीछे से भोजन तथा अन्य आवश्यक सामग्री द्वारा सहायता करनी चाहिये।

भग- **ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा।।**

समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री अर्थात् धन सम्पत्ति आदि, ज्ञान तथा वैराग्य, ये छः भग होते हैं।

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैऽलबाः।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः।
सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु।।

अथर्व. १२।१।४१

(यस्यां भूम्यां मर्त्यः व्यैलबाः) जिस भूमि में विविध प्रकार की क्रीड़ायें करने वाले मनुष्य (गायन्ति, नृत्यन्ति) गाते हैं, नाचते हैं, (यस्याम् युध्यन्ते) जिसमें वीर लोग युद्ध करते हैं, युद्ध के लिये ललकारते हैं तथा (यस्यां आक्रन्दः) जिसमें घोड़ों के हिन हिनाने का शब्द होता है (दुन्दुभिः च वदति) और युद्ध का नगाड़ा बजता है, (सा नो भूमिः) वह हमारी मातृभूमि (नः सपत्नान्) हमारे शत्रुओं को (प्रणताम्) दूर भगा दे और (मा असपत्नं कृणोतु) हमें शत्रु रहित करे।

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्यां विकुर्वते।
प्रजापतिः पृथिवी विश्वगर्भामाशांमाशां रण्यां नः कृणोतु।।

अथर्व. १२।१।४३

(यस्याः देवकृताः पुरा) जिसके नगर देवों ने बसाये हैं, (यस्याः क्षेत्रे विकुर्वते) जिसके विभिन्न क्षेत्रों में लोग अपना अपना काम करते हैं, (प्रजापतिः विश्वगर्भा पृथिवीं) प्रजापति समस्त प्राणियों एवं पदार्थों को उत्पन्न करने वाली उस हमारी मातृभूमि की (आशां आशां रण्यां) प्रत्येक दिशाओं को रमणीय (कृणोतु) बनायें।

प्रत्येक देश में अनेक नगरों का सम्बन्ध उनके देवताओं अथवा पूजनीय पूर्वजों से होता है, जैसे हमारे देश में काशी, अयोध्या, मथुरा, काँची, द्वारिका, पुरी आदि। यह नगर हमारे लिये गौरव का विषय होते हैं किन्तु दुर्भाग्य से हमारे देश में अनेक महत्वपूर्ण नगर तथा स्थान विदेशी अत्याचारी आक्रान्ताओं के नाम से संबन्धित हैं, जेसै फैज़ाबाद, इलाहाबाद, फर्रुख़ाबाद आदि। अभी कुछ समय पहले तक दिल्ली की एक महत्वपूर्ण सड़क का नाम औरंगज़ेब रोड था। कितनी लज्जा की बात है यह हमारे लिये।

जनं बिभ्रंती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविंणस्य मे दुहां ध्रुवेवं धेनुरनंपस्फुरन्ती।।

अथर्व. १२।१।४५

(बहुधा विवाचसम्) बहुत प्रकार की अनेक भाषायें बोलने वाले, (नाना धर्माणां) विभिन्न प्रकार के धर्मों को मानने वाले अथवा विभिन्न प्रकार के कार्यों को करने वाले (जनं) जन समुदाय का, (यथा ओकसम् बिभ्रती) एक ही घर में रहने वालों के समान धारण करने वाली पृथिवी (अनपस्फुरन्ती) बिना उछल कूद के (ध्रुवा) स्थिर खड़ी हुयी (धेनुः इव) गाय के समान (द्रविणस्य सहस्रं धाराः मे दुहाम्) धन की हज़ारों धारायें हमारे लिये उपलब्ध करायें।

यद् वदांमि मधुंमत् तद् वंदामि यदीक्षे तद् वंनन्ति मा।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हंन्मि दोधंतः।।

अथर्व. १२।१।५८

(यत् वदामि) मैं अपने देश के सम्बन्ध मे जो बोलता हूँ, (तत् वदामि मधुमत्) वह मधुर बोलता हूँ, राष्ट्र के लिये हितकारी तथा सम्मानपूर्ण बात बोलता हूँ। (यत् ईक्षे) मैं जो देखूँ, (तत् मा वनन्ति) उससे मुझे सुख तथा सन्तोष प्राप्त हो, (त्विषीमान् जूतिमान् अस्मि) मैं तेजस्वी, वेगवान् तथा शक्तिशाली हूँ और (अन्यान् दोधतः अवहन्मि) हमारी मातृभूमि का दोहन करने वाले, शोषण करने वाले विदेशियों अथवा देश द्रोहियों का नाश करता हूँ।

हम लोगों को तेजस्वी, बलशाली तथा बुद्धिमान् बनकर देश द्रोहियों का नाश करना चाहिये।

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूंताः।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम।।

अथर्व. १२।१।६२

(अस्मभ्यं ते उपस्थाः) हमारे लिये समीप बैठने के तुम्हारे स्थान (अनमीवाः अयक्ष्माः) विभिन्न प्रकार के रोगों तथा यक्ष्मा से रहिते हों।

(पृथिवि ते प्रसूताः) हे मातृभूमि! तुम्हारे द्वारा उत्पन्न किये गये (नः आयुः दीर्घं भवतु) हम लोगों की आयु दीर्घ हो, (वयं प्रतिबुध्यमानाः) ज्ञान विज्ञान से युक्त होकर तथा जागृत रहकर (तुभ्यं बलिहृतः स्याम) हम लोग तुम्हारे लिये सदा अपना सब कुछ बलिदान करने वाले हों।

जल

शं नो देवीरभिष्टंय आपो भवन्तु पीतयें ।
शं योरभि स्रवन्तु नः ।।

यजु. ३६।१२, ऋग्. १०।९।४
अथर्व. १।६।१, साम. पूर्वा. १।३।१३, क्र.सं. ३३

(देवी आपः) दिव्य गुणों से युक्त जल (पीतये नः अभीष्टये) पीने के लिये तथा हमारे अभीष्ट कार्यों की सिद्धि के लिये (शं भवन्तु) सुखकारी हों, शान्तिदायक हों (शं योः अभिस्रवन्तु नः) तथा रोग एवं भय आदि का शमन करके हमारे ऊपर चारों ओर से सुख की वर्षा करें।

आपो हि ष्ठा मंयोभुवस्ता नं ऊर्जे दंधातन।
महे रणांय चक्षंसे।

यजु. ३६।१४, ११।५०, ऋग्. १०।९।१
साम. उत्त. क्र.सं. १८३७, अथर्व. १।५।१

(आपः) हे जल! (हि मयोभुवः स्थ) तुम निश्चय ही सुखकारी हो, (ताः नः ऊर्जे) वह आप हमें अन्न तथा शक्ति (महे रणाय चक्षसे) और तीव्र तथा रमणीय नेत्र ज्योति प्रदान कीजिये।

जल चिकित्सा से नेत्र ज्योति तीव्र तथा सुखदायी होती है।

यो वः शिवतंमो रसस्तस्यं भाजयतेह नंः।
उशतीरिंव मातरंः।।

यजु. ३६।१५, ११।५१, ऋग्. १०।९।२
साम. उत्त. क्र.सं. १८३८, अथर्व. १।५।२

हे जल! (उशतीः मातरः इव) जिस प्रकार बच्चे को दूध पिलाने की

इच्छा करती हुयी मातायें अपने बच्चे को दूध पिलाती हैं, उसी प्रकार (यः वः शिवतमः रसः) आपका जो कल्याणकारी रस है, (तस्य इह नः भाजयन्ते) उसका आप यहाँ हमें सेवन कराइये।

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वंथ।
आपो जनयंथा च नः।।

यजु. ३६।१६,११।५२, ऋग्. १०।९।३
साम. उत्त. क्र.सं. १८३९, अथर्व. १।५।३

(आपः) हे जल! (वः यस्य क्षयाय जिन्वथ) तुम जिस रोग के विनाश के लिये हमारी सहायता करते हो, जिस रोग को दूर करके हमें प्रसन्न करते हो, (तस्मै अरं गमाम) उस कार्य के लिये हम तुम्हें पर्याप्त मात्रा में प्राप्त करें। (नः च आ जनयथ) हमें प्रजनन शक्ति प्रदान करो तथा वंश वृद्धि करने में हमारी सहायता करो।

ईशांना वार्याणां क्षयंन्तीश्चर्षणीनाम्।
अपो यांचामि भेषजम्।।

अथर्व. १।५।४, ऋग्. १०।९।५

(अपः वार्याणां ईशाना) जल अभिलषित वस्तुओं के स्वामी हैं, वे रोग निवारण तथा मनुष्य को जीवित तथा स्वस्थ रखने के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं, (चर्षणीनां क्षयन्ती) वे प्राणियों को वसाने वाले हैं, उनके जीवन का आधार हैं। (भेषजम् याचामि) याचना करता हूँ कि जल हमारे लिये ओषधियों के रूप में कार्य करें, हमारे रोगों तथा कष्टों का निवारण करें।

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वांनि भेषजा।
अग्निं चं विश्वशंभुवम्।।

अथर्व. १।६।२, ऋग्.१।२३।२० (पाठभेद), ऋग्.१०।९।६

(अप्सु अन्तर्विश्वानि भेषजा) जल में सब ओषधियाँ और (अग्निं च) जगत् को सुख देने वाली अग्नि है। (सोमः मे अब्रवीत्) यह सोम अर्थात्

परमात्मा ने मुझसे कहा है।

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम।
ज्योक् च सूर्यं दृशे।।

अथर्व. १।६।३, ऋग्.१।२३।२१,१०।९।७

(आपः) हे जलो! (मम तन्वे) मेरे शरीर के लिये (वरूथं भेषजं पृणीत) संरक्षक, रोग निवारक औषधि दीजिये, (ज्योक् च सूर्यं दृशे) जिससे मैं दीर्घ काल तक सूर्य के दर्शन कर सकूँ।

इदमापः प्र वहत यत् किं च दुरितं मयि।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम्।।

ऋग्.१।२३।२२,१०।९।८

(मयि यत् किं च दुरितं) मुझ में जो कुछ दोष हों, (यत् वा अहं अभिदुद्रोह) जो मैंने किसी से द्रोह किया हो, (यत् वा शेपे) जो मैंने किसी को शाप दिया हो (उत अनृतं) तथा असत्य भाषण किया हो, वे सब दोष (इदं आपः प्रवहत) ये जल बहाकर ले जायँ ताकि मैं शुद्ध हो जाऊं।

ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मंकरणीरपः।
यथैव तृप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजीः।।

अथर्व. १९।२।५

(ताः आपः शिवाः अपः) वह जल कल्याण करने वाला है, (आप अयक्ष्मंकरणीः अपः) वह जल यक्ष्मा आदि रोगों को दूर करने वाला है, (ताः ते भेषजीः आदत्त) वह जल तुम्हारे लिये रोगों को दूर करने वाली ऐसी औषधि देने वाला है, (यथा एव मयः तृप्यते) जिससे तुम्हें सुख प्राप्त होता है।

यह जल चिकित्सा का उल्लेख है।

आप इद्वा उं भेषजीरापो अमीवचातंनीः।
आपो विश्वंस्य भेषजीस्तास्त्वां मुञ्चन्तु क्षेत्रियात्।।

अथर्व. ३।७।५

(आपः इत् वै उ भेषजीः) जल निश्चय ही भेषज अर्थात् औषधि है, (आपः अमीवचातनीः) जल रोग विनाशक है, (आपः विश्वस्य भेषजीः) जल सब प्रकार के रोगों की औषधि है। (ताः त्वा क्षेत्रियात् मुञ्चन्तु) वे जल तुम्हें शरीर के रोगों से मुक्त करें।

देवस्यं सवितुः सवे कर्म कृण्वन्तु मानुंषाः।
शं नो भवन्त्वपः ओषंधीः शिवाः।।

अथर्व. ६।२३।३

(सवितुः देवस्य सवे) सविता देव की इस सृष्टि में, (मानुषाः) मनुष्य (कर्म कृण्वन्तु) कर्म करे, अपने कर्तव्यों का पालन करे, (अपः ओषधीः) जल और जल से उत्पन्न औषधियाँ (नः शम् शिवाः भवन्तु) हमारे लिये सुखदायी और कल्याणकारी हों।

अमृतम् उदकनाम। निघण्टु. १।१२

आपो वै प्राणाः। शतपथ. ३।८।२।४

जल ही प्राण हैं।

अद्भिर्वा इदं सर्वमाप्तं। शतपथ. १।१।१।१४

जल से समस्त सृष्टि व्याप्त है।

नदियाँ

अभि त्वां सिन्धो शिशुमिन्न मातरो,
वाश्रा अंर्षन्ति पयंसेव धेनवंः।
राजेंव युध्वां नयसि त्वमित्सिचौ,
यदांसामग्रं प्रवतामिनंक्षसि।।

ऋग्. १०।७५।४

(सिन्धो) हे सिन्धो! (मातरः शिशुं इत् न) जैसे मातायें अपने छोटे बच्चे के पास प्रेम से जाती है तथा (पयसा इव धेनवः) नवप्रसूत दुग्धवती गायें अपने छोटे बछड़े के पास जाती हैं, (वाश्राः अभि अर्षन्ति) वैसे ही शब्द करती हुयी अन्य नदियाँ तुम्हारी ओर आती हैं। (युध्वा राजा इव त्वं इत् सिचौ नयसि) युद्ध करने वाले राजा के समान जल से भरे हुये दोनों तटों वाली तुम (यत् आसां प्रवताम् अग्रे इनक्षसि) मिलकर साथ चलने वाली इन नदियों के जल को आगे लेकर जाती हो।

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति,
शुतुंद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मंरुद्वृधे वितस्तया,
ऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमंया।।

ऋग्. १०।७५।५

(गंगे) हे गंगे! (यमुने) हे यमुने! (सरस्वति) हे सरस्वति! (शुतुद्रि) हे शुतुद्रि! (परुष्णि) हे परुष्णि! (असिक्न्या मरुद्वृधे) असिक्न कि साथ हे मरुद्वृधे! (वितस्तया सुषोमया आर्जीकीये) वितस्ता, सुषोमा के साथ हे आर्जीकीय! (मे इमं स्तोमं आ सचत शृणुहि) ये सात नदियाँ मेरे इस स्तोत्र को सुनकर स्वीकार करें।

अथवा

इस मन्त्र में नाड़ियों का वर्णन है। आध्यात्मिक पक्ष में नाड़ियों का वर्णन नदियों के नामों से किया जाता है।

श्मशा- नदी तथा नाड़ी।

श्मशा शु अश्नुते इति वा, श्माश्नुते इति वा।

निरुक्त. ५।२।१२।४६

(क) नदी, यह शीघ्र फैल जाती है।
(ख) नाड़ी, यह शरीर में व्याप्त होती है।

(गङ्गे) हे इडा! (यमुने) हे पिङ्गला! (शुतुद्रि परुष्णि सरस्वति) तथा

शुतुद्री और परुष्णी नामों वाली हे सुषुम्ना नाड़ी! (मे इमं स्तोमं आसचत) मेरे इस स्तवन का सेवन करो। (मरुद्वृधे असिक्न्या) हे सुषुम्ण! तू पिङ्गला के साथ (आर्जीकीये वितस्तया सुषोमया) और हे इड़ा! तू वितस्ता नामवाली सुषुम्णा के साथ मिली हुयी (आश्रृणुहि) मेरे इस स्तवन को सुनो।

शिवस्वरोदय में कहा गया है कि नाभि स्थानगत कन्द से ऊपर अंकुर के समान ७२ हज़ार नाड़ियाँ निकली हुयी हैं, जो सम्पूर्ण शरीर में स्थित हैं। उनमें से दस नाड़ियाँ सर्वोत्तम हैं और इन दस में भी इड़ा, पिङ्गला तथा सुषुम्णा ये तीन नाड़ियाँ सर्वोत्कृष्ट हैं।

इड़ा शरीर के वाम भाग में, पिङ्गला दक्षिण भाग में तथा सुषुम्णा मध्य भाग में है। ये तीनों प्राण संचार के लिये मुख्य हैं। इड़ा का दूसरा नाम चन्द्र, पिङ्गला का सूर्य तथा सुषुम्णा का शंभु या हंस है।

इड़ा को गंगा, पिङ्गला को यमुना तथा सुषुम्णा को सरस्वती कहते हैं, इनका संगम प्रयाग नाम से प्रसिद्ध है। इस मन्त्र में गंगा और आर्जीकीय इड़ा के लिये यमुना तथा असिक्नी पिङ्गला के लिये सरस्वती, शुतुद्री, परुष्णी, मरुद्वधा, वितस्ता और सुषोमा, ये ६ नाम सुषुम्णा के लिये प्रयुक्त हुये हैं।

इड़ा को सित तथा पिङ्गला को असित भी कहते हैं क्योंकि गंगा का जल श्वेत है और यमुना का अश्वेत।

सुषोमा (सुषुम्णा) का दूसरा नाम सिन्धु है क्योंकि इड़ा तथा पिङ्गला आदि नाड़ियाँ इसकी ओर जाती हैं, इससे मिलती हैं। 'स्यदन्ते नद्य एनमिति सिन्धुः'। (निरुक्त) इसकी ओर कई नाड़ियाँ बहती हैं, अतः यह सिन्धु कहलाती है। इसीलिये सिन्धु का वर्णन अनेक मन्त्रों में विशेष प्रशंसा पूर्वक किया गया है।

गंगा गमनात्। यमुना प्रयुवती गच्छतीति वा, प्रवियुतं गच्छतीति वा। सरस्वती, सर इत्युदकनाम सर्तेः, तद्वती। शुतुद्री शुद्राविणी क्षिप्रद्राविणी, आशु तुन्नेव द्रवतीति वा। इरावती

परुष्णीत्याहुः, पर्ववती भास्वती कुटिलगामिनी। असिक्न्यशुक्लाऽसिता, सितमिति वर्णनाम, तत्प्रतिषेधोऽसितम्। मरुद्वृधाः सर्वा नद्यः, मरुत एना वर्धयन्ति। वितस्ता विदग्धा, विवृद्धा महाकूला। आर्जीकीयां विपाडित्याहुः, ऋजीकप्रभवा वा, ऋजुगामिनी वा। विपाड् विपाटनाद्वा, विपाशनाद्वा, विप्रापणाद्वा। पाशा अस्यां व्यपाश्यन्त वसिष्ठस्य मुमूर्षतस्तस्माद्विपाडुच्यते। पूर्व मासीद्र उरुञ्जिरा। सुषोमा सिन्धुः, यदेनावधि प्रसुवन्ति नद्यः। सिन्धुः स्यन्दनात्।।

निरुक्त. ९।३।२४।२०

१. गंगा- इस नाड़ी में प्राणों का वश करने से योगी उत्तम गति को प्राप्त करता है।

२.यमुना- इन नाड़ी में अभ्यास करने से योगी चित्त की स्थिरता को प्राप्त करता है।

३.सरस्वती- सरस् शब्द जलवाची है। प्रशस्त रस वाली होने से सुषुम्णा को सरस्वती कहा जाता है।

४.शुतुद्री- सुषुम्णा में ध्यान करने से योगी शीघ्र ब्रह्मलोक को जाता है।

शीघ्र ले जाने वाली होने के कारण यह शुतुद्री अथवा इस नाड़ी की गति बड़ी तीव्र है।

इस विषय में मन्त्र है-

सितासिते सरिते यत्र संगथे तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते।।

जो ध्यानी लोग, जहाँ सित (इडा) और असित (पिंगला), ये दोनों नाड़ियाँ मिलती हैं, उस संगम स्थान (सुषुम्णा) में स्नान करते हैं, वे ब्रह्मलोक में जाते हैं।

५. परुष्णी- ब्रह्म प्राप्ति का साधन होने के कारण सुषुम्णा भास्वती है

और इसकी गति वक्र है।

इस परुष्णी को इरावती भी कहते हैं।

६. असिक्नी- पिंगला को असिता या कृष्णा कहा जाता है। सित शब्द श्वेत का वाचक है, उसका निषेध असित होता है।

अशुक्ला-अशुक्नी-असिक्नी।

७. मरुद्वृधा- वायु इसे बढ़ाती है। यह शब्द सभी नाड़ियों के लिये प्रयुक्त होता है। यहाँ सुषुम्णा का वाचक है।

८. वितस्ता- सुषुम्णा के द्वारा सब आन्तरिक मल दग्ध किये जाते हैं। अतः विदग्धा होने से इसे वितस्ता कहा गया है।

९. आर्जीकीया- यहाँ ऋजीक का अर्थ नाभि कन्द है। उससे इसकी उत्पत्ति होने के कारण इसे आर्जीकीया कहा गया है।

अथवा, यह पिंगला की तरह वक्र नहीं है, प्रत्युत ऋजुगामिनी है। 'ऋजु गच्छतीति आर्जिकः- आर्जीकः'।

इस इडा को विपाट् या विपाश् भी कहते हैं। इस नाड़ी में अभ्यास करने से योगी का अज्ञान नष्ट हो जाता है, अज्ञान के पाश कट जाते हैं।

१०.सुषोमा- सुषुम्णा। इसका दूसरा नाम सिन्धु है क्योंकि इडा और पिंगला आदि इसकी ओर बहती हैं और इसमें मिल जाती हैं।

सुषोमा का रूपान्तर ही सुषुम्णा है।

(क) इस प्रकार सुषुम्णा के नाम हैं- सरस्वती, परुष्णी तथा इरावती, शुतुद्री, मरुद्वृधा, वितस्ता, सुषोमा

(ख) इडा के नाम हैं- गंगा, आर्जीकीया, सिता, विपाट् या विपाश्, चन्द्र।

(ग) पिंगला के नाम हैं- यमुना, असिक्नी तथा असिता, सूर्य।
इन तीन नाड़ियों के संगम स्थल का नाम प्रयाग है।

शिव स्वरोदय श्लोक ५७ में कहा गया है कि जो योगी निरन्तर इडा तथा पिंगला के स्वरों का भली प्रकार अभ्यास करते हैं, उन्हें भूत भविष्य का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

श्लोक संख्या ३७ में कहा गया है कि स्वाभाविक वायु को पहले

यथाशक्ति कुम्भक प्राणायाम से रोके, फिर इडा मार्ग से रेचक के द्वारा निकाले और फिर पिंगला के मार्ग से पूरक प्राणायाम द्वारा अन्दर की ओर खींचे।

ऋजीत्येनी रुशंती महित्वा परि ज्रयांसि भरते रजांसि।
अदंब्धा सिन्धुंरपसांमपस्तमाऽश्वा न चित्रा वपुंषीव दर्शता।।

ऋग्. १०।७५।७

(ऋजीती एनी रुशती ज्रयांसि रजांसि परि भरते) सरलगामिनी, श्वेतवर्णा तथा भासमान, चमकते हुये जल वाली सिन्धु अत्यन्त वेगवान् जलों के साथ बहती है। (अदब्धः सिन्धुः अपसां अपस्तमा) अदम्य सिन्धु नदियों में सबसे अधिक वेगवती है। (अश्वा न चित्रा वपुषी इव दर्शता) यह आश्चर्यजनक वेग वाली घोड़ी के समान है और रूपवती स्त्री के समान देखने में अत्यन्त सुन्दर है।

वायु

वात आ वांतु भेषजं शंभु मंयोभु नो हृदे।
प्र ण आँयूंषि तारिषत्।

साम. क्र.सं. १८४०, ऋग्. १०।१८६।१

(वातः नः हृदे भेषजं आ वातु) वायु हमारे हृदय के लिये औषधि बन कर आये। (शंभु मयोभु नः आयूंषि प्र तारिषत्) वह कल्याणकारी एवं सुखकारी होकर हमें दीर्घ आयु प्रदान करे।

उत वांत पितासिं न उत भ्रातोत नः सखां।
स नो जीवातंवे कृधि।।

साम. क्र.सं. १८४१, ऋग्. १०।१८६।२

(वात) हे वायु! (उत नः पिता असि) तुम हमारे पिता हो, (उत भ्राता उत नः सखा) तुम हमारे भाई हो और तुम हमारे सखा हो। (सः नः जीवातवे कृधि) वह तुम हमें हमारे जीवन के लिये हमारे ऊपर कृपा करो।

यददो वांत ते गृहेऽ<u>ऽ</u> मृतंस्य निधिर्हितः।
ततों नो देहि जीवसें।।

साम. क्र.सं. १८४२, ऋग्.१०।१८६।३

(वात) हे वायु! (ते गृहे यत् अदः अमृतस्य निधिः हितः) तुम्हारे गृह में जो यह अमृत की निधि स्थापित है, (ततः नः जीवसे देहि) उसे हमारे जीवन के लिये दीजिये।

वातंस्य नु मंहिमानं रथंस्य रुजन्नेंति स्तनयंन्नस्य घोषंः।
दिविस्पृग्यांत्यरुणानिं कृण्वन्नुतो एंति पृथिव्या रेणुमस्यंन्।।

ऋग्.१०।१६८।१

(वातस्य रथस्य महिमानं नु) वायु के वेग से जाने वाले रथ की अर्थात् आँधी की महिमा का वर्णन इस प्रकार है। (अस्य घोषः स्तनयन् रुजन् एति) इसका घोष विशेष प्रकार का शब्द करता हुआ तथा वृक्षादि को तोड़ता हुआ आता है, (दिविस्पृक् अरुणानि कृण्वन् याति) यह आकाश में व्याप्त होकर, चारों ओर आकाश में लाल वर्ण उत्पन्न करता हुआ जाता है तथा (उतो पृथिव्याः रेणुं अस्यन् एति) पृथिवी की धूलि को इधर उधर विखेरता हुआ जाता है।

अन्तरिंक्षे पृथिभिरीयंमानो न नि विंशते कतमच्चनाहंः।
अपां सखां प्रथमजा ऋतावा क्वं स्विज्जातः कुत आ बंभूव।।

ऋग्.१०।१६८।३

(अन्तरिक्षे पृथिभिः ईयमानः कतमत् चन अहः न नि विशते) अन्तरिक्ष में अनेक मार्गों से जाने वाला वायु किसी भी दिन निश्चल होकर नहीं बैठता. (अपां सखा प्रथमजाः ऋतावा) जलों का मित्र, सब प्राणियों से पहले उत्पन्न होने वाला तथा भगवान् के सत्य नियमों का पालन करने वाला वायु (क्व स्वित् जातः कुतः आ बभूव) कहाँ उत्पन्न हुआ है और कहाँ से आता है?

आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो यथावशं चरति देव एषः।
घोषा इदस्य शृण्विरे न रूपं तस्मै वाताय हविषा विधेम।।

ऋग्.१०।१६८।४

यह वायु (देवानां आत्मा भुवनस्य गर्भः) देवों का आत्मा तथा लोक का गर्भ है, प्राण के रूप में समस्त प्राणियों को जीवन देने वाला, उत्पन्न करने वाला है, (एषः देवः यथा वशं चरति) यह देव अपनी इच्छानुसार चलता है, (अस्य घोषाः इत् शृण्विरे) इसका केवल नाद ही सुनायी देता है, (रूपं न) रूप नहीं दिखायी देता। (तस्मै वाताय हविषा विधेम) उस वायु देव के लिये हम श्रेष्ठ हव्य पदार्थों की आहुति देकर यज्ञ करें, उसे स्वच्छ तथा शुद्ध रखें।

ऋग्.१०।१६८।२ में कहा गया है **'अस्य विश्वस्य भुवनस्य राजा'** यह वायु समस्त विश्व का राजा है।

यह सूत्रात्मा वायु प्राण के रूप में समस्त प्राणियों के जीवन का आधार है, इसीलिये समस्त विश्व का राजा है।

सैषा नस्तमिता देवता यद् वायुः।

शतपथ. ब्रा. १४।४।३।३३

यह जो वायु है, वह कभी अस्त न होने वाला देवता है। यह सदा प्रत्यक्ष है।

स यथैषा प्राणानां मध्यमः प्राण एवमेतासां देवानां वायुर्म्लोचन्ति ह्यन्या देवता न वायुः सेषानस्तमिता देवता यद्वायुः।

शतपथ. १४।४।३।३२

इस प्राणों में मध्यम प्राण सबसे उत्तम था, उसी प्रकार इन देवों में वायु है। अन्य देवता अस्त हो जाते हैं, वायु अस्त नहीं होता। यह जो वायु है, कभी अस्त न होने वाला देवता है।

पर्जन्य (मेघ)

प्र वाता वान्तिं पतयंन्ति विद्युत उदोषंधीर्जिहंते पिन्वंते स्वंः।
इरा विश्वंस्मै भुवंनाय जायते यत् पर्जन्यंः पृथिवीं रेतसावंति।।

ऋग्. ५।८३।४

(यत् पर्जन्यः रेतसा) जब मेघ वीर्य अर्थात् जल से सम्पन्न होकर, पूर्ण होकर (पृथिवीं अवति) पृथिवी की ओर जाता है, तब (वाताः प्र वान्ति) हवायें चलने लगती हैं, (विद्युतः पतयन्ति) बिजलियाँ ऐसे कड़कने लगती हैं, मानो कि अभी गिरने वाली हैं (उत) और (ओषधीः जिहते) ओषधियाँ तथा वनस्पतियाँ आदि जल पीने लगती हैं, (स्वः पिन्वते) आकाश सुन्दर लगने लगता है तथा (इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते) समस्त संसार के लिये अन्न आदि उत्पन्न होता है।

महान्तं कोशमुदंचा नि षिंञ्च स्यन्दंतां कुल्या विषिंताः पुरस्तांत्।
घृतेन द्यावांपृथिवी व्युंन्धि सुप्रपाणं भंवत्वघ्न्याभ्यंः।।

ऋग्. ५।८३।८

हे पर्जन्य! (महान्तं कोशं उदच) तुम अपने जल रुपी महान कोश को खोलकर उसे (नि षिंच) नीचे की ओर बहा, जिससे (विषिताः कुल्याः) जल से भरी हुयी नदियाँ तथा जल धारायें (पुरस्तात् स्यन्दतां) आगे की ओर बहें। (घृतेन) जल से (द्यावा पृथिवी वि उन्धि) अन्तरिक्ष और पृथिवी को भर दो, जिससे (अघ्न्याभ्यः सुप्रपाणं भवतु) गायों के पीने के लिये उत्तम जल उपलब्ध हो जाय।

यत् पंर्जन्य कनिंक्रदत्स्तनयन् हंसिं दुष्कृतंः।
प्र तीदं विश्वं मोदते यत्किं चं पृथिव्यामधिं।।

ऋग्. ५।८३।९

(यत् पर्जन्य) जब मेघ (कनिक्रदत् स्तनयन्) कड़कड़ाते हुये तथा गरजते हुये (दुष्कृतः हंसि) कष्ट देने वालों को अथवा भीषण गर्मी, सूखा, जल की कमी आदि कष्ट देने वाली परिस्थितियों को नष्ट करता है, तब

(यत् किं च पृथिव्यां अधि) जो कुछ भी पृथिवी पर है और (इदं विश्वं) यह समस्त संसार (प्रतिमोदते) अत्यन्त प्रसन्न हो जाता है।

वृष्टि

कृष्णं नियानं हरंयः सुपर्णा अपो वसांना दिवमुत्पंतन्ति।
तं आवंवृत्रन्त्सदंनादृतस्यादिद् घृतेनं पृथिवीं व्यू॒दुः॥

अथर्व. ९।१०।२२

(हरयः सुपर्णाः) जल का हरण करने वाली अर्थात् पृथिवी तथा समुद्र से जल को सोखने वाली सूर्य किरणें, (अपः वसानाः) जल को ओढ़े हुये, जल को अपने साथ लिये हुये (कृष्णं नियानं दिवं उत्पतन्ति) सब का आकर्षण करने वाले सूर्य की ओर ऊपर अन्तरिक्ष में जाती हैं। (आत् इत्) तत्पश्चात् (ते ऋतस्य सदनात्) वे जल के घर से अर्थात् अन्तरिक्ष से (आववृत्रन्) वापिस लौटती हुयी (घृतेन पृथिवीं वि ऊदुः) पृथिवी को जल से सींचती हैं।

सुपर्णा रश्मयः। निघण्टु. १।५

ऋतम् उदकनाम। निघण्टु. १।१२

घृतम् उदकनाम। निघण्टु. १।१२

सूर्य २३ जून से जून २२ दिसम्बर तक ६ मास दक्षिणायन और २३ दिसम्बर से २२ जून तक ६ मास उत्तरायण रहता है। इस उत्तरायण काल की ग्रीष्म ऋतु में सूर्य अपनी रश्मियों से जल का आकर्षण करके उन्हें अन्तरिक्ष में धारण करके रखता है और जब वह दक्षिणायन की ओर जाता है, तब वर्षा ऋतु प्रारम्भ होती है।

विवाह

अथर्व वेद के चौदहवें काण्ड में विवाह का वर्णन आलंकारिक रूप से अत्यन्त सुन्दर एवं शिक्षाप्रद ढंग से किया गया है। इन सभी १३९ मंत्रों की ऋषि सावित्री सूर्या हैं, जिससे वैदिक संस्कृति में महिलाओं की विद्वता तथा उनकी उच्च स्थिति का दिग्दर्शन होता है।

विवाह के इस रूपक में सूर्य की पुत्री सूर्या अर्थात् सूर्य की किरणों

का विवाह सोम अर्थात् चन्द्रमा से होना दिखाया गया है। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि चन्द्रमा में अपना प्रकाश नहीं होता, वह सूर्य की किरणों से ही प्रकाशित होता है। जिस प्रकार किसी नव युवक का जीवन विवाह के उपरान्त ही सम्पूर्ण आनन्द से प्रकाशित होता है, उसी प्रकार चन्द्रमा भी अपनी पत्नी सूर्या से मिलने के उपरान्त ही न केवल स्वयं प्रकाशित होता है, प्रत्युत समस्त संसार को शोभायमान करता है, प्रेम रस में भिगोने वाला अलौकिक आनन्द प्रदान करता है।

काण्ड के प्रथम मंत्र में सत्य एवं ऋत अर्थात् सरलता एवं भगवान् के सत्य नियमों के पालन का उल्लेख करके यह बताया गया है कि वैवाहिक जीवन में सत्य, सरलता, सदाचार, पवित्रता एवं कल्याणकारी नियमों के पालन का अत्यन्त महत्व है। इससे न केवल मनुष्य जीवन की प्रत्युत उसकी मातृभूमि की भी उन्नति होती है।

सत्येनोत्तभिता भूमिः- सत्य ने भूमि को ऊपर उठाया हुआ है। मनुष्यों के सत्य आचरण से मातृभूमि का उत्थान होता है।

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात्।।

अथर्व. १४।१।९

सोम वधू की इच्छा करने वाला था, (उभौ अश्विनौ वरौ आस्तां) दोनों अश्वि देव अर्थात् वर तथा कन्या के माता पिता उपस्थित थे, जब पति की प्रशंसा करती हुयी, कामना करती हुयी सूर्या को (मनसा) प्रसन्नता पूर्वक सविता अर्थात् सूर्य नें उसके पति को सौंप दिया।

इससे स्पष्ट है कि वर वधू द्वारा एक दूसरे की कामना करने पर अर्थात् उनकी पूर्ण सहमति के साथ ही विवाह संस्कार सम्पन्न किया जाना चाहिये। ब्रह्म विवाह में माता पिता की भी सहमति आवश्यक है। यह ब्रह्म विवाह का आदर्श है, जो आज भी भारतवर्ष में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

अश्विनौ का अर्थ द्यावा पृथिवी अर्थात् माता पिता भी होता है (अश्विनौ द्यावा पृथिवी वित्येके) निरुक्त. १२।१।१

वधू की पवित्रता तथा उसकी मानसिक प्रसन्नता का उल्लेख करते हुये कहा गया है-

शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः।
अनो मनस्मयं सूर्यारोहत्प्रयती पतिम् ।।

अथर्व. १४।१।१२

(पतिं प्रयती सूर्या) पति के पास जाने वाली सूर्या (मनः मयं आ रोहत्) जिस मनोमय रथ पर बैठती है, (ते यात्याः चक्रे शुची) उसके दोनों पहिये शुद्ध हैं तथा (अक्षे व्यानः आहतः) उसका अक्ष व्यान नामक प्राण है, जो समस्त शरीर में व्याप्त होकर प्राण एवं अपान के साथ मिलकर शरीर को आनन्दपूर्वक जीवित रखता है, उसमें जीवन रस का संचार करता है।

यहाँ प्राण और अपान को शरीर रुपी रथ को पवित्र करने वाले दो पहिये कहा गया है। प्राण के साथ शुद्ध वायु अन्दर आती है तथा अपान मल मूत्र तथा अशुद्ध वायु को बाहर निकालता है।

वेद में अनेक स्थानों पर महिलाओं को शुद्ध एवं पवित्र कहा गया है। **शुद्धाः पूताः योषितः यज्ञियाः**। (अथर्व. ११।१।२७) शुद्ध और पवित्र स्त्रियाँ यज्ञ के योग्य हैं।

अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनात्प्रेतो मुंञ्चामि नामुतः।।

अथर्व. १४।१।१७

(अर्यमणं) न्यायकारी, (सुबन्धुम्) सर्वोत्तम बन्धु, (पतिवेदसम्) पति को प्राप्त कराने वाले परमेश्वर का हम (यजामहे) यज्ञ द्वारा प्रार्थना तथा पूजन करते हैं तथा इस कन्या को (उर्वारुकम् इव) पके हुये ख़रबूजे के समान (इतरः प्रमुञ्चामि) इस पितृ गृह के बन्धन से मुक्त करते हैं, (अमुतः न) पति गृह से नहीं।

जिस प्रकार पका हुआ ख़रबूजा अपनी बेल से स्वयं अलग हो जाता है, उसी प्रकार विवाह के योग्य कन्या को पिता के गृह से उसके सौभाग्य के लिये अलग किया जाता है।

प्रेतो मुंञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतंस्करम्।
यथेयमिंन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासंति ।।

अथर्व. १४।१।१८

(मीढ्वः) सुखों की वर्षा करने वाले हे इन्द्र! मैं इस कन्या को (इतः प्रमुञ्चामि) इस पितृगृह से मुक्त करता हूँ, (न अमुतः) वहां से अर्थात् पतिगृह से नहीं (सुबद्धाम् अमुतः करम्) तथा उसे पतिगृह से सुदृढ़ रूप से बद्ध करता हूँ, जिससे (इयम्) यह (सुपुत्रा सुभगा असति) सुपुत्रों वाली तथा भग अर्थात् ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य से युक्त होकर सौभाग्य शालिनी हो।

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्य१श्नुतम्।
क्रीडंन्तौ पुत्रैर्नप्तृंभिर्मोदंमानौ स्वस्तकौ।।

अथर्व. १४।१।२२

(इह एव स्तम्) इस गृह में ही साथ साथ रहना, (मा वियौष्टम्) कभी अलग न होना (पुत्रैः नप्तृभिः क्रीडन्तौ) तथा अपने पुत्र पौत्रों के साथ खेलते हुये, (मोदमानौ स्वस्तकौ) आनन्द मनाते हुये अपने गृहस्थ जीवन को कल्याणमय तथा उत्तम बनाते हुये (विश्वं आयुः व्यश्नुतम्) सम्पूर्ण आयु का उपभोग करना।

युवं भगं सं भंरतं समृंद्धमृतं वदंन्तावृतोद्येषु।
ब्रह्मंणस्पते पतिंमस्यै रोचय चारुं संभलो वंदतु वाचमेताम्।।

ऋग्. १४।१।३१

(युवम् ऋत उद्येषु ऋतं वदन्तौ) तुम दोनों सत्य तथा सरल व्यवहार करते हुये एवं सत्य बोलते हुये (समृद्धं भगं संभरन्तं) समृद्धि तथा सौभाग्य को प्राप्त करो। हे ब्रह्मणस्पते! हे ईश्वर! (अस्यै पतिं रोचय) यह वधू सदा अपने पति को प्रेम करने वाली, उसके कार्यों में रुचि लेने वाली रहे (संभलः एतां वाचं चारु वदतु) तथा इसका पति इसके साथ सम्यक् भाषी होकर, इससे सभ्यता पूर्ण व्यवहार करते हुये प्रिय एवं मधुर वाणी बोले।

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम्।
पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम्।।

अथर्व. १४।१।४२

(सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिं आशासाना) मन की प्रसन्नता, परस्पर सौहार्द, सन्तान, सौभाग्य तथा धन की आशा करने वाली तुम, (पत्युः अनुव्रता भूत्वा) पति के अनुकूल आचरण वाली होकर (अमृताय कं सं नह्यस्व) मोक्ष प्राप्त करने के उद्देश्य से सुख पूर्वक गृहस्थ धर्म के पालन हेतु संनद्ध हो जाओ, तत्पर हो जाओ।

सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु।
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः।।

अथर्व. १४।१।४४

वैदिक संस्कृति में नव वधू को इतना सम्मान दिया जाता है कि उससे कहा गया है कि (श्वशुरेषु सम्राज्ञी एधि) अपने श्वशुर के घर में सम्राज्ञी के समान रहो (उत देवृषु सम्राज्ञी) और अपने देवरों में भी सम्राज्ञी होकर रहो, (ननान्दुः सम्राज्ञी एधि) ननद के साथ भी सम्राज्ञी के समान रहो (उत) तथा (श्वश्र्वाः सम्राज्ञी) अपनी सास के साथ भी सम्राज्ञी के समान रहो।

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः।।

अथर्व. १४।१।५०

(गृह्णामि ते हस्तं सौभगत्वाय) मैं सौभाग्य के लिये तुम्हारा हाथ गृहण करता हूँ, (यथा मया पत्या जरदष्टिः असः) जिससे तुम मुझ पति के साथ वृद्धावस्था तक रहने वाली हो। (भगः अर्यमा सविता पुरन्धिः देवाः) भग, अर्यमा, सविता तथा पुरन्धि, इन सब देवों ने (त्वा मह्यं गार्हपत्याय अदुः) तुमको मुझे गृहस्थाश्रम के लिये दिया है।

ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद्बृहस्पतिः।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम्।।

अथर्व. १४।१।५२

(इयं मम पोष्या अस्तु) यह वधू मेरे द्वारा पोषणीय हो, मैं सब प्रकार इसका पोषण करूँ, इसकी रक्षा करूँ। (बृहस्पतिः त्वा मह्यं अदात्) बृहस्पति ने तुम्हें मुझको दिया है। (प्रजावति) सन्तान से सम्पन्न होने वाली तुम, (मया पत्या शरदः शतं संजीव) मुझ पति के साथ सौ वर्ष तक जीवित रहो।

सुकिंशुकं वहतुं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम्।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणु त्वम्।।

अथर्व. १४।१।६१

(सूर्ये) हे सूर्ये! (सुकिंशुकं विश्वरूपं) उत्तम पुष्पों से युक्त, अनेक रूपों वाले अर्थात् विविध प्रकार से सुरुचिपूर्ण ढंग से निर्मित (हिरण्यवर्णं) स्वर्ण के समान वर्ण वाले, चमकदार, (सुवृतं सुचक्रं) सुन्दर साज सज्जा से युक्त, उत्तम पहियों वाले (वहतुं आरोह) रथ पर बैठकर (अमृतस्य लोकं आरोह) स्वर्ग के समान श्रेष्ठ गृहस्थाश्रम रूपी लोक में प्रवेश करो, (त्वं वहतुं पतिभ्यः स्योनं कृणु) तुम इस विवाह संस्कार को पति तथा उसके परिवार के लिये सुखदायी बनाओ।

शिवा नारीयमस्तमागन्निमं धाता लोकमस्यै दिदेश।
तमर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु।।

अथर्व. १४।२।१३

(इयं शिवा नारी अस्तं आगन्) यह कल्याणी नारी पति के घर आ गयी है, (धाता अस्यै इमं लोकं दिदेश) परमेश्वर ने इसे यह पतिगृह उपलब्ध कराया है। (अर्यमा भगः उभा अश्विना प्रजापतिः) अर्यमा, भग, दोनों अश्विनी कुमार तथा प्रजापति (तां प्रजया) उसकी सन्तानों के साथ (वर्धयन्तु) अभिवृद्धि करें।

प्रतिं तिष्ठ विराडंसि विष्णुंरिवेह संरस्वति।
सिनीवालि प्र जांयतां भगंस्य सुमतावंसत्।।

अथर्व. १४।२।१५

हे वधू! (प्रतितिष्ट) तुम इस गृह में प्रतिष्ठा के साथ रहो, (विराट् असि) तुम विशेष तेजस्वी हो, (विष्णुः इव इह) तुम यहाँ विष्णु के समान सब का पालन पोषण करने वाली हो, (सरस्वति सिनीवालि) हे ज्ञान की देवि! हे अन्नपूर्णा! (प्रजायतां) तुम सन्तान उत्पन्न करने वाली बनो तथा तुम दोनों पति पत्नी (भगस्य सुमतौ असत्) सौभाग्य के देवता की सुमति में रहो।

निरुक्त में सिनीवालि को देवपत्नी कहा गया है।

विराट्- विशेषेण राजते (राजृ दीप्तौ)

सरस्वती- सरः विज्ञानं विद्यते अस्यां सा सरस्वती।

उणादि. ४।१९०

सिनम्=अन्नम्, तद्वती सिनी, वालः केशसमूहः, तद्वती वाली। सिनम् अन्ननाम। (निघण्टु २।७)

यहाँ विराट् का अर्थ प्रकृति भी हो सकता है। प्रकृति से ही सृष्टि उत्पन्न होती है। परिवार में पति पुरुष रूप है और पत्नी प्रकृति रूप है। मन्त्र में नववधू के लिये जो सम्मान पूर्ण शब्द प्रयोग किये गये हैं, वह वैदिक संस्कृति की श्रेष्ठता के प्रतीक हैं। माँ सचमुच ज्ञान तथा अन्न की देवी होती है क्योंकि माँ से ही बच्चे को उसकी मातृ भाषा तथा सम्बन्धित महत्वपूर्ण प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त होता है।

अघोरचक्षुरपंतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यंः।
वीरसूर्देवृकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना।।

ऋग्. १०।८५।४४, अथर्व. १४।२।१७

वहीं नव वधू को शिक्षा देते हुये कहा गया है कि (अघोरचक्षुः) तुम्हारी दृष्टि कभी क्रूर न हो, (अपतिघ्नी) ग्रह कलह अथवा अन्य किसी प्रकार से पति को मारने वाली अर्थात् उसे दुःखी करने वाली न

बनना, (स्योना) सब को सुख देने वाली बनना, (शग्मा) सब के लिये कल्याणकारी, (सुशेवा) अपने से बड़ों की सेवा करने वाली तथा सेवकों से भली प्रकार सेवित होने वाली अर्थात् सेवकों को भी कष्ट न देने वाली (सुयमा) परिवार में यम नियम के अनुसार रहने वाली अर्थात् उच्छृङ्खल न होने वाली, (वीरसूः) वीर पुत्रों को जन्म देने वाली, (देवृकामा) देवरों को प्रेम करने वाली तथा (सुमनस्यमाना) अच्छे मन वाली बनना, (त्वया सम् एधिषीमहि) जिससे तुम्हारे उपरोक्त गुणों के कारण हम सब सुखी एवं सम्पन्न हों।

सुमङ्गली प्रतरंणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुंराय शंभूः।
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विंशेमान्।

अथर्व. १४।२।२६

(सुमङ्गली) उत्तम मंगलमयी, कल्याण करने वाली, (गृहाणां प्रतरणी) गृहस्थ जीवन रूपी नदी को पार कराने वाली नौका के समान, (पत्ये सुशेवा) पति की उत्तम सेवा करने वाली, (श्वशुराय शंभूः) श्वशुर को शान्ति देने वाली, (श्वश्र्वै स्योना) सास को सुख देने वाली, हे वधू! (इमान् गृहान् प्रविश) इस गृह में प्रविष्ट हो।

स्योना-सुखनाम। (निघण्टु. ३।६)

शेवम् सुखम्। (निघण्टु. ३।६)

स्योना भंव श्वशुंरेभ्यः स्योना पत्यें गृहेभ्यंः।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव।।

अथर्व. १४।२।२७

(श्वशुरेभ्यः स्योना भव) श्वशुरों के लिये सुख देने वाली हो, (पत्ये गृहेभ्यः स्योना) पति तथा अन्य परिवार वालों के लिये सुख देने वाली हो, (अस्यै सर्वस्यै विशे स्योना) इन सभी लोगों के लिये सुख देने वाली हो (स्योना एषां पुष्टाय भव) तथा सब परिवार वालों के लिये सुखदायक और पुष्टि करने वाली हो।

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यंत।
सौभांग्यमस्यै दुत्वा दौर्भाग्यैर्विपरेतन।।

अथर्व. १४।२।२८

(सुमङ्गलीः इयं वधूः) यह वधू उत्तम मंगलवाली है, कल्याणी है। (समेत इमां पश्यत) सब लोग एकत्र होकर इसे देखो (सौभाग्यं अस्यै दत्वा) और इसे सौभाग्य को प्राप्त करने (दौर्भाग्यैः वि परेतन) तथा दुर्भाग्य से सदा दूर रहने का आशीर्वाद देकर जाओ।

रुक्मप्रस्तरणं वह्यं विश्वा रूपाणि बिभ्रंतम्।
आरोहत् सूर्या सावित्री बृंहते सौभंगाय कम्।।

अथर्व. १४।२।३०

(सूर्या सावित्री) वधू, सूर्या सावित्री (रुक्मप्रस्तरणं) सोने के समान सुन्दर बिछौने से युक्त (विश्वा रूपाणि बिभ्रतम्) अनेक सुन्दर सजावटों को धारण करने वाले (कम् वह्यं) सुखदायक रथ पर (बृहते सौभगाय आरोहत्) महान् सौभाग्य के लिये आरूढ़ हुयी है।

इहेमाविन्द्र सं नुंद चक्रवाकेव दम्पंती।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्य श्नुताम्।।

अथर्व. १४।२।६४

(इन्द्र) हे इन्द्र! (चक्रवाक इव इमौ दम्पती इह संनुद) इन दोनों पति पत्नी को चक्रवाक पक्षी के जोड़े के समान साथ साथ रहने के लिये प्रेरित कीजिये। (एनौ सु अस्तकौ) ये दोनों उत्तम घर वाले होकर (प्रजया विश्वं आयुः व्यश्नुताम्) अपनी सन्तानों के साथ सम्पूर्ण आयु का उपभोग करें।

अमोऽहमंस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक्त्वं द्यौरहं पृंथिवी त्वम्। ताविह सं भंवाव प्रजामा जंनयावहै।।

अथर्व. १४।२।७१

(अहं अमः अस्मि) मैं (अमः) प्राण हूँ, (सा त्वं) तुम 'सा' हो, (साम अहं-ऋक् त्वम्) मैं साम हूँ तुम ऋचा हो, (द्यौः अहं पृथिवी त्वं) मैं द्युलोक हूँ, तुम पृथिवी हो, (तौ इह सं भवाव) हम दोनों इकट्ठे हों और (प्रजां आ जनयावहै) सन्तान उत्पन्न करें।

१. द्युलोक अथवा सूर्य से शक्ति प्राप्त होती है और पृथिवी उसे गृहण करती है। अतः पति प्राण है और पत्नी रयि है। प्राण और रयि के मिथुन से सन्तान उत्पन्न होती है।

प्रश्नोपनिषद्. १।४

२. अथवा, मैं (अमः) ज्ञानवान् तथा गतिशील हूँ और तुम भी (सा) ज्ञानवती तथा प्रगति करने वाली हो। अम् का अर्थ ज्ञान, गति और प्राप्ति होता है।

३. ऋच्यधिरूढं साम गीयते। छान्दोग्य.उप.

ऋचा पर आधारित साम गाया जाता है। पत्नी ऋचा है, पति साम है।

इससे स्पष्ट है कि दाम्पत्य जीवन का आधार पत्नी है।

४. सा+अमः (पति)=साम= जीवन का ज्ञान पूर्ण।

५. आदित्य प्राण है, चन्द्रमा रयि है। सूर्य से भिन्न जो कुछ भी मूर्त तथा अमूर्त है, वह सब रयि है।

प्रश्नोपनिषद्. १।५

प्र बुंध्यस्व सुबुधा बुध्यंमाना दीर्घायुत्वायं शतशांरदाय।
गृहान् गंच्छ गृहपंत्नी यथाऽसो दीर्घं त आयुंः सविता कृंणोतु।

अथर्व. १४।२।७५

(सुबुधा) हे बुद्धिमान् वधू! तुम (प्रबुद्ध्यस्व) प्रबुद्ध हो, सब प्रकार का ज्ञान प्राप्त करो, (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन तथा (शत शारदाय) सौ वर्षों की आयु के लिये (बुध्यमाना) सजग तथा सचेष्ट रहकर प्रयत्न करो। (गृहान् गच्छ) पति के घर जाकर (यथा गृहपत्नी असः) गृहस्वामिनी बनो, (सविता ते आयुः दीर्घ कृणोतु) सविता तुम्हारी आयु को दीर्घ करें।

समंञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदंयानि नौ।
सं मांतरिश्वा सं धाता समु देष्ट्रीं दधातु नौ।।

ऋग्. १०।८५।४७

(विश्वे देवाः नौ हृदयानि संमञ्जन्तु) समस्त देव हम दोनों के हृदयों को परस्पर मिला दें। (आपः मातरिश्वा धाता देष्ट्री नौ सं उ दधातु) जल, वायु, धाता तथा सरस्वती हम दोनों को संयुक्त करके धारण करें।

पत्नी

कुसुरुविन्दु-ऋषिः, देवता-पत्नी

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽ दिंते सरंस्वति महि विश्रुंति।एता तें अघ्न्ये नामांनि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्।।

यजु. ८।४३

(इडे) प्रशंसनीय गुणों से युक्त, स्तुति करने योग्य, (रन्ते) रमणीय, (हव्ये) स्वीकार करने योग्य, (काम्ये) सुन्दर कमनीय (चन्द्रे) अत्यन्त आनन्द देने वाली, (ज्योते) तेजोमयी, (अदिते) देवमाता अदिति के समान सम्माननीय, (विश्रुति) विशेष विद्या एवं ज्ञान से युक्त, बुद्धिमान (महि) श्रेष्ठ मानवीय गुणों से युक्त होने के कारण महान्, (सरस्वति) सरस्वती के समान ज्ञान का श्रेष्ठ मार्ग दिखाने वाली तथा कल्याण करने वाली, (अघ्न्ये) किसी प्रकार का कष्ट न दिये जाने योग्य हे पत्नी! ये सब तुम्हारे नाम हैं, (देवेभ्यः) तुम देवों के लिये, विद्वानों के हित के लिये (सुकृतं) मुझे श्रेष्ठ कर्म करने के लिये (ब्रूतात्) कहो, श्रेष्ठ कर्मों की प्रेरणा दो।

श्री सातवलेकर जी ने इस मन्त्र की व्याख्या पत्नी के स्थान पर गौ के वर्णन के रूप में की है, जो उचित प्रतीत नहीं होती, विशेष रूप से जब कि मन्त्र की देवता पत्नी है और मन्त्र में प्रयुक्त अनेक विशेषण गौ के विषय में उपयुक्त प्रतीत नहीं होते।

वरुण

इमं मे वरुण श्रुधी हवंमद्या चं मृडय। त्वामंवस्युराचंके।।

ऋग्.१।२५।१९, यजु.२१।१, साम. उत्त.९१६।२।१, क्र.सं.१५८५

(वरुण) हे वरुण! (मे इमं हवम् श्रुधि) मेरे इस आह्वान को, मेरी इस प्रार्थना को सुनिये (च अद्य मृडय) तथा आज मुझे सुखी कीजिये। (अवस्युः त्वां आ चक्रे) अपनी रक्षा की इच्छा करने वाला मैं, आपकी स्तुति करता हूँ तथा आपसे प्रार्थना करता हूँ।

तत्वा॑ यामि॒ ब्रह्म॑णा॒ वन्द॑माना॒स्तदा शा॑स्ते॒ यज॑मानो ह॒विर्भिः॑।
अहे॑डमानो वरुणे॒ह बो॒ध्युरु॑शꣳस॒ मा न॒ आयुः॒ प्र मो॑षीः॥

ऋग्. १।२४।११, यजु.२१।२,१८।४९

(वरुण) हे वरुण! (ब्रह्मणा त्वा वन्दमानः यजमानः) वेदमन्त्रों से आपकी स्तुति करता हुआ यजमान (हविभिः आशास्ते) हवि अर्पण करने के द्वारा आपकी कृपा की कामना करता है, (तत् त्वा यामि) उस आपको मैं प्राप्त होता हूँ, आपकी शरण में आता हूँ, आपसे प्रार्थना करता हूँ। (उरुशंसः) बहुतों से प्रशंसित हे वरुण! (इह अहेडमानः बोधि) इस संसार में सत्कार को प्राप्त होते हुये तथा क्रोध न करते हुये आप हमें ज्ञान प्राप्त कराइये (नः आयुः मा प्रमोषीः) एवं हमारी आयु का अपहरण मत कीजिये अर्थात् हमें पूर्ण आयु प्रदान कीजिये।

त्वं नो॑ अग्ने॒ वरु॑णस्य वि॒द्वान्दे॒वस्य॒ हेडो॒ अव॑ यासिसीष्ठाः। यजि॑ष्ठो॒ वह्नि॑तमः॒ शोशु॑चानो॒ विश्वा॒ द्वेषा॑ꣳसि॒ प्र मु॑मुग्ध्य॒स्मत्॥

ऋग्.४।१।४, यजु.२१।३

(अग्ने) हे अग्ने! (विद्वान् यजिष्ठः वह्नितमः शोशुचानः त्वम्) सब कुछ जानने वाले, अत्यधिक पूजनीय, हवि का अत्यन्त वहन करने वाले तथा देदीप्यमान आप (नः वरुणस्य देवस्य हेडः अव यासिसीष्ठाः) हमारे प्रति वरुण देव के क्रोध को दूर कीजिये, शान्त कीजिये (विश्वा द्वेषांसि अस्मत् प्रमुमुग्धि) तथा हमारे समस्त दुर्भाग्यों एवं द्वेषपूर्ण दुर्भावनाओं को हमसे दूर कर दीजिये।

स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ। अव यक्ष्व नो वरुणꣳ रराणो वीहि मृडीकꣳ सुहवो न एधि।।

ऋग्. ४।१।५, यजु. २१।४

(अग्ने) हे अग्ने! (सः त्वं अस्याः उषसः व्युष्टौ) वह आप इस उषा के प्रकट होने पर, उषा के प्रकाशित होने पर अपनी रक्षण शक्ति के साथ (नः अवमः नेदिष्ठः भव) हमारी अत्यन्त रक्षा करने वाले तथा हमारे अत्यन्त निकटस्थ अथवा घनिष्ट होइये। (तात्पर्य यह है कि जैसे अत्यन्त घनिष्ठ व्यक्ति रक्षा करता है, उसी प्रकार रक्षा करने वाले होइये।) (रराणः नः वरुणं अवयक्ष्व) तथा दान देने वाले एवं हवि अर्पण करने वाले हम लोगों के प्रति इस संसार के राजा अर्थात् वरुण देव को सन्तुष्ट कीजिये, प्रसन्न कीजिये। (मृडीकं वीहि) आप सुखकारी हवि का भक्षण कीजिये अथवा हमारे लिये सुखकारी होकर कान्तिमान होइये, शोभायमान होइये और (नः सुहवः एधि) भली प्रकार आदर पूर्वक प्रेम से आह्वान करने वाले हम लोगों को प्राप्त होइये।

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम।।

यजु. १२।१२, ऋग्. १।२४।१५
साम. ६।१।४, क्र.सं. ५८९, अथर्व. १८।४।६९

(वरुण) हे वरुण! (उत्तमं पाशं अस्मत् उत् श्रथाय) अपने उत्तम कोटि के बन्धन को शिथिल करके हमसे दूर हटा दीजिये, (अधमं पाशं अव श्रथाय) अपने निम्न कोटि के बन्धन को शिथिल करके हमें बन्धन मुक्त कीजिये (मध्यमं पाशं वि श्रथाय) तथा मध्यम बन्धन को विशेष प्रकार से शिथिल करके, उसका विच्छेदन करके हमसे दूर कर दीजिये। (अथ) तत्पश्चात् (आदित्य) हे अदिति के पुत्र वरुण! (अनागसः तव व्रते वयं अदितये स्याम) निष्पाप होकर हम आपके नियम में दीनता रहित

होकर रहें।

अपने मन, वाणी एवं कर्मों द्वारा किये गये विविध प्रकार के पापों एवं दुष्कर्मों के कारण हम वरुण के तीन प्रकार के पाशों से बाँधे जाते हैं। ऊपर नीचे तथा बीच के बन्धनों का यह आलंकारिक वर्णन है। पापों को छोड़कर तथा भगवान् की कृपा प्राप्त करके ही हम इन बन्धनों से मुक्ति पाकर श्रेष्ठ कर्म करते हुये स्वाभिमान पूर्वक अदीन होकर रह सकते हैं। जीवन का यही श्रेष्ठ आदर्श है। वास्तव में हमारे दुष्कर्म ही हमारे बन्धनों का कारण हैं, अतः उन्हें छोड़ने का हमें सतत् प्रयास करना चाहिये।

प्रत्येक व्यक्ति उत्तम, मध्यम तथा अधम इन तीन प्रकार के पाशों से बंधा हुआ है। उदाहरणार्थ यदि हम किसी शत्रु के बन्धन में असहाय पड़े हों अथवा कारागार में हों, तो यह अधम स्तर का भौतिक बन्धन है किन्तु यदि हम शराब, व्यभिचार आदि दुर्गुणों में फंसे हुये हों, तो यह अधम चारित्रिक बन्धन है, जिससे मुक्ति पाना आवश्यक है।

यदि हम पारिवारिक झंझटों में फंसे हों और पत्नी, सन्तान अथवा भाई बहन आदि के कारण दुःख भोग रहे हों, उनके दुर्व्यवहार आदि से पीड़ित हों, तो यह मध्यम स्तर के सांसारिक बन्धन कहे जायेंगे। व्यवसाय आदि से सम्बन्धित बन्धन भी इसी श्रेणी में आयेंगे किन्तु यदि हम सब प्रकार से समृद्ध एवं सुखी होकर भी स्वार्थ, लोभ, लालच तथा और अधिक धन की लालसा (वित्तैषणा) तथा तृष्णा आदि में फंसे हों अथवा प्रसिद्धि पाने की इच्छा (लोकैषणा) आदि से ग्रस्त हों, तो माया के, संसार के वे सूक्ष्म बन्धन उत्तम प्रकार के बन्धन माने जायेंगे।

इन्द्रंश्च सम्राड् वरुंणश्च राजा तौ तें भक्षं चंक्रतुरग्रं एतम्। तयोरहमनुं भक्षं भंक्षयामि वाग्देवी जुंषाणा सोमंस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहां।।

यजु. ८।३७

(इन्द्रः च वरुणः सम्राड् च राजा) इन्द्र सम्राट् हैं और वरुण उनके अन्तर्गत कार्य करने वाले राजा हैं, (तौ अग्रे ते एतं भक्षं चक्रतुः) वे पहले

तुम्हारे लिये ये भोज्य पदार्थ उत्पन्न करते हैं। (तयोः अनु अहम् भक्षं भक्षयामि) उनके पश्चात् मैं इन भोज्य पदार्थों का उपभोग करता हूँ। (वाग् देवी जुषाणा प्राणेन सह सोमस्य तृप्यतु) वाग्देवी प्राण के साथ प्रेमपूर्वक सोमरस से तृप्त हों। (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति इन्द्र तथा वरुण के लिये समर्पित है।

न त्वदन्यः कवितरो न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन्।
त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ स चिन्नु त्वज्जनो मायी बिभाय।।

अथर्व. ५।११।४

(स्वधावन् वरुण) अपनी धारणा शक्ति से युक्त हे वरुण! (त्वत् अन्यः कवितरः न) तुम से अधिक और कोई ज्ञानवान् नहीं है और (मेधया धीरतरः न) न कोई बुद्धि में तुमसे अधिक बुद्धिमान है। (त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ) तुम उन सब भुवनों को जानते हो, (सः मायी जनः) अतएव वह छल कपट करने वाला मनुष्य (त्वत् चित् नु बिभाय) निश्चय ही तुमसे भयभीत रहता है।

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः।।

अथर्व. ४।१६।२

(यः तिष्ठति चरति) जो खड़ा रहता है, जो चलता है, (च यः वञ्चति) जो दूसरे को ठगता है, (यः निलायं चरति, यः प्रतंकं) जो गुप्त व्यवहार करता है, छिपकर दूसरे को कष्ट पहुँचाता है अथवा जो खुले रूप से व्यवहार करता है, (द्वौ संनिषद्य यत् मंत्रयेते) जो दो लोग साथ बैठकर विचार करते हैं, (तत् तृतीयः राजा वरुणः वेद) उस सब को राजा वरुण तीसरे पुरुष के रूप में इस प्रकार जानता है कि मानो वह तीसरे व्यक्ति रूप में उन दोनों के साथ उपस्थित रहा हो।

सर्वं तद्राजा वरुणो वि चष्टे यदन्तरा रोदसी यत्परस्तात्।
संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी नि मिनोति तानि।।

अथर्व. ४।१६।५

(राजा वरुणः तत् सर्वं वि चष्टे) राजा वरुण उस सबको देखता है, (यत् रोदसी अन्तरा यत् परस्तात्) जो पृथिवी तथा द्युलोक के बीच में है और जो उससे परे है। (जनानां निमिषः अस्य संख्याता) वह मनुष्यों के पलकों के झपकने को इस प्रकार गिनता है, (तानि नि मिनोति) उनको इस प्रकार नापता है (इव श्वघ्नी अक्षान्) जैसे अपना भविष्य नष्ट करने वाला जुआरी अपने द्वारा फेंके गये पाँसों को गिनता है तथा उनका हिसाब रखता है।

सहस्रंधार एव ते समंस्वरन्दिवो नाके मधुंजिह्वा असश्चतंः।
तस्य स्पशो न नि मिंषन्ति भूर्णयः पदेपंदे पाशिनंः सन्ति सेतंवे।।

अथर्व. ५।६।३

(दिवः सहस्रधार एव नाके) द्युलोक के सहस्रों धाराओं से युक्त स्वर्ग अथवा सुखपूर्ण स्थान में ही रहने वाले (ते मधुजिह्वः असश्चतः) वे आसक्तिरहित निश्चल शांत स्वभाव वाले और मधुर भाषी लोग (समस्वरन्) सब मिलकर एक स्वर से कहते हैं कि (तस्य भूर्णयः स्पशः न नि मिषन्ति) उस वरुण देव के पकड़ने वाले क्षिप्रगामी गुप्तचर कभी पलक नहीं झपकाते, आँख बन्द नहीं करते और (सेतवे पदे पदे पाशिनः सन्ति) बाँधने के लिये पग पग पर पाश लिये हुये खड़े रहते हैं।

ये ते पाशा वरुण सप्तसंप्त त्रेधा तिष्ठंन्ति विषिंता रुशंन्तः।
छिनन्तु सर्वे अनृंतं वदंन्तं यः संत्यवाद्यति तं सृंजन्तु।।

अथर्व. ४।१६।६

(वरुण) हे वरुण! (ये ते पाशाः सप्त सप्त त्रेधा विषिताः रुशन्तः तिष्ठन्ति) तुम्हारे जो कष्ट देने वाले सात पाश तीन प्रकार से शरीर को बाँधे हुये हैं, (सर्वे अनृतं वदन्तं छिनन्तु) वे असत्य बोलने वाले को छिन्न भिन्न कर दें और (यः सत्यवादी तं अति सृजन्तु) जो सत्यवादी हैं, उन्हें मुक्त कर दें।

उत्तम, मध्यम तथा अधम, ये तीन प्रकार के वरुण पाश मनुष्य को बन्धन में रखते हैं।

मित्र वरुण

ऋतेन यावृतावृधा वृतस्य ज्योतिषस्पती।
ता मित्रावरुणा हुवे।।

सास. क्र.सं. ७९४, ऋग्.१।२३।५

(यौ ऋतेन ऋतावृधौ) जो दोनों सत्य एवं सरलता से ऋत को बढ़ाने वाले तथा (ऋतस्य ज्योतिषः पती) जो सत्य की ज्योति के रक्षक हैं, (ता मित्रावरुणा हुवे) उन मित्र और वरुण का आवाहन करता हूँ।

ऋत का अर्थ है भगवान् के सत्य नियम, जिनके अनुसार यह समस्त संसार चलता है। सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, पृथिवी आदि समस्त देव इन्हीं नियमों के अनुसार भगवान् द्वारा उन्हें दी गयी शक्तियों का प्रयोग करते हैं।

मित्र तथा वरुण के अनेक अर्थ हैं। दिन और रात को भी मित्रावरुणौ कहा जाता है। सूर्य तथा चन्द्रमा को भी मित्रावरुणौ कहा जाता है।

वरुणः प्राविता भुवन् मित्रो विश्वाभिरुतिभिः।
करतां नः सुराधसः।।

साम. क्र.सं. ७९५, ऋग्.१।२३।६

(वरुणः मित्रः) वरुण और मित्र (विश्वाभिः ऊतिभिः) अपनी सभी रक्षक शक्तियों से (प्राविता भुवन्) हमारी विशेष प्रकार से रक्षा करने वाले हों। (नः सुराधसः करतां) वे दोनों हमें श्रेष्ठ एवं पवित्र धन प्रदान करें।

मित्रावरुणा परि मामधातामादित्या मा स्वरवो वर्धयन्तु।
वर्चो म इन्द्रोन्य्ऽ नक्तु हस्तयोर्जरदष्टिं मा सविता कृणोतु।।

अथर्व. १८।३।१२

(मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण (मा परि अधाताम्) मुझे चारों ओर से धारण करें, मेरी रक्षा करें। (स्वरवः) जयघोष करते हुये तथा दुष्टों को

दण्ड देने वाले (आदित्याः) देवगण (मा वर्धयन्तु) मुझे बढ़ायें, (इन्द्रः) इन्द्र (मे हस्तयोः) मेरे हाथों में (वर्चः व्यनक्तु) तेज स्थापित करें और (सविता) सविता देव (जरदष्टिं कृणोतु) मुझे दीर्घायु बनायें।

अहो रात्रौ वै मित्रावरुणौ। तैत्ति. संहिता. २।४।१०।११

दिन तथा रात्रि मित्र-वरुण हैं।

व्यापक आनन्द की अनुभूति

द्रप्सश्चंस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः।
समानं योनिमनुं सञ्चरंन्तं द्रप्सं जुंहोम्यनुं सप्त होत्राः।।

यजुर्वेद.१३।५

ऋग्वेद, १०।१७।११, (पाठभेद) अथर्ववेद, १८।४।२८

(योनिम् अनु) अपने कारण के अनुरुप अर्थात् परमात्मा की अनन्त महिमा तथा कृपा के अनुरूप (यः च पूर्वः) जो सब प्रकार से पूर्ण (द्रप्सः पृथिवीं द्यां इमं च) हर्ष, उत्साह तथा जीवन रस, पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक में सर्वत्र (चस्कन्द) उपलब्ध होता है, उस (समानं योनिम् अनुसंचरन्तम्) प्रत्येक स्थान पर समान रुप से अनुसंचरण करते हुये, फैले हुये (द्रप्सं) पूर्ण आनन्द को मैं (सप्त होत्राः) पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा मन एवं बुद्धि अथवा पाँच प्राण, मन एवं आत्मा की सहायता से (अनु जुहोमि) अनुकूलता से ग्रहण करता हूँ।

शतपथ ब्राह्मण ७।४।१।२० में आदित्य को 'द्रप्स' कहा गया है। **'असौ वा आदित्यो द्रप्सः'** और दिशाओं को सप्त होत्रा कहा गया है। **'दिशः सप्त होत्राः'**।

वास्तव में सूर्य से ही जीवन रस का समान रुप से संचार सब दिशाओं में होता है।

यज्ञ

न यातवं इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दंना शविष्ठ वेद्याभिंः।
स शंर्धदर्यो विषुंणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेंवा अपिं गुर्ऋतं नंः।।

ऋग्. ७।२१।५

(इन्द्र शविष्ठः) हे बलवान् इन्द्र! (नः ऋतं न यातवः जूजुवः) हमारे यज्ञ में या सत्य धर्म के स्थान में विघ्नकारी राक्षस न आयें, (न वेद्याभिः वन्दना) न झूठ मूठ हाँ हाँ करने वाले चापलूसी लोग आयें, (शिश्नः देवाः मा अपिगुः) शिश्न ही जिनका देवता है, ऐसे कामी दुराचारी लोग भी न आयें। (सः शर्धत) प्रत्युत वह लोग आयें (अर्यः विषुणस्य जन्तोः) जो इन्द्रियों के स्वामी हों तथा कुटिल मनुष्य का निग्रह करने में समर्थ हों।

ऋतं सत्यं वा यज्ञं वा। निरुक्त. ४।३।१९

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः।।

ऋग्. १०।७१।११

(त्वः ऋचां पोषं पुपुष्वान् आस्ते) एक होता नामक ऋत्विज, ऋक् मन्त्रों की पुष्टि करता हुआ बैठता है अर्थात् यज्ञानुष्ठान में मन्त्रों का विधिवत् प्रयोग करके अधिष्ठित होता है, (त्वः शक्वरीषु गायत्रं गायति) दूसरा उद्गाता नामक ऋत्विज, शक्वरी ऋचाओं का गायत्री छन्द में सामगान करता है, (त्वः ब्रह्मा जातविद्यां वदति) तीसरा ब्रह्मा नामक ऋत्विज, यज्ञ में कोई त्रुटि होने पर त्रुटि बताकर उसका निराकरण अथवा प्रायश्चित करवाता है (उ त्वः यज्ञस्य मात्रां वि मिमीते) तथा चौथा अध्वर्यु नामक ऋत्विज यज्ञ के विभिन्न कार्यों, जैसे आहुति डालना, जल प्रोक्षण आदि सभी क्रिया कलापों को सम्पन्न करता है।

चत्वारि श्रृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश।।

यजु. १७।९१, ऋग्.४।५८।३

गोपथ ब्राह्मण पूर्व २।१६ के अनुसार इस मन्त्र में यज्ञ पुरुष के भिन्न भिन्न अवयवों का वर्णन निम्न प्रकार किया गया है।

(चत्वारि अस्य श्रृङ्गा) चत्वारि श्रङ्गाः इति एते वै वेदाः उक्ताः। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद, ये उसके चार सींग अथवा

शीर्षस्थ अवयव हैं। (त्रयः अस्य पादाः) त्रयः पादाः इति सवनानि एव। तीन सवन, इसके तीन पाद अथवा चरण हैं, प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन तथा सायं सवन अर्थात् प्रातः काल में किया जाने वाला यज्ञ, मध्याह्न में किया जाने वाला यज्ञ तथा सायंकाल में किया जाने वाला यज्ञ, यही इसके तीन पाद अथवा चरण हैं। (द्वे शीर्षे) द्वे शीर्षे इति ब्रह्मौदन प्रवर्ग्यो एव। ब्रह्मौदन तथा प्रवर्ग्य (यज्ञाग्नि) इसके दो शिर हैं। (सप्त हस्तासः अस्य) सप्त हस्तासः अस्य इति छन्दांसि एव। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् तथा जगती वेद के ये प्रमुख सात छन्द, इसके सात हाथ हैं क्योंकि इन्हीं से समस्त क्रियायें होती हैं।

(त्रिधा बद्धः) त्रिधा बद्ध इति मन्त्रः कल्पः ब्राह्मणम्। मन्त्र, कल्प तथा ब्राह्मण, इन तीन प्रकार से बंधा हुआ, (वृषभः रोरवीति) एषः वृषभः ह वै तत् रोरवीति। सुखों की वर्षा करने वाला यह श्रेष्ठ यज्ञ पुरुष प्रिय एवं कल्याणकारी शब्द करता है।

(यत् यज्ञेषु शस्त्राणि ऋग्भिः, यजुर्भिः सामभिः ब्रह्मभिः शंसति इति) यज्ञों में स्तोत्र अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के मन्त्रों का जो पाठ किया जाता है, वही इस बलवान् यज्ञ पुरुष का शब्द है।

(महः देवः मर्त्यान् आविवेश) इत एषः ह वै महान् देवः यद् यज्ञः एष मर्त्यान् आविवेश। यह यज्ञ रुपी महान् पूजनीय देव सभी मरणधर्मा प्राणियों में सब ओर से व्याप्त है अर्थात् यह महान् देव समस्त प्राणियों का कल्याण करने वाला है।

वृषभ शब्द 'वृषु सेचने' धातु से बना है। अतः यहाँ इसका अर्थ है सुख की वर्षा करने वाला। इसके अतिरिक्त वृषभ का अर्थ श्रेष्ठ तथा बलवान् भी होता है।

निरुक्त परिशिष्ट १३।७ में यास्काचार्य जी ने इस मन्त्र का अर्थ निम्न प्रकार किया है-

(चत्वारि श्रृङ्गेति वेदा वा एते उक्ताः) चार वेद ही इसके चार सींग हैं, (त्रयो अस्य पादाः इति सवनानि त्रीणि) यज्ञ के तीन सवन ही इसके तीन पाद हैं, (द्वे शीर्षे प्रायणीयोदयनीये) प्रायणीय अर्थात् यज्ञ के

प्रारम्भिक कार्य तथा उदयनीय अर्थात् यज्ञ के अन्तिम कार्य इसके दो शिर हैं। (सप्त हस्तासः सप्त छन्दांसि) गायत्री आदि सात छन्द इसके सात हाथ हैं।

(त्रिधा बद्धः त्रेधा बद्धः मन्त्र ब्राह्मण कल्पैः) मन्त्र, ब्राह्मण तथा कल्प से तीन प्रकार से बंधा हुआ, (वृषभो रोरवीति) सुख की वर्षा करने वाला यह श्रेष्ठ देव शब्द करता है, (रोरवणमस्य सवनक्रमेण ऋग्भिर्यजुर्भिः सामभिः) सवनों के क्रम से ऋग्, यजु तथा साम मन्त्रों का पाठ ही इसका शब्द करना है। यज्ञ रूपी यह महान् देव मनुष्यों में प्रविष्ट होता है अर्थात् मनुष्यों द्वारा यज्ञ किया जाता है, यजन किया जाता है।

महर्षि पतञ्जलि द्वारा महाभाष्य अध्याय १ में इस मन्त्र का निम्नाङ्कित प्रसिद्ध अर्थ किया गया है-

नाम, आख्यात, उपसर्ग एवं निपात रूपी चार सींगों वाला, भूत, भविष्यत्, वर्तमान रूपी तीन पादों वाला, नित्य अनित्य शब्द रूपी दो शिरों वाला, क्रिया, विभक्तियों रूपी सात हाथों वाला तथा हृदय, कण्ठ एवं मुख, इन तीन स्थानों पर तीन प्रकार से बंधा हुआ, सब पर सुखों की वर्षा करने वाला शब्द रूपी यज्ञ पुरुष मधुर कल्याणकारी ध्वनि करता है तथा समस्त प्राणियों में व्याप्त रहता है।

यज्ञेनं यज्ञमंयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यांसन्।
ते ह नाकं महिमानंः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्तिं देवाः।।

ऋग्.१०।९०।१६, १।१६४।५०, यजु.३१।१६, अथर्व.७।५।१

(देवाः यज्ञेन यज्ञं अयजन्त) देवों ने, विद्वानों ने (यज्ञेन) यज्ञ के द्वारा उस (यज्ञम्) पूजनीय परमात्मा का (अयजन्त) पूजन किया (तानि) विविध प्रकार के वे यज्ञ (प्रथमानि धर्माणि आसन्) प्रथम अथवा सर्वश्रेष्ठ धर्म अर्थात् प्रमुख धार्मिक कार्य थे। (ते ह महिमानः नाकं सचन्त) निश्चय ही यज्ञ करने वाले वे विद्वान् महिमा से युक्त होकर, महिमा मण्डित होकर स्वर्ग अथवा आनन्द के उस परम धाम को प्राप्त होते हैं, (यत्र पूर्वे साध्याः देवाः सन्ति) जहाँ यज्ञ के द्वारा साधना करने वाले, विविध प्रकार के यज्ञों को सम्पन्न करने वाले पूर्वकालीन विद्वान् निवास करते हैं।

स घा यस्ते ददांशति समिधां जातवेंदसे।
सो अंग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुंष्यति।।

ऋग्. ३।१०।३

(अग्ने) हे अग्ने! (यः ते जातवेदसे समिधा ददाशति) समस्त उत्पन्न पदार्थों को जानने वाले आप के लिये जो मनुष्य समिधायें समर्पित करता है, (स घ सुवीर्यं धत्ते) वह निश्चय ही उत्तम पराक्रम तथा सामर्थ्यवान् पुत्र को प्राप्त करता है (स पुष्यति) और वह पुष्ट तथा समृद्ध होता है।

ममांग्ने वर्चो विहवेष्वंस्तु वयं त्वेन्धांनस्तन्वं पुषेम।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतंस्रस्त्वयाध्यंक्षेण पृतंना जयेम।।

ऋग्. १०।१२८।१, अथर्व.५।३।१

(अग्ने) हे अग्ने! (विहवेषु मम वर्चः अस्तु) विविध युद्धों में, जीवन के विविध संघर्षों में मेरा तेज प्रकाशित हो, मेरा वर्चस्व हो, (वयं त्वा इन्धानाः तन्वम् पुषेम) हम यज्ञ में आपको समिधाओं से प्रदीप्त करते हुये अपने शरीर को पुष्ट बनायें। (चतस्रः प्रदिशः मह्यम् नमन्ताम्) चारों दिशायें मेरे लिये नमन करें, चारों दिशाओं में मेरा सम्मान हो, (त्वया अध्यक्षेण पृतनाः जयेम) आपकी अध्यक्षता में, आपके नेतृत्व में हम शत्रु सेनाओं पर विजय प्राप्त करें।

यज्ञ वेद मन्त्रों से ही करना चाहिये, यज्ञ में मानुषी भाषा को अशुभ माना जाता है।

शतपथ. १।४।१।३५

प्रजापतिर्वा एष यज्ञो भवति। शतपथ.१४।१।२।१८

यह यज्ञ प्रजापति है।

सर्वेषां वा एव वा एष भूतानां। सर्वेषां देवानामात्मा यद् यज्ञः।

शतपथ.१४।३।२।१

यह जो यज्ञ है, वह सब भूतों अर्थात् प्राणियों को तथा सब देवों का आत्मा है।

अग्नियाँ

आहवनीय अग्नि-

जिसमें आहुति दी जाती है। यह सौर अग्नि का प्रतीक है।

गार्हपत्य अग्नि-

जिसमें खाना पकाया जाता है। यह पार्थिव अग्नि का प्रतीक है।

दक्षिणाग्नि-

अन्वाहार्य पचन। यह अन्तरिक्ष अग्नि का प्रतीक है।

आमाद अग्नि-

जिसमें खाना पकाया जाता है।

क्रव्याद अग्नि-

जिसमें शव जलाया जाता है।

अरणियाँ-

पीपल के काष्ठ से निर्मित दो अरणियों को रगड़कर अग्नि को उत्पन्न किया जाता है।

पुरुषो वै यज्ञः। शतपथ. १०।२।२।६

पुरुष यज्ञ है।

असावादित्योऽश्वमेधः। शतपथ. ९।४।२।१८

यह आदित्य अश्वमेध है।

अयं वा अग्निरर्को। शतपथ. ९।४।२।१८

यह अग्नि ही अर्क है।

यजमानो वै यज्ञपतिः। शतपथ. १।१।२।१२

यजमान ही यज्ञपति है।

यज्ञो वै विष्णुः। शतपथ. १।१।२।१३

यज्ञ ही विष्णु है।

यज्ञो वै स्वरहदेवाः सूर्यः। शतपथ. १।१।२।२१

यज्ञ ही प्रकाश है, दिन है, देव है, सूर्य है।

ब्रह्म वै पलाशः। शतपथ. १।३।३।१९

पलाश ब्राह्मण है, अग्नि भी ब्राह्मण है, इसलिये यज्ञ की परिधियाँ पलाश की ही होनी चाहिये।

यज्ञ के योग्य वृक्ष हैं- पलाश, विकंकत, कार्षमर्य, बेल, खदिर, उदुम्बर।

शतपथ. १।३।३।२०

जो सूखा है वह अग्नि का, जो गीला है वह सोम का। सूर्य अग्नि का है, चन्द्रमा सोम का। दिन अग्नि का है, रात सोम की।

शतपथ. १।६।३।२४

इसीलिये यह जगत् अग्निषोमीय कहा जाता है। इसलिये जिस किसी देवता के लिये हवि देते हैं, तो पहले घी की दो आहुतियाँ अग्नि और सोम के लिये दिया करते हैं।

शतपथ.१।६।३।१९

यह जो दो आज्यभाग आहुतियाँ हैं, वे यज्ञ की दो आँखें हैं। इसलिये उनको पहले देता है। आँखें सामने होती हैं, इस प्रकार दोनों आँखों को सामने रखता है।

शतपथ.१।६।३।३८

यज्ञो वै वसुः। शतपथ. १।७।१।९

यज्ञ ही वसु है।

वाग्वै यज्ञः। शतपथ. १।७।१।१५

वाणी ही यज्ञ है।

अध्वर-

अध्वर इति यज्ञनाम, ध्वरति हिंसा कर्म तत्प्रतिषेधः।

निरुक्त. १।७

निघण्टु पठित 'ध्वृ' धातु हिंसार्थक है, अध्वर में इसका प्रतिषेध है।

ब्रह्मवर्चसं वनस्पतीनां पलाशः। तेजः शरीरः कान्तिः।

ऐतरेय. ६।४

वनस्पतियों में पलाश तेज और ब्रह्मवर्चस है।

आत्मिक यज्ञ

यद्देवा देवान्हविषाऽयंजन्तामंर्त्यान्मनसामंर्त्येन।
मदेम तत्रं परमे व्यो मन्पश्येम तदुदिंतौ सूर्यस्य।।

अथर्व. ७।५।३

(देवाः यत् अमर्त्यान् देवान्) जब विद्वान् लोग अमर देवों का आत्मसमर्पण द्वारा (हविषा अमर्त्येन मनसा अयजन्त) अपने हवि रूपी अमर मन से यजन करते हैं अर्थात् ध्यान करते हैं, (तत्र परमे व्योमन् मदेम) तब वह परम व्योम में आनन्द का अनुभव करते हैं और (सूर्यस्य उदितौ तत् पश्येम) सूर्य के उदय होने पर ध्यान पूर्वक परमेश्वर का दर्शन करते हैं।

इसी के आधार पर गीता में ज्ञान यज्ञ को श्रेष्ठ बताया गया है-

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परं तप।

गीता. ४।३३

हव्य पदार्थों से किये जाने वाले यज्ञ से ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ होता है।

पुरुष रूपी हवि से जो यज्ञ किया जाता है, उसमें सामान्य यज्ञों के समान आहुतियाँ नहीं दी जाती हैं, उसमें तो समस्त प्रकृति ही यज्ञ रूप होती है; वसन्त ऋतु उसमें आज्य होती है, ग्रीष्म ऋतु समिधा होती है तथा शरद ऋतु हवि होती है।

यज्ञ का अर्थ है देवपूजा, संगति कारण तथा दान की पवित्र प्रक्रिया। **'यज् देव पूजा संगति करण दानेषु'**। देव पूजा, संगति करण तथा दान अर्थ वाली 'यज्' धातु से यज्ञ शब्द सिद्ध होता है।

यत्पुरुषेण हविषा यज्ञं देवा अतंन्वत।
अस्ति नु तस्मादोजीयो यद्विहव्येनेजिरे।।

अथर्व. ७।५।४

(यत् देवाः) देवों ने जो (पुरुषेण हविषा यज्ञं अतन्वत) पुरुष रूपी हवि से यज्ञ किया तथा (यत् वि हव्येन ईजिरे) जो यज्ञ विशेष आत्मा रूपी

अथवा ध्यान रुपी हवि से सम्पन्न किया जाता है। (तस्मात् ओजीयः नु अस्ति) उससे अधिक श्रेष्ठ और क्या हो सकता है?

यह मानस तथा आत्मिक यज्ञ का वर्णन है। अपने मन का परमात्मा के प्रति समर्पण करने से मानस यज्ञ तथा आत्मा का समर्पण करने से आत्म यज्ञ होता है, यही पुरुष रुपी हवि है।

यही पुरुषमेध यज्ञ है, पुरुष शरीर के अंगों से आहुति देना पुरुषमेध यज्ञ नहीं होता जैसा कि कुछ मूर्ख तथा दुष्ट लोग प्रचारित करते हैं।

मुग्धा देवा उत शुनायंजन्तोत गोरङ्गैः पुरुधायंजन्त।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः।।

अथर्व. ७।५।५

(मुग्धाः देवाः) मूर्ख लोग (उत शुना अयजन्त) कुत्ते के अंगो से यज्ञ करते हैं (उत गोः अंगैः पुरुधा अयजन्त) तथा गौ के अंगों से यज्ञ करते हैं। (य इमं यज्ञं मनसा चिकेत) जो इस यज्ञ को मन से करना जानता है, वह (इह नः प्रवोचः) यहाँ हमें उसका ज्ञान दे, (इह तं ब्रवः) यहाँ उसका उपदेश दे।

इस मन्त्र में स्पष्ट रुप से कहा गया है कि जो लोग कुत्ते, गौ तथा बकरी आदि पशुओं के अंगो से यज्ञ करते हैं, वे मूर्ख हैं। जब पशुओं के अंगों से यज्ञ करना सर्वथा निषिद्ध है तब मनुष्य शरीर के अंगों से यज्ञ करना कैसे वेदानुकूल हो सकता है? यज्ञ में पशु वध का प्रथा वास्तव में हमारी श्रेष्ठ संस्कृति के अधःपतन का इसी प्रकार निन्दनीय रुप है जैसे भूतकाल में प्रचलित सती प्रथा तथा छुआछूत आदि।

सुरा मत्स्याः पशोर्मांसं द्विजातीनां बलिस्तथा।
धूर्तैः प्रवर्तितं यज्ञे नैतद्वेदेषु कथ्यते।।

महाभारत शान्ति पर्व, २६५।९

मद्य, मत्स्य, पशु का मांस तथा द्विजातियों द्वारा बलि दिया जाना, इन बातों को धूर्तों ने ही यज्ञ में प्रवृत्त किया है, सम्मिलित किया है, वेद में इसका विधान नहीं है।

यज्ञ से उन्नति तथा कामनाओं की पूर्ति

उदेनमुत्तरं नयाग्ने घृतेनाहुत।
समेनं वर्चसा सृज प्रजया च बहु कृधि।।

यजु. १७।५० (पाठभेद), अथर्व. ६।५।१

(घृतेन आहुत अग्ने) घृताहुतियों से तृप्त हे अग्ने! (एनं उत्तरं उन्नय) इस यजमान की, यज्ञकर्ता की बहुत उन्नति कराइये तथा इसे उत्कृष्ट बनाइये। (एनं वर्चसा) इसे तेज से सम्पन्न कीजिये (च) तथा (प्रजया बहुं कृधि) पुत्र पौत्र आदि से समृद्ध कीजिये।

इन्द्रेमं प्रतरं कृधि सजातानामसद् वशी।
रायस्पोषेण सं सृज जीवातवे जरसे नय।।

यजु. १७।५१ (पाठभेद), अथर्व. ६।५।२

(इन्द्र) हे इन्द्र! (इमं) इस यजमान को (प्रतरं कृधि) अत्यन्त समृद्ध कीजिये, (सजातानाम् वशी असत्) जिससे यह अपने सजातियों में, बन्धु बान्धवों में सबको अपने वश में रखने वाला हो। (रायस्पोषेण सं सृज) इसे धन, ऐश्वर्य एवं सब प्रकार की पुष्टि से संयुक्त कीजिये (जीवातवे जरसे नय) तथा दीर्घ जीवन के लिये इसे वृद्धावस्था तक सुखपूर्वक ले जाइये।

यस्य कृण्मो हविर्गृहे तमग्ने वर्धया त्वम्।
तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः।।

यजु. १७।५२ (पाठभेद), अथर्व. ६।५।३

(यस्य गृहे) जिसके घर में (हविः कृण्मः) हम हवि अर्पण करते हैं, यज्ञ करते हैं, (अग्ने) हे अग्ने! (तम् वर्धय त्वम्) उसे आप सब प्रकार से समृद्ध कीजिये। (सोमः च ब्रह्मणस्पतिः तस्मै अधि ब्रवत्) सोम तथा ज्ञान के अधिष्ठाता ब्रह्मणस्पति उसे आशीर्वाद दें।

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः।
भद्रा उत प्रशस्तयः।।

साम. क्र.सं. १५५९, ऋग्. ८।१९।१९, यजु. १५।३८

(सुभग) हे सुन्दर ऐश्वर्य सम्पन्न अग्ने! (आहुतः अग्निः नः भद्रः) जिसमें भली प्रकार आहुतियाँ दी जा चुकी हैं, ऐसी यज्ञाग्नि हमारे लिये कल्याणकारी हो, (भद्रा रातिः) हमारे द्वारा दिये गये दान हमारे लिये कल्याणकारी हों, (भद्रः अध्वरः) यज्ञ हमारे लिये कल्याणकारी हो (भद्राः उत प्रशस्तयः) तथा हमारे द्वारा की गयी स्तुतियाँ हमारे लिये कल्याणकारी हों।

अंहोमुचे प्र भंरे मनीषामा सुत्राव्णें सुमतिमांवृणानः।
इदमिंन्द्र प्रतिं हव्यं गृंभाय सत्याः संन्तु यजंमानस्य कामांः।।

अथर्व. १९।४२।३

(सुमतिं आवृणानः) सुमति की इच्छा करता हुआ मैं (अंहोमुचे) पापों से मुक्त करने वाले, (सुत्राव्णे) परम रक्षक इन्द्र के प्रति (मनीषाम् आ प्र भरे) अपने मन की भावनायें, कामनायें एवं प्रर्थनायें प्रस्तुत करता हूँ, सर्मर्पित करता हूँ। (इन्द्र) हे इन्द्र! हे परम ऐश्वर्य सम्पन्न परमेश्वर! (इदं हव्यं) मेरे द्वारा समर्पित इस हवि को, अथवा भक्ति पूर्वक की गयी इस प्रार्थना को (प्रति गृभाय) स्वीकार कीजिये। (सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः) हे प्रभो यज्ञ करने वाले यजमान की समस्त कामनायें सत्य हों, पूर्ण हों।

धाता रातिः संवितेदं जुंषन्तां-
प्रजापंतिर्निधिपा देवो अग्निः।
त्वष्टा विष्णुंः प्रजयां स࿀ रराणा
यजंमानाय द्रविंणं दधात स्वाहां।।

अथर्व. ७।१८।४, यजु.८।१७

(धाता रातिः) दान देने वाले धाता, (सविता) सब को उत्पन्न करने वाले सविता, (प्रजापतिः निधिपाः) समस्त निधियों का पालन करने वाले प्रजापति, (देवः अग्निः) देदीप्यमान अग्नि, (त्वष्टा विष्णुः) निर्माण करने वाले त्वष्टा तथा सर्वव्यापक विष्णु (इदं जुषन्तां) हमारी इस हवि को

स्वीकार करें, इसका प्रीति पूर्वक सेवन करें तथा (प्रजया संरराणाः) प्रजा के साथ, अपनी सन्तान के साथ रमण करते हुये, भली प्रकार सुख से रहते हुये, (यजमानाय द्रविणं दधात) यजमान के लिये धन प्रदान करें, (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति इन सब देवों को समर्पित है।

पुनंस्त्वाऽऽदित्या रुद्रा वसंवः समिंन्धतां पुनंर्ब्रह्माणो वसुनीथ यज्ञैः। घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः संन्तु यजंमानस्य कामाः।।

यजु. १२।४४

(वसुनीथ) ऐश्वर्य तथा धन सम्पत्ति आदि प्रदान करने वाले हे अग्नि! (आदित्याः रुद्राः वसवः) आदित्य, रुद्र, वसु तथा (ब्राह्मणः) ब्रह्मा (त्वा यज्ञैः पुनः समिन्धतां) यज्ञों के द्वारा तुम्हें पुनः पुनः भली प्रकार प्रदीप्त करें। (त्वं घृतेन तन्वं वर्धयस्व) तुम अपने शरीर को बढ़ाओ (यजमानस्य कामाः सत्याः सन्तु) तथा तुम्हारी कृपा से यज्ञ करने वाले यजमान की कामनायें सत्य हों, उसके मनोरथ सफल हों।

ब्रह्मा- चारों वेदों का विद्वान्।
आदित्य- पूर्ण विद्या से युक्त विद्वान्।
रुद्र- मध्यम श्रेणी का विद्वान्।
वसु- प्रारम्भिक श्रेणी का विद्वान्।

यज्ञ से स्वर्ग प्राप्ति

देवा यज्ञमृतवंः कल्पयन्ति हविः पुंरोडाशं स्रुचो यंज्ञायुधानिं।
तेभिंर्याहि पथिभिंर्देवयानैर्यैरीजानाः स्वर्गं यन्तिं लोकम्।।

अथर्व. १८।४।२

(देवाः ऋतवः यज्ञं कल्पयति) देव तथा विद्वान् वसन्त आदि ऋतुओं के अनुसार नाना प्रकार के यज्ञों का सम्पादन करते हैं तथा इनके लिये (हविः पुरोडाशं) हवि, पुरोडाश एवं (स्रुचः) स्रुवा आदि (यज्ञायुधानि) यज्ञ के विभिन्न साधनों तथा उपकरणों की व्यवस्था करते हैं। (यैः देवयानैः पथिभिः) उन यज्ञों के फल स्वरूप जिन देवयान् मार्गों से (ईजानः) यज्ञ करने वाले (स्वर्गं लोकं यन्ति) स्वर्ग लोक को जाते हैं,

(तेभिः) उन्हीं मार्गों से (याहि) तुम भी यज्ञ करके स्वर्ग लोक को जाना।

ब्राह्मणों का राष्ट्र के प्रति [illegible]

वाजंस्येमं प्रसवः सुंषुवेऽग्रे सोमꣳ
राजांनमोषंधीष्वप्सु। ता अस्मभ्यं मधुंमतीर्भवन्तु वयꣳ
राष्ट्रे जांगृयाम पुरोहिंताः स्वाहां॥

यजु. ९।२३

(वाजस्य प्रसवः अग्रे) पूर्वकाल में अन्न को उत्पन्न करने वालों ने (ओषधीषु अप्सु इमं सोमं राजानं सुषुवे) जल की सहायता से उत्पन्न होने वाली जौ, चावल आदि ओषधियों के साथ ओषधियों के राजा इस दीप्तमान् सोम को उत्पन्न किया है। (ताः अस्मभ्यम् मधुमतीः भवन्तु) वे ओषधियाँ तथा सोम हमारे लिये मधुरता से युक्त हों। (पुरोहिताः वयं राष्ट्रे जागृयाम) हम लोग पुरोहित के रूप में, राष्ट्र में अग्रसर होकर, आगे बढ़कर सदा जागृत रहें तथा समाज का मार्ग दर्शन करें, (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति समर्पित है।

सꣳशिंतं मे ब्रह्म सꣳशिंतं वीर्यं बलंम्।
सꣳशिंतं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मिं पुरोहिंतः॥

यजु. ११।८१

(यस्य अहं पुरोहितः अस्मि) मैं जिस यजमान का, यज्ञ करने वाले का पुरोहित हूँ, उसका और (मे) मेरा (संशितं ब्रह्म) वेद का ज्ञान प्रशंसा के योग्य हो, (संशितं वीर्यं बलम्) उसका पराक्रम तथा बल प्रशंसा के योग्य हो। (संशितं क्षत्रं जिष्णु) मेरे यजमान का क्षात्रबल प्रशंसनीय तथा सदा विजय प्राप्त करने वाला हो।

उदेषां बाहू अंतिरमुद्वर्चो अथो बलंम्।
क्षिणोमि ब्रह्मंणाऽमित्रानुन्नंयामि स्वाँ२ अहम्॥

यजु. ११।८२

मैं (एषां) इन शत्रुओं के, इन दुष्टों के (बाहू उत् अतितरं) बाहुबल से अधिक बलशाली बनूँ (अथो वर्चः बलं उद् अतिरं) तथा इनके तेज, पराक्रम और सामर्थ्य से अधिक तेजस्वी और शक्तिशाली बनूँ। (ब्रह्मणा अमित्रान् क्षिणोमि) मैं अपने ज्ञान के बल से अपनी मन्त्र शक्ति से शत्रुओं का नाश करता हूँ और (अहं स्वान् उत् नयामि) अपने लोगों को ऊपर उठाता हूँ, उनकी उन्नति करता हूँ।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान्यज्ञेनं बोधय।
आयुः प्राणं प्रजां पशून्कीर्तिं यजमानं च वर्धय।।

अथर्व. १९।६३।१

(ब्रह्मणस्पते) हे ब्रह्मणस्पते! हे वेद विद्वान्! (उत्तिष्ठ) उठो, जागृत हो, (यज्ञेन देवान् बोधय) यज्ञ के द्वारा देवों एवं विद्वानों को उनके कर्तव्यों का बोध कराओ तथा (यजमानं) यजमान की (आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं) आयु, प्राण, प्रजा अर्थात् सन्तान, पशु तथा कीर्ति में (वर्धय) वृद्धि करो।

वेदवाणी

ऋषि= बृहस्पतिराङ्गिरसः, देवता= ज्ञानम् (वेदवाणी)

सक्तुमिव तितंउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि।।

ऋग्. १०।७१।२

(ततउना सक्तुं इव पुनन्तः) जैसे चलनी से छानकर सत्तू को स्वच्छ तथा पवित्र किया जाता है, (धीराः यत्र मनसा वाचम् अक्रत) उसी प्रकार जहाँ विद्वान् लोग मन एवं बुद्धि से शुद्ध करके बुद्धिमत्तापूर्ण वचन बोलते हैं, (अत्र सखायः सख्यानि जानते) उस समय वहाँ उनके मित्र ज्ञानी जन, उनके भावों को, उनकी बातों के रहस्य को तथा उनके तात्पर्य को भली प्रकार समझते हैं। (एषां अधि वाचि भद्रा लक्ष्मीः निहिता) ऐसे श्रेष्ठ विद्वानों की वाणी में कल्याणमयी लक्ष्मी का निवास रहता है।

यज्ञेनं वाचः पंदवीयंमायन् तामन्वंविन्दनृषिंषु प्रविंष्टाम्।
तामाभृत्या व्यंदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नंवन्ते।।

ऋग्. १०।७१।३

विद्वान् लोग (वाचः पदवीयं यज्ञेन आयन्) उत्कृष्ट वाणी में निहित ज्ञान को यज्ञमय जीवन व्यतीत करके, निःस्वार्थ भाव से श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक पवित्र अन्तःकरण से चिन्तन एवं मनन करके प्राप्त करते हैं। (ऋषिषु प्रविष्टां तां अविन्दन्) इस प्रकार तत्वदर्शी ऋषियों में प्रविष्ट हुयी उस वाणी को विद्वानों ने प्राप्त किया (तां आभृत्य पुरुत्रा व्यदधुः) और उसे प्राप्त करके बहुत प्रकार से प्रचारित किया तथा (तां सप्त रेभाः अभि सं नवन्ते) उस वाणी को गायत्री आदि सात छन्दों में भली प्रकार छन्दोबद्ध किया।

उत त्वः पश्यन् न दंदर्श वाचंमुत त्वंः शृण्वन् न शृंणोत्येनाम्।
उतो त्वंस्मै तन्वं१ वि संस्त्रे जायेव पत्यं उशती सुवासाः।।

ऋग्. १०।७१।४

(उत त्वः वाचं पश्यन् न ददर्श) कोई तो वेदवाणी को देखता हुआ भी (अज्ञानता के कारण) नहीं देख पाता, (उत त्वः एनां शृण्वन् न शृणोति) दूसरा इस वाणी को सुनकर भी (मूर्खता के कारण) नहीं सुन पाता। (उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्त्रे) वह वेद वाणी श्रद्धा से युक्त अर्थ को जानने वाले विद्वान् को अपने ज्ञान रूपी स्वरुप को इस प्रकार प्रकट कर देती है, (पत्ये सुवासाः उशती जाया इव) जैसे सुन्दर वस्त्र पहने हुये पत्नी पति के प्रेम की कामना करते हुये अपने शरीर को उसके समक्ष प्रकट कर देती है, स्वेच्छा से खोलकर दिखा देती है।

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिंनेषु।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अंफलामंपुष्पाम्।।

ऋग्. १०।७१।५

(उत त्वं सख्ये स्थिरपीतं आहुः) किसी विद्वान् को विद्वानों के मध्य स्थिर बुद्धि वाला, वेदवाणी का अर्थ जानने वाला ज्ञानी कहते हैं।

(वाजिनेषु अपि एनं न हिन्वन्ति) वाणी पर अधिकार रखने वाले शब्दों तथा अर्थों का सही अर्थ जानने वाले, उनके रहस्य को समझने वाले ऐसे विद्वान् से श्रेष्ठ कोई नहीं होता किन्तु जो (वाचं अफलां अपुष्पां शुश्रुवान्) वाणी के फल और फूल को, उसके अर्थ तत्व और रहस्य को न समझकर केवल पढ़ता अथवा सुनता है, (एषः अधेन्वा मायया चरति) वह संसार में अज्ञान फैलाते हुये बन्ध्या गौ के समान निरर्थक जीवन व्यतीत करता है।

हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद्ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः।
अत्राहं त्वं वि जहुर्वेद्याभिरोहब्रह्माणो वि चरन्त्यु त्वे।।

ऋग्. १०।७१।८

(यत् सखायः ब्राह्मणः) जब वेदोक्त कर्मों के कर्ता समान योग्यता वाले वेदज्ञ विद्वान् ब्राह्मण (हृदा तष्टेषु मनसः जवेषु) हृदय से सूक्ष्मीकृत बुद्धियों की दौड़ों में अर्थात् हृदय तथा बुद्धि से गम्य वेदार्थ के गम्भीर चिन्तन के लिये (संयजन्ते) एकत्र होते हैं, (अह अत्र त्वं वेद्याभिः वि जहुः) तब निश्चय से वे विद्वान् उस वेदार्थ चिन्तन में बुद्धिहीन अज्ञ को छोड़ देते हैं (अह त्वे ओह ब्रह्माणः उ त्वः विचरन्ति) और दूसरे तर्क से वेद ज्ञान को उपलब्ध करने वाले अथवा तर्क ही जिनका वेदार्थ ज्ञापक महान् साधन है, वे विद्वान् उन उन ज्ञान देवता- तत्वों के ऐश्वर्यों में विचरते हैं अर्थात् परस्पर विचार विमर्श करके ज्ञान प्राप्त करते हैं।

ब्राह्मणाः= ब्रह्मज्ञातारः। (ब्रह्म को जानने वाले)

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठाः नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः।।

मनु. १।९६

भूतों में प्राण धारण करने वाले श्रेष्ठ हैं, प्राणियों में बुद्धिजीवी पशु आदि श्रेष्ठ हैं, बुद्धिजीवियों में मनुष्य श्रेष्ठ है तथा मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं।

ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः।।

मनु. १।९७

ब्राह्मणों में अधिक विद्यावान् श्रेष्ठ हैं, अधिक विद्यावानों में कर्तव्य बुद्धि श्रेष्ठ हैं, कर्तव्य बुद्धियों में कर्म कर्ता श्रेष्ठ हैं तथा कर्म कर्ताओं में वेदज्ञ श्रेष्ठ हैं।

इमे ये नार्वाङ्न परश्चरंन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकंरासः।
त एते वाचंमभिपद्यं पापयां सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रंजज्ञयः।।

ऋग्. १०।७१।९

(इमे ये न अर्वाक्) ये जो अविद्वान् इस लोक में (न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः) न तो वेदार्थ को, वैदिक ज्ञान को जानने वाले बनते हैं, न सोम यज्ञ आदि करने वाले होते हैं, (न परः चरन्ति) और न परलोक में देवों अर्थात् विद्वानों का साथ प्राप्त कर पाते हैं, (ते अप्रजयज्ञः) वे अज्ञानी (एते पापया वाचं अभिपद्य) पापों की ओर प्रवत्त करने वाली पुरुषों की इस सामान्य वाणी को ही जानकर (सिरीः तन्त्रं तन्वते) हल आदि साधनों को लेकर कृषि से संबंधित कार्य करते हैं।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदांनि जनेंभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याᳬशूद्राय चार्याय च स्वाय चारंणाय च। प्रियो देवानां दक्षिंणायै दातुरिह भूंयासमयं मे कामः समृंध्यतामुपं मादो नंमतु।

यजुर्वेद. २६।२

इस मन्त्र में ईश्वर मनुष्यों को उपदेश दे रहा है कि (यथा इमां कल्याणीं वाचं) जिस प्रकार मैं इस कल्याणी वाणी को (ब्रह्म राजन्याभ्याम् च शूद्राय च अर्याय) ब्राह्मण, क्षत्री, शूद्र तथा वैश्य एवं (स्वाय च अरणाय च जनेभ्यः) अपनों तथा परायों, सभी के लिये अर्थात् अपने प्रिय लोगों के लिये और जो प्रिय नहीं हैं उनके लिये भी, (आवदानि) कहता हूँ, उपदेश करता हूँ, (उसी प्रकार तुम भी करो और यह प्रयास करो) कि मैं (इह) इस संसार में (देवानां दक्षिणायै दातुः प्रियः भूयासम्) देवताओं का, विद्वानों का तथा दक्षिणा अर्थात् सम्मान के साथ धन देने

वालों का प्रिय बनूँ । (अयं मे काम: समृध्यताम्) मेरी यह कामना समृद्ध हो, पूर्ण हो (अद: मा उपनमतु) तथा यह कामना पूर्ण होने का सुख मुझे प्राप्त हो ।

उक्त मन्त्र के अनुसार हमें सभी लोगों को वेदवाणी का उपदेश करना चाहिये और यह प्रयास करना चाहिये कि इस संसार में हम उदारमना, दानशील श्रेष्ठ व्यक्तियों तथा देवों एवं विद्वानों की दक्षिणा अर्थात् उनके द्वारा किये जाने वाले सम्मान तथा सत्कार एवं उनके द्वारा दिये जाने वाले धन अथवा ज्ञान के दान के लिये उनके प्रिय बनें । हमें यह भी प्रयास करना चाहिये कि हमारी यह कामना अथवा उद्देश्य उत्तमता से समृद्धि को प्राप्त हो तथा हमें ऐसा करने से सुख एवं यश प्राप्त हो ।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्।।

मनु.४।२३३

जल, अन्न, गौ, भूमि, तिल, सोना, घी आदि समस्त वस्तुओं के दानों से ब्रह्मदान अर्थात् वैदिक ज्ञान का दान श्रेष्ठ है।

वैदिक ज्ञान के प्रचार प्रसार के लिये त्यागी ब्राह्मणों को प्रेरित करने वाला कितना सुन्दर मन्त्र है यह ! इस अत्यन्त महत्वपूर्ण मन्त्र में दो शिक्षायें दी गई हैं । मन्त्र के प्रथम भाग में भगवान् ने स्वयं यह स्पष्ट कर दिया है कि चारों वेदों की यह पवित्र कल्याणमयी वाणी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य सभी वर्गों के लिये समान रूप से है । इसका ज्ञान प्राप्त करने में, इसका अध्ययन करने में किसी के लिये किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है । यदि कोई अल्पज्ञ, स्वार्थी अथवा अन्यायी व्यक्ति कोई प्रतिबन्ध लगाता है तो वह भगवान् के इस स्पष्ट निर्देश के सर्वथा प्रतिकूल होने के कारण मान्य नहीं हो सकता । मन्त्र के दूसरे भाग में विद्वानों को विशेषतया ब्राह्मणों को, जिन पर वैदिक ज्ञान के प्रचार प्रसार का गुरुतर दायित्व है, यह शिक्षा दी गई है कि वे सबको वेदवाणी का उपदेश दें और इस कार्य में उदारमना, दानी महापुरुषों तथा अन्य विद्वानों की सहायता एवं सहयोग प्राप्त करें । यही उनकी वास्तविक दक्षिणा है ।

वैदिक ज्ञान का प्रचार प्रसार करके जगते का कल्याण करने वाले ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मणों के जीवन की यही कामना होनी चाहिये और उन्हें भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिये कि उनकी यह कामना और भी बलवती हो तथा वह इसकी पूर्ति करके परम आनन्द का अनुभव प्राप्त कर सकें।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अनेक तथाकथित विद्वानों ने अपने पूर्वाग्रह के कारण जानबूझकर इस मन्त्र का भ्रामक एवं अशुद्ध अर्थ किया है ताकि यह न कहा जा सके कि वेद में शूद्रों तथा महिलाओं को वेद पढ़ने का अधिकार दिया गया है। अतः यह आवश्यक है कि ऐसे दुराग्रह पूर्ण अर्थों को अमान्य कर दिया जाय।

यह हास्यास्पद है कि ऐसे दुराग्रही लोगों को विदेशियों के वेद पढ़ने में आपत्ति नहीं है, किन्तु अपने भाई बहनों के वेद पढ़ने पर आपत्ति है।

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे॥

यजु. ३४।५७, ऋग्. १।४०।५

(नूनम्) निश्चय ही (ब्रह्मणस्पतिः) वेदों का रक्षक एवं स्वामी परमात्मा, (उक्थ्यम् मन्त्रं प्र वदति) बोलने तथा सुनने योग्य उन पवित्र वेद मंत्रों का उपदेश करता है, (यस्मिन् इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा देवाः ओकांसि चक्रिरे) जिनमें इन्द्र, वरुण, मित्र तथा अर्यमा देव निवास करते हैं।

तमिद् वोचेमा विदथेषु शंभुवं मन्त्रं देवा अनेहसम्।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद् वामा वो अश्नवत्॥

ऋग्. १।४०।६

(देवाः) हे विद्वानो! (विदथेषु) यज्ञों में तथा विद्या के पठन पाठन आदि कार्यों में (तं इत् शंभुवं अनेहसं मन्त्रं) इस कल्याणकारी, सुखदायी पवित्र मंत्र का ही (वोचेम) उच्चारण करो, (नरः) हे लोगो! (इमां वाचं प्रतिहर्यथ च) इस वेदवाणी का बार बार अध्ययन, मनन करने से, इस पर

श्रद्धा करने से, (विश्वा इत् वामा वः अश्नवत्) तुम्हें सब प्रकार के सुख प्राप्त होंगे।

सूर्योदय से पहले उठने का लाभ

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान् प्रतिगृह्या नि धत्ते।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः॥

ऋग्. १।१२५।१

सूर्य (प्रातः प्रातः इत्वा) सबेरे सबेरे आकर लोगों को (रत्नं दधाति) रत्न देता है। (तं चिकित्वान्) बुद्धिमान् सुन्दर वीर पुरुष उसके महत्व को जानकर (प्रतिगृह्य नि धत्ते) उस धन को गृहण करके अपने पास सुरक्षित रख लेता है और (तेन आयुः प्रजां वर्धयमानः) उससे अपनी आयु तथा सन्तानों की वृद्धि करते हुये (रायः पोषेण सचते) धन और पुष्टि से अर्थात् ऐश्वर्य एवं स्वास्थ्य प्राप्त करता है।

उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः।
पृणन्तं च पपुरिं च श्रवस्यवो घृतस्य धारा उप यन्ति विश्वतः॥

ऋग्. १।१२५।४

(ईजानं च यक्ष्यमाणं च) इस समय यज्ञ करने वालों तथा जो भविष्य में यज्ञ करने वाले हैं, उनके लिये (मयोभुवः सिन्धवः क्षरन्ति) सुख देने वाली नदियाँ बहती हैं। (पृणन्तं पपुरिं च) सब को सुखी करने वाले तथा धन से तृप्त एवं सन्तुष्ट करने वाले को (श्रवस्यवः धेनवः) अन्न की इच्छा करती हुयी गायें (घृतस्य धारा उपयन्ति) सब ओर से घृत की धारायें उपलब्ध कराती हैं, दुग्ध, घृत आदि से सम्पन्न करती हैं।

दक्षिणा

नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति,
श्रितो यः पृणाति स ह देवेषु गच्छति।
तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धव-,
स्तस्मा इयं दक्षिणा पिन्वते सदा॥

ऋग्. १।१२५।५

(श्रितः यः प्रणाति) जो अपने आश्रितों को धन धान्य से पूर्ण करता है, (नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति) वह स्वर्ग में जाकर वहाँ सुखी होकर रहता है, निवास करता है। (सह देवेषु गच्छति) वह देवों के साथ विराजमान होता है, देवत्व प्राप्त करता है। (सिन्धवः आपः तस्मै घृतं अर्षन्ति) नदियाँ तथा अन्य जल प्रवाह उसके लिये जल को प्रावहित करते हैं, (तस्मै इयं दक्षिणा सदा पिन्वते) तेज को बढ़ाने वाली यह दक्षिणा उसे सदा प्रसन्न तथा सुखी रखती है।

दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तःप्र तिरन्त आयुः।।

ऋग्. १।१२५।६

(इमानि चित्रा) ये सुन्दर समृद्धियाँ (दक्षिणावतां) दक्षिणा देने वालों के लिये हैं, (दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः) दक्षिणा देने वालों के लिये यह सूर्य द्युलोक में प्रकाशित होता है, (दक्षिणावन्तः अमृतं भजन्ते) दक्षिणा देने वाले मोक्ष को प्राप्त करते हैं, (दक्षिणावन्तः आयुः प्र तिरन्त) दक्षिणा देने वाले अपनी आयु सुख पूर्वक व्यतीत करते हैं।

दैवी पूर्तिदक्षिणा देवयज्या न कवारिभ्यो नहि ते पृणन्ति।
अथा नरः प्रयतदक्षिणासो ऽवद्यभिया बहवः पृणन्ति।।

ऋग्. १०।१०७।३

(देवयज्या दक्षिणा दैवी पूर्तिः) देवों के निमित्त किये गये यज्ञ में, विद्वानों को आदर सत्कार से दी जाने वाली दक्षिणा, पवित्र यज्ञ कर्म की पूर्ति करने वाली होती है। (न कव अरिभ्यः) यह दक्षिणा यज्ञ कर्म न करने वालों को प्राप्त नहीं होती क्योंकि (ते नहि पृणन्ति) वे देवों को प्रसन्न नहीं करते, (अथ बहवः प्रयत दक्षिणासः नरः अवद्यभिया पृणन्ति) और जो बहुत से लोग पवित्र दक्षिणा देने वाले तथा निन्दा एवं पाप से डरने वाले होते हैं, वे देवों को प्रसन्न करते हैं।

न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजाः।
इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चैतत् सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति।।

ऋग्. १०।१०७।८

(भोजाः न मम्रुः नि अर्थं न ईयुः) धन आदि का दान करने वाले उदार लोग कभी अकाल मृत्यु, निकृष्ट गति तथा दरिद्रता को प्राप्त नहीं होते। (न रिष्यन्ति भोजाः न व्यथन्ते) दान देने वालों का यश अमर होता है, वे हिंसा, कष्टों और दुःखों को प्राप्त नहीं होते, (इदं यत् विश्वं भुवनं स्वः च एतत् सर्वं दक्षिणा एभ्यः ददाति) यह जो समस्त जगत् का तथा स्वर्ग का सुख है, वह सुख उनको दक्षिणा प्राप्त कराती है।

भोजमश्वाः सुष्ठुवाहो वहन्ति सुवृद्रथो वर्तते दक्षिणायाः।
भोजं देवासोऽवता भरेषु भोजः शत्रून्त्समनीकेषु जेता।।

ऋग्. १०।१०७।११

(सुष्ठुवाहः अश्वाः भोजं वहन्ति) उत्तम रीति से वहन करने वाले अश्व, दाता का वहन करते हैं, (दक्षिणायाः सुवृत् रथः वर्तते) दक्षिणा देने वाले का रथ उत्तम चक्रों अर्थात् पहियों आदि से युक्त होता है, (देवासः भरेषु भोजं अवत) हे देवो! तुम संग्रामों में, जीवन के संघर्षों में दाता की रक्षा करो। (भोजः समनीकेषु शत्रून् जेता) दाता युद्ध में शत्रुओं को जीतने वाला होता है।

दक्षिणा- समृद्धि अर्थक 'दक्ष' धातु से 'इनन्', प्रत्यय यह निर्धन को समृद्ध बना देती है अथवा अपूर्ण यज्ञ को पूर्ण बना देती है क्योंकि बिना दक्षिणा के यज्ञ अधूरा होता है।

दान

न वा उं देवाः क्षुधमिद्वधं,
ददुरुताशितमुपं गच्छन्ति मृत्यवः।
उतो रयिः पृणतो नोपं दस्य-,
त्युतापृणन् मर्डितारं न विन्दते।।

ऋग्. १०।११७।१

(आशितः मृत्यवः उप गच्छन्ति) यद्यपि अन्न खाने वाले पुरुष की भी मृत्यु होती है किन्तु (देवाः क्षुधं न ददुः वधं इत्) देवों ने सब प्राणियों को

जो क्षुधा अर्थात् भूख दी है, वह क्षुधा नहीं अपितु मृत्यु ही है क्योंकि क्षुधा समाप्त न होने से अन्न के बिना प्राणी की निश्चय ही मृत्यु हो जाती है। (उतो पृणतः रयिः न उप दस्यति) दान देने वाले व्यक्ति का धन कभी नष्ट नहीं होता (उत अप्रणन् मर्डितारं न विन्दते) और दान न देने वाले को सुख देने वाला कोई नहीं मिलता, उसे किसी से भी सुख प्राप्त नहीं होता।

य आध्राय चकमानाय पित्वोऽन्नवान्त्सन् रफितायोपजग्मुषे।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित् स मर्डितारं न विन्दते।।

ऋग्. १०।११७।२

(यः अन्नवान् सन् आध्राय पित्वः चकमानाय) जो अन्नवान होता हुआ भी दुर्बल, को अन्न मांगने वाले बुभुक्षित याचक को, (रफिताय उपजग्मुषे मनः स्थिरं कृणुते) दरिद्र मनुष्य को तथा घर पर याचनार्थ आये व्यक्ति को देखकर हृदय को निष्ठुर कर लेता है, दान देने की इच्छा नहीं करता और (पुरा सेवते) उसके सामने ही स्वयं भोजन करता है, (सः मर्डितारं न विन्दते) उसे कोई सुख देने वाला प्राप्त नहीं होता, वह कभी सुखी नहीं हो सकता।

स इद्भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम्।।

ऋग्. १०।११७।३

(सः इत् भोजः यः गृहवे अन्नकामाय चरते कृशाय ददाति) वही सच्चा दाता है, जो क्षुधा से व्याकुल, अन्न की इच्छा से भिक्षा मांगने वाले कृशकाय निर्बल व्यक्ति को अन्न देता है, (यामहूतौ अस्मै अरं भवति) उसे यज्ञ का पूर्ण फल प्राप्त होता है और (उत अपरीषु सखायं कृणुते) वह शत्रुओं में भी अपना मित्र बना लेता है।

न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः।
अपास्मात् प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत्।।

ऋग्. १०।११७।४

(न सः सखा यः सचाभुवे सचमानाय सख्ये पित्वः न ददाति) वह

मित्र नहीं है जो साथ रहने वाले और सेवा करने वाले मित्र को अन्न नहीं देता। (अस्मात् अप प्रेयात्) ऐसे व्यक्ति को छोड़कर चला जाना ही उचित है, (तत् ओकः न अस्ति) उसका घर रहने योग्य नहीं होता। (पृणन्तं अन्यं अरणं चित् इच्छेत्) जो दूसरे को अन्न से तृप्त करता है, उसी धनवान् व्यक्ति को लोग चाहने लगते हैं।

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम्।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा ऽन्यमन्यमुपं तिष्ठन्त रायः।।

ऋग्. १०।११७।५

(तव्यान् नाधमानाय पृणीयादित्) सम्पन्न मनुष्य अवश्य ही याचना करने वाले को धन देकर प्रसन्न करे। (द्राघीयांसं पन्थां अनु पश्येत्) वह बहुत दूर तक का, स्वर्ग तक जाने का मार्ग देखे अर्थात् उसे पुण्य के फल स्वरूप स्वास्थ्य एवं उत्तम लोक प्राप्त होता है। (रथ्या चक्रा इव ओ हि रायः वर्तन्ते) ये धन सम्पत्ति आदि निरन्तर नीचे ऊपर घूमने वाले रथ के पहियों के समान घूमते रहते हैं और (अन्यं अन्यं अपतिष्ठन्त) एक दूसरे के पास आते जाते रहते हैं, किसी के पास स्थित होकर नहीं रहते।

भोजायाश्वं सं मृंजन्त्याशुं भोजायांस्ते कन्या३ शुम्भंमाना।
भोजस्येदं पुंष्करिणीव वेश्म परिष्कृतं देवमानेव चित्रम्।।

ऋग्. १०।१०७।१०

(भोजाया आशुं अश्वं सं मृजन्ति) दूसरों को पालन करने वाले दाता के लिये अलंकृत करके आशुगामी अश्व दिया जाता है। (भोजाय शुम्भमाना कन्या आस्ते) दूसरों का पालन पोषण करने वाले दाता को विवाह में सुन्दर गुणवती कन्या प्राप्त होती है। (भोजस्य इदं वेश्म) दाता तथा पालक का यह गृह, (पुष्करिणी इव परिष्कृतं) पद्म पुष्पों से सुभूषित एवं पवित्र पुष्करिणी के समान होता है तथा (देवमाना इव चित्रम्) देव निर्मित राजप्रासाद की तरह दर्शनीय होता है।

शतंहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर ।
कृतस्यं कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ।।

अथर्ववेद. ३।२४।५

सौ हाथों से धन का संग्रह करो, हज़ार हाथों से दान करो। अपने कार्यक्षेत्र तथा कर्तव्य क्षेत्र का विस्तार करो।

यानीन्मान्युत्तमानीह वेदोक्तानि प्रशंससि ।
तेषां श्रेष्ठतमं दानमिति मे नात्र संशयः ।।

महाभारत, अध्याय, १२०।१७

महर्षि व्यास मैत्रेय से कहते हैं कि तुम जिन जिन वेदोक्त उत्तम कर्मों की यहाँ प्रशंसा कर रहे हो, उन सब में दान ही श्रेष्ठतम है, इस विषय में मुझे संशय नहीं है।

अन्न का दान

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ।।

ऋग्. १०।११७।६

(अप्रचेताः मोघं अन्नं विन्दते) दान न देने वाला मनुष्य व्यर्थ ही अन्न को प्राप्त करता है। (सत्यं ब्रवीमि) मैं सत्य कहता हूँ कि (तस्य सः वधः इत्) वह दान न दिया हुआ अन्न न देने वाले के लिये घातक होता है, मृत्यु के समान होता है। (अर्यमणं न पुष्यति नो सखायं) जो न तो देवों को हवि अर्पण करता है और न आश्रित को अर्थात् पालन पोषण करने योग्य मित्र को अन्न देता है और जो दूसरे को अन्न न देकर केवल स्वयं ही खाता है, (केवलादी केवलाघः भवति) ऐसा अकेले खाने वाला व्यक्ति केवल पाप का ही भागी होता है, पाप को ही खाने वाला होता है।

अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात् ।
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते ।।

मनु. ३।११८

जो पुरुष अपने आश्रितों तथा भूखे व्यक्तियों को भोजन न देकर स्वयं अकेला ही भोजन करता है, वह अन्न को नहीं बल्कि केवल पाप को ही खाता है। यज्ञ से बचा हुआ अन्न ही सत्पुरुषों का भोजन कहा गया है।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।। गीता. ३।१३

यज्ञ से शेष बचे हुये अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं, जो पापी लोग केवल अपने लिये ही भोजन पकाते हैं, वे तो पाप को ही खाते हैं।

(पृणन् अपिः अपृणन्तं अभि स्यात्) दाता मनुष्य अदाता से श्रेष्ठ होता है।

अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम।
यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि।।

साम. ६।३।१०।९, क्र.सं. ५९४

(अहं प्रथमजा ऋतस्य अस्मि) मैं सर्वप्रथम सत्य को उत्पन्न करने वाला, सत्य का प्रथम प्रवर्तक हूँ, (पूर्वं देवेभ्यः अमृतस्य नाम) समस्त देवों से पूर्व प्रकट होने वाला तथा अमृत नाम वाला हूँ, अमृत का केन्द्र हूँ। (अहं अन्नं) मैं अन्न हूँ, (यः मां ददाति) जो अन्न स्वरुप मुझे दूसरे भूखे प्राणी को देता है, (सः इत् एवं आवत) वह इस प्रकार देने से उसकी रक्षा करता है, (अन्नं अदन्तं अद्मि) किन्तु जो दूसरे को न देकर, स्वयं अकेले ही अन्न को खाता है, उसे मैं खा जाता हूँ, नष्ट कर देता हूँ।

वास्तव में भूखे प्राणी के लिये अन्न ही परमात्मा का स्वरूप है। अन्न एवं अन्न के दान के सम्बन्ध में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण मन्त्र है।

तैत्तिरीय उपनिषद् की समाप्ति 'अहम् अन्नम् अहम् अन्नम्' मन्त्र से ही हुयी है।

अन्न के महत्व को बताते हुये तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है-

अन्नं न निन्द्यात्। तद्व्रतम्। -तैत्ति. उप. ३।७

अन्न की निन्दा न करे, यह व्रत है।

अन्नं न परिचक्षीत। तद्व्रतम्।- तैत्ति. उप. ३।८

अन्न की अवहेलना न करे, यह व्रत है।

अन्नं बहुकुर्वीत। तद्व्रतम्।- तैत्ति. उप. ३।९

अन्न की वृद्धि करे। बहुत सा अन्न उत्पन्न करे। यह व्रत है।

स पंचामि स दंदामि स यंजे स दुत्तान्मा यूंषम्।।

अथर्व. ६।१२३।४

(सः पचामि) वह मैं भोजन पकाता हूँ, (सः ददामि) वह मैं दान करता हूँ, (सः यजे) वह मैं यज्ञ करता हूँ, (सः दत्तात् मा यूषम्) वह मैं दान से पृथक् न होऊँ।

सत्य

हिरण्मयेंन पात्रेंण सत्यस्यापिंहितंमुखंम्।
योऽसावांदित्ये पुरुंषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्मं।।

यजु. ४०।१७

(सत्यस्य मुखम् हिरण्मयेन पात्रेण अपिहितम्) सत्य का मुख हिरण्मय पात्र से ढंका हुआ है। (यो असौ आदित्ये पुरुषः) जो वह आदित्य में पुरुष अर्थात् पूर्ण परमात्मा है, (सः असौ अहम्) वही (असौ) प्राणों में रहने वाला मैं (जीवात्मा) हूँ। (ओ३म् खं ब्रह्म) आकाश के समान सर्वव्यापक ब्रह्म ओ३म् है, अर्थात् ओ३म् पद वाच्य है।

'आदित्ये पुरुषः' में आदित्य का उल्लेख प्रतीकात्मक है, शतपथ. ब्रा. १४।५।५।१२-२२ में आदित्य के स्थान पर पृथिवी, जल, अग्नि, आकाश, वायु, आदित्य, चन्द्र, समस्त दिशायें, विद्युत, बादलों का गरज़ना, धर्म, सत्य, मनुष्य तथा आत्मा का उल्लेख किया गया है क्योंकि पूर्ण पुरुष परमात्मा तो सर्वव्यापक है।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छंकेयं तन्में राध्यताम्।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि।।

यजु. १।५

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म! (व्रतपते) आप हमारे व्रत की रक्षा करने वाले हैं, (व्रतं चरिष्यामि) मैं व्रत का आचरण करूँगा। (तत् शकेयम्) मुझे उसके लिये शक्ति दीजिये ताकि मैं व्रत पर आचरण कर सकूँ। (तत् मे राध्यताम्) मेरा वह व्रत आप पूर्ण कराइये। (इदं अहम् अनृतात् सत्यं उपैमि) व्रत यह है कि मैं असत्य से सत्य को प्राप्त होता हूँ।

न वा उ सोमो वृजिनं हिंनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयंन्तम्।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद् वदंन्तमुभाविन्द्रंस्य प्रसिंतौ शयाते।।

अथर्व. ८।४।१३

(सोमः वृजनम् न वा उ हिनोति) सोम अर्थात् परमात्मा निश्चय ही पाप और पापी की वृद्धि में सहायता नहीं देता, (मिथुया धारयन्तम् क्षत्रियम्) वह मिथ्या व्यवहार करने वाले, अनुचित आचरण करने वाले, छल कपट करने वाले क्षत्रिय की भी सहायता नहीं करता। (रक्षः हन्ति) वह राक्षसों का हनन करता है (असत् वदन्तम् हन्ति) तथा असत्य बोलने वाले का भी हनन करता है। (उभौ इन्द्रस्य प्रसितौ शयाते) वह दोनों अर्थात् राक्षस स्वभाव वाले तथा असत्य बोलने वाले लोग इन्द्र के बन्धन में रहते हैं।

व्रतेनं दीक्षामांप्नोति दीक्षयांऽऽप्नोति दक्षिंणाम्।
दक्षिंणा श्रद्धामांप्नोति श्रद्धयां सत्यमांप्यते।।

यजु. १९।३०

(व्रतेन दीक्षाम् आप्नोति) व्रतों अर्थात् यमों एवं नियमों के पालन करने से दीक्षा अर्थात् ज्ञान एवं योग्यता प्राप्त होती है, (दीक्षया दक्षिणाम् आप्नोति) योग्यता होने से पुरुष, दक्षिणा अर्थात् सम्मान एवं धन प्राप्त करता है, (दक्षिणा श्रद्धाम्) दक्षिणा से श्रेष्ठ आचरण एवं सत्य के प्रति श्रद्धा प्राप्त होती है (श्रद्धया सत्यं आप्यते) और श्रद्धापूर्वक प्रयास करने पर सत्य स्वरुप परमात्मा की प्राप्ति होती है। श्रद्धा के बिना सत्य तथा ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

यम तथा नियम व्रत हैं, जिनका पालन करना मनुष्य की उन्नति के

लिये आवश्यक है। अपने कार्य, उद्देश्य, देश तथा धर्म एवं परमात्मा के प्रति श्रद्धा के बिना मनुष्य न उन्नति प्राप्त कर सकता है और न ही जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

सत्येनोत्तंभिता भूमिः सूर्येणोत्तंभिता द्यौः।
ऋतेनादित्यास्तिंष्ठन्ति दिवि सोमो अधिं श्रितः।।

अथर्व. १४।१।१, ऋग्. १०।८५।१

(सत्येन भूमिः उत्तभिता) सत्य स्वरूप परब्रह्म ने अथवा भगवान् के सत्य नियमों ने पृथिवी को आकाश में ऊपर धारण किया है, (सूर्येण द्यौः उत्तभिता) सूर्य ने द्युलोक को धारण किया है अर्थात् अपनी आकर्षण शक्ति से गृहों तथा नक्षत्रों आदि की क्रियाओं को नियन्त्रित करता है। (ऋतेन आदित्याः तिष्ठन्ति) भगवान् के सत्य नियमों से आदित्य आदि सभी देवता अपना अपना निर्धारित कार्य करते हुये स्थित रहते हैं। (दिवि सोमः अधि श्रितः) द्युलोक में सोम अर्थात् परमात्मा ऊपर परम व्योम में स्थित है ।

तात्पर्य यह है कि सारा ब्रह्माण्ड सत्य तथा ऋत अर्थात् भगवान् के सत्य नियमों पर आधारित है।

दृष्ट्वा रूपे व्याकंरोत् सत्यानृते प्रजापंतिः। अश्रंद्धामनृतेऽदंधाच्छ्रद्धाꣳ सत्ये प्रजापंतिः। ऋतेनं सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धंस इन्द्रंस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधुं।।

यजु. १९।७७

(प्रजापतिः ऋतेन सत्यानृते दृष्ट्वा वि आ अकरोत्) प्रजापति ने अपने सत्य ज्ञान से सत्य और असत्य के वास्तविक स्वरूप को देखकर उनको अलग अलग किया और (अनृते अश्रद्धां अदधात्) असत्य में अश्रद्धा तथा (सत्ये श्रद्धाम्) सत्य में श्रद्धा को स्थापित किया। (ऋतेन सत्यम्) भगवान् के सत्य नियमों का आचरण करने से, यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म करने से (विपानं इन्द्रियं अन्धसः शुक्रं इन्द्रस्य इन्द्रियं इदं पयः अमृतं मधु)

पान करने योग्य विविध प्रकार के रस, श्रेष्ठ मार्ग में चलने वाली इन्द्रियाँ, पवित्र अन्न, इन्द्र के समान ऐश्वर्य, दुग्ध तथा यह अमृत के समान मधु अथवा जीवन का माधुर्य एवं सुख प्राप्त होता है।

भगवान् का निर्देश है कि हमें केवल सत्य में श्रद्धा करना चाहिये, असत्य में नहीं, चाहे वह कितना ही आकर्षक क्यों न हो, कितने ही स्वर्णिम सजावट तथा वैभव से युक्त दिखायी देता हो।

'सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन्'। -ऋग्. ९।७३।१

सत्य की नाव पर बैठ कर श्रेष्ठ कर्म करने वाले पुरुष ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं, सफलता प्राप्त करते हैं।

सत्वानुरुपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।।

गीता,१७।३

(भारत! सर्वस्य श्रद्धा सत्वानुरुपा भवति) हे भारत! सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अन्तःकरण के अनुरुप होती है। (अयं पुरुषः श्रद्धामयः) यह पुरुष श्रद्धामय है। (यः यत् श्रद्धः सः एव सः) जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही होता है।

सत्यं वै चक्षुः सत्यꣳ हि वै चक्षुः। शतपथ. १।३।१।२७

सत्य चक्षु है। सत्य चक्षु ही है क्योंकि किसी विषय में विवाद उत्पन्न हो जाय और एक कहे कि मैने देखा है और दूसरा कहे मैने सुना है तो देखे हुये की बात पर श्रद्धा की जाती है।

ऋत

ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः।
तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे नरः स्याम ये च सूरयः।।

ऋग्. ७।६६।१३

(ऋतावानः ऋतजाताः) सत्य परायण, सत्य निष्ठा के लिये प्रसिद्ध, (ऋतावृधः घोरासः अनृतद्विषः) सत्य को बढ़ाने वाले और असत्य से घोर द्वेष करने वाले (ये च) जो लोग हैं, (तेषां सुच्छर्दिः तमे सुम्ने वः)

उनके सुख देने वाले उत्तम मार्ग में तुम लोग चलो और प्रयास करो कि (सूरयः नरः स्याम) हम उनके समान तेजस्वी हो जायँ।

ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः।।

ऋग्. ४।२३।८

(ऋतस्य हि शुरुधः पूर्वीः सन्ति) निःसन्देह ऋत अर्थात् भगवान् के सत्य नियमों की शक्तियाँ पूर्ण तथा सनातन हैं, (ऋतस्य धीतिः वृजिनानि हन्ति) ऋत से पूर्ण बुद्धि, ऋत का चिन्तन अथवा विचार वर्जन करने योग्य पापों का नाश करता है। (ऋतस्य बुधानः शुचमानः श्लोकः) ऋत की महिमा, ऋत के पवित्र ज्ञान मय स्तोत्र (आयोः कर्णा बधिरा ततर्द) बहरे मनुष्य के कानों को भी खोल देते हैं।

अगले मन्त्र में कहा गया है-

'ऋतस्य दृढ़ा धरुणानि सन्ति'। ऋत की धारक शक्तियाँ दृढ हैं।

'ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः'। -ऋग्. ९।७३।६

बुरे कर्म करने वाले लोग सत्य के मार्ग को पार नहीं कर सकते अर्थात् सत्य पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते।

श्रद्धा

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि।।

ऋग्वेद. १०।१५१।१

(श्रद्धया अग्निः समिध्यते) श्रद्धापूर्वक यज्ञ की अग्नि प्रदीप्त की जाती है, (श्रद्धया हविः हूयते) श्रद्धापूर्वक ही उसमें हवि की आहुति दी जाती है। (श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा आ वेदयामसि) श्रद्धा को भग अर्थात् ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य में वाणी के द्वारा सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है।

श्रद्धा सत्यनाम। निघण्टु. ३।७

भग ऐश्वर्यादिषट्कम् 'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना।' समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य, ये छः भग के अङ्ग हैं।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः।।

ऋग्. १०।१५१।५

(श्रद्धां प्रातः हवामहे) हम प्रातःकाल श्रद्धा का आवाहन करते हैं, श्रद्धा पूर्वक कार्य करते हैं,(मध्यन्दिनं परि श्रद्धाम्) मध्याह्न में श्रद्धा का आवाहन करते हैं, (सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धाम्) सूर्यास्त के समय श्रद्धा का आवाहन करते हैं। (श्रद्धे) हे श्रद्धे! (नः इह श्रद्धापय) इस संसार में हमें श्रद्धावान् बनाओ।

दुःस्वप्न नाश

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये वृक्षानं वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः।।

अथर्व. ६।४५।१

(मनस्पाप) हे मन के पाप! (परः अप इहि) दूर हट जा। (किम् अशस्तानि शंसति) क्यों तू अप्रश्सत कर्मों की प्रशंसा करता है, बुरी बातें कहता है? (परा इहि) दूर चला जा। (त्वा न कामये) मैं तुम्हें नहीं चाहता। (वृक्षान् वनानि संचर) तुम जाकर वनों में और वृक्षों में संचरण करो। (मे मनः गृहेषु गोषु) मेरा मन अपने घरों में तथा गौवों में लगा है।

सप्त मर्यादायें

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामिदेकामभ्यंहुरो गात्।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ।।

अथर्व. ५।१।६

(कवयः सप्त मर्यादाः ततक्षुः) तत्वदर्शी ज्ञानियों ने सात मर्यादायें

निश्चित की हैं, (तासां एकां इत् अभि) उनमें से यदि एक का भी उल्लंघन किया तो (अंहुरः गात्) मनुष्य पाप का भागी हो जाता है, पापी बन जाता है। जो सदाचारी श्रेष्ठ पुरुष इन मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करता अर्थात् जो ये सात दुष्कर्म नहीं करता, वह (आयोः स्कम्भः ह) आयु के, जीवन के आधार स्तम्भ के समान (उपमस्य नीडे) उपमा देने योग्य अथवा प्राप्त किये जाने योग्य परमात्मा के, (धरुणेषु तस्थौ) पुण्य कर्म करने वालों को धारण करने वाले, उस लोक को प्राप्त होता है, (पथां वि सर्गे) जहाँ पहुँचकर सभी मार्ग समाप्त हो जाते हैं अर्थात् जो सभी मार्गों के पहुँचने का अन्तिम गन्तव्य स्थान है।

उपरोक्त सात मर्यादायें अर्थात् सात दुष्कर्म जिन्हें नहीं करना चाहिये, निम्नाङ्कित हैं-

स्तेयम्, तल्पारोहणम्, ब्रह्महत्याम्, भ्रूणहत्याम्, सुरापानं, दुष्कृतस्य कर्मणः पुनः पुनः सेवाम्, पातकेऽनृतोद्यम्।

निरुक्त. ६।५।२७।१११

१. स्तेयम्- चोरी करना
२. तल्पारोहणम्- परस्त्री गमन करना
३. ब्रह्महत्या- वेदज्ञ ब्राह्मणों की हत्या
४. भ्रूण हत्या- गर्भस्थ बच्चे की हत्या अर्थात् गर्भपात
५. सुरापान- सुरा तथा अन्य मादक पदार्थों का सेवन
६. किसी बुरे कर्म को बार बार जान बूझकर करना
७ किये गये पाप कर्म को असत्य बोलकर छिपाना

दुष्टों का नाश

परः सो अस्तु तन्वा३ तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो नो दिवा दिप्सति यश्च नक्तम्।।

ऋग्. ७।१०४।११

(देवाः) हे देवो! (सः तन्वा तना च परः अस्तु) वह दुष्ट अपने शरीर से तथा सन्तान से रहित हो जाय, नष्ट हो जाय, (विश्वाः तिस्रः

पृथिवीः अधः अस्तु) वह तीनों लोकों तथा पृथिवी के सब स्थानों से नीचे गिर जाय, (अस्य यशः प्रति शुष्यतु) उसका यश सूख जाय, नष्ट हो जाय, (यः नः दिवा दिप्सति यः नक्तं) जो हमें दिन में तथा जो रात में कष्ट देता है, हानि पहुँचाता है।

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र।।

अथर्व. ८।४।२२, ऋग्.७।१०४।२२

(इन्द्र) हे इन्द्र! (उलूकयातुं) उल्लू के समान आचरण करने वाले, (शुशुलूकयातुं) भेड़िये के समान आचरण करने वाले, (श्वयातुं) कुत्ते के समान आचरण करने वाले, (सुपर्णयातुं) गरुड़ के समान आचरण करने वाले, (उत कोकयातुं) कोक पक्षी के समान आचरण करने वाले (उत गृध्रयातुं) तथा गिद्ध के समान आचरण करने वाले, (रक्षः) जो राक्षस हैं, उनको (जहि) इस प्रकार पीस कर मार दीजिये, जैसे (दृषदा एव प्रभृण) चक्की के पाटों में अनाज को पीसा जाता है।

१. उलूकयातुं- उल्लू के समान रात्रि में विचरण करके दूसरों को डरा करके हानि पहुँचाने वाले।

२. शुशुलूकयातुं- भेड़ियों आदि जंगली जानवरों की तरह बच्चों आदि का शिकार करने वाले।

३. श्वयातुं- कुत्तों की तरह निरर्थक भौंकने वाले, आपस में झगड़ा करने वाले तथा दूसरों के भोजन आदि को चुराकर या झपट कर खाने वाले।

४. कोकयातुं- कोक पक्षी के समान कामी, दुराचारी।

५. सुपर्णयातुं- गरुण के समान सर्प आदि का शिकार करने वाले।

६. गृध्रयातुं- गिद्ध की तरह लालची, दूसरों की चीज़ों को झपट लेने वाले तथा गंदे मांस आदि को खाने वाले।

ये जनेषु मलिम्लव स्तेनासस्तस्करा वने।
ये कक्षेष्वघायवस्ताँस्ते दधामि जम्भयोः।।

यजु. ११।७९

(ये जनेषु मलिम्लव स्तेनासः) मनुष्यों में जो मलिन अथवा नीच आचरण वाले तथा चोर हैं, जो (वनेः तस्कराः) वन प्रदेश में तस्कर तथा लुटेरे हैं, (ये कक्षेषु अघायवः) जो बन्द स्थानों , कमरों आदि में पाप करने वाले तथा मनुष्यों का प्राण हरण करने वाले हैं, (तान् ते जम्भयोः दधामि) उनको आपके दाढ़ों के अन्दर आपके द्वारा खाये जाने के लिये रखता हूँ।

यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः।
निन्दाद्यो अस्मान्धिप्साच्च सर्वं तं मस्मसा कुरु।।

यजु. ११।८०

(यः जनः अस्मभ्यं अरातीयात्) जो मनुष्य हमसे शत्रुता करे (च यः नः द्वेषते) और जो हमसे द्वेष करे, (यः निन्दात्) जो हमारी निन्दा करे तथा (च अस्मान् धिप्सात्) जो दम्भ पूर्वक हमको डराये, धमकाये, (सर्वं तं भस्मसा कुरु) उन सब को भस्म कर देना चाहिये, नष्ट कर देना चाहिये।

कहीं कहीं पर 'भस्मसा' के स्थान पर 'मस्मसा' पाठ मिलता है।

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः।
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति।।

साम. उत्त. क्र.सं. १५६३, ऋग्. १।७९।६

(राजन् तिग्मजम्भ अग्ने) हे प्रकाशमान तथा तीक्ष्ण मुख वाले अग्ने! (सः) वह प्रसिद्ध आप (क्षपः) शत्रुओं का नाश कीजिये। (वस्तः उत उषसः) दिन, रात्रि तथा उषाकाल में (उत त्मना रक्षसः प्रति दह) आप अकेले ही राक्षसों को भस्म कर दीजिये।

तिग्मजम्भ तीक्ष्णमुख, क्षपः क्षपय, त्मना आत्मना।

सायण भाष्य

अहमस्मि सपत्नहेन्द्र इवारिष्टो अक्षतः।
अधः सपत्ना मे पदोरिमे सर्वे अभिष्ठिताः।।

ऋग्. १०।१६६।२

(अहं सपत्नहा अस्मि) मैं शत्रुहन्ता हूँ। (इन्द्रः इव अरिष्टः अक्षतः) इन्द्र के समान मैं भी किसी से पीड़ित तथा आहत नहीं हूँ। (इमे सर्वे सपत्नाः मे पदोः अधः अभिष्ठिताः) ये सब शत्रु मेरे पैरों के नीचे आक्रान्त हैं, दबे हुये हैं।

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो
निष्टप्ता अरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि।।

यजु. १।७

(रक्षः प्रत्युष्टम्) राक्षस दग्ध कर दिये गये हैं, (अरातयः प्रत्युष्टाः) दान न देने वाले, अपने पास ही सब पदार्थों को इकट्ठे करने वाले, समाज के शत्रु दग्ध हो गये हैं। (रक्षः निष्टप्तम्) राक्षसों को निरन्तर दग्ध करता हूँ, (अरातयः निष्टप्ताः) अनुदार हृदय लोगों को निरन्तर दग्ध करता हूँ। (उरु अन्तरिक्षं अन्वेमि) ऐसे राक्षसों तथा दुष्ट स्वभाव के लोगों को दग्ध करके मैं विस्तृत अन्तरिक्ष के समान सुख एवं समृद्धि प्राप्त करता हूँ।

राक्षसों को बार बार नष्ट करना पड़ता है क्योंकि वे पुनः पुनः उत्पन्न हो जाते हैं। शरीर को हानि पहुँचाने वाले रोग भी शत्रु हैं, राक्षस हैं, उन्हें भी नष्ट करना आवश्यक है। राक्षसों को नष्ट करके ही समाज सुखी एवं समृद्ध हो सकता है।

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं-
योऽस्मान्धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः।
देवानामसि वह्नितमꣳ-
सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम्।।

यजु. १।८

हे अग्ने! (धूः असि) आप नष्ट करने वाले हो, (धूर्वन्तं धूर्व) जो सबको नष्ट करना चाहता है, उसे नष्ट कीजिये। (तं धूर्व यः अस्मान् धूर्वति) जो हमको नष्ट करना चाहता है, उसे आप नष्ट कर दीजीये (तं धूर्व यं वयं धूर्वामः) तथा आप उस समाज विरोधी दुष्ट को नष्ट कर दीजिये, जिसे हम नष्ट करना चाहते हैं। (त्वं देवानामसि वन्हितमं) तुम देवताओं के महान वहन कर्ता हो, यज्ञ में दी हुयी आहुतियों को देवताओं के लिये ले जाने वाले हो, (सस्नितम्) उत्तम रूप से शुद्ध करने वाले हो, (पप्रितमं) सुख देने वाले, पूर्णता देने वाले, (जुष्टतमं) सेवनीय, सदा सेवा करने योग्य (देवहूतमम् असि) और देवों को यज्ञ में बुलाकर लाने वाले हो।

संसार में जितने वाहन हैं, वह अग्नि अर्थात् ऊर्जा से ही चलते हैं, अग्नि ही शरीर को चलाती है। यदि शरीर में अग्नि न हो तो शरीर जीवित नहीं रह सकता।

श्री स्वामी दयानन्द जी तथा श्री सातवलेकर जी ने अग्नि को परमात्मा तथा आत्मा के रूप में मानते हुये मन्त्र का आध्यात्मिक अर्थ किया है।

ये रूपाणिं प्रतिमुञ्चमांना असुंराः सन्तंः स्वधया चरंन्ति।
परापुरो निपुरो ये भरंन्त्यग्निष्टाँल्लोकात्प्रणुंदात्यस्मात्।

यजु. २।३०

(ये असुराः सन्तः रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाः) जो असुर अपने वास्तविक स्वरूप को छिपाते हुये (परापुराः निपुरः भरन्ति) अपने दुष्ट स्वभाव के अनुसार समाज विरोधी कार्यों को पूर्ण करने के उद्देश्य से छद्म आचरण करते हैं (स्वधया चरन्ति) तथा मनमाने ढ़ंग से इधर उधर घूमते हैं, (तान्) उन दुष्ट लोगों को (अग्निः) परमात्मा (अस्मात् लोकात्) इस लोक से, इस देश से (प्रणुदाति) दूर करे।

यह मन्त्र आज के आतंकवादी तथा समाज विरोधी तत्वों के लिये कितना सटीक है। हमें ऐसे दुष्टों को नष्ट करने का सतत् प्रयास करना चाहिये।

याः सेनां अभीत्वंरीराव्याधिनीरुगंणा उत।
ये स्तेना ये च तस्कंरास्ताँस्तें अग्नेऽपिं दधाम्यास्ये।।

यजु.११।७७

(अग्ने) हे अग्ने! (याः सेना अभीत्वरीः) जो सामने युद्ध करने वाली तथा (आव्याधिनीः उगणः) बहुत सी व्याधियों एवं कष्टों को देने वाली, शस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध करने के लिये उद्यत शत्रु सेना है (उत ये स्तेनाः च ये तस्कराः) और जो चोर तथा तस्कर हैं, (तान्) उनको (ते आस्यम्) आप के मुख में (अपिदधामि) जलाकर नष्ट किये जाने के लिये रखता हूँ।

दꣳष्ट्रांभ्यां मलिम्लूञ्जम्भ्यैस्तस्कंराँ२ उत।
हनुंभ्याꣳ स्तेनान् भंगवस्ताँस्त्वं खांद सुखांदितान्।।

यजु.११।७८

(भगवः) हे ऐश्वर्य सम्पन्न अग्ने! (त्वं मलिम्लून् दंष्ट्राभ्यां) मलिन कर्म करने वाले दुष्टों को अपनी दाढ़ों से, (तस्करान् जम्भ्यै) तस्करों को अपने तीक्ष्ण दातों से (उत स्तोनान् हनुभ्यां) तथा चोरों को ठोडी से मारकर (तान् सुखादितान् खाद) उन सबको सुखपूर्वक खा कर नष्ट कर दीजिये।

सुमित्रिया न आप ओषंधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मैं।
सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं चं वयं द्विष्मः।।

यजु. ६।२२ (पाठभेद), यजु. ३६।२३

(आपः ओषधयः) जल तथा ओषधियाँ (नः सुमित्रियाः सन्तु) हमारे लिये सुखकारी एवं हितकारी हों (दुर्मित्रियाः तस्मै सन्तु) तथा उसके लिये दुःखकारी हों (यः) जो (अस्मान् द्वेष्टि) हमसे द्वेष करता है (यं च वयं द्विष्मः) तथा जिससे हम द्वेष करते हैं।

वि नं इन्द्र मृधो जहि नीचा यंच्छ पृतन्यतः।
यो अस्माँ अंभिदासत्यधरं गमया तमः।।

यजु. ८।४४,१८।७०, साम. क्र.सं. १८६८, ऋग्. १०।१५२।४

(इन्द्र) हे इन्द्र! (नः मृधः वि जहि) हमसे युद्ध करने की इच्छा वाले शत्रुओं का विशेष रूप से नाश कीजिये (पृतन्यतः नीचा यच्छ) तथा सेनाओं से युक्त हमारे शत्रुओं को नीचे गिराइये, उन्हें निकृष्टतम स्थिति में पहुँचाइये। (यः अस्मान् अभिदासति) जो हमें नष्ट करने की इच्छा करता है, (अधरम् तमः गमय) उसे नीचे अन्धकार में ले जाइये।

सदाचार

परिंमाऽग्ने दुश्चंरिताद्बाधस्वा मा सुचंरिते भज।
उदायुंषा स्वायुषोदंस्थाममृताँ२ अनुं।।

यजु. ४।२८

(अग्ने) हे प्रभो! (दुश्चरितात् मा परिबाधस्व) मुझे दोषपूर्ण निकृष्ट आचरण से रोकिये तथा (सुचरिते मा आभज) श्रेष्ठ सदाचार के मार्ग पर प्रवृत्त कीजिये, जिससे मैं (उदायुषा) उत्तम जीवन (स्वायुषा) तथा उत्तम आयु अर्थात् दिव्य गुण, कर्म तथा स्वभाव से युक्त होकर (अमृतान् अनु उद् अस्थाम्) अमरत्व को प्राप्त करूँ।

सब को प्रणाम, सब का सम्मान

नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवंभ्यो नमं आशिनेभ्यः।
यजांम देवान् यदिं शक्नवांम मा ज्यायंसः शंसमा वृंक्षि देवाः।।

ऋग्. १।२७।१३

(महद्भ्यः नमः) बड़ों के लिये नमस्कार, (अर्भकेभ्यः नमः) बालकों के लिये प्रणाम, (युवभ्यः नमः) तरुणों के लिये नमन (आशिनेभ्यः नमः) तथा वृद्धों के लिये नमन एवं वन्दन। (यदि शक्नवाम देवान् यजाम) यदि समर्थ हों तो अपनी सामर्थ्य के अनुसार देवों का यजन पूजन करूँ, उनका सत्कार करूँ। (ज्यायसः देवाः) हे वृद्ध विद्वानो! (शंसं मा

आवृक्षि) मैं इस प्रशस्त कर्म को कभी न त्यागूँ।

नमः का अर्थ अन्न भी होता है। अतः स्वामी दयानन्द जी ने अपने भाष्य में नमः का अर्थ 'सत्कार करें' और 'अन्न दें' किया है।

यहाँ छोटों को भी प्रणाम करने का महत्वपूर्ण निर्देश दिया गया है, उनके लिये प्रणाम करने का अर्थ उन्हें कुछ देना और प्यार करना भी हो सकता है।

तुलसीदास जी ने भी लिखा है-

सिया राम मैं सब जग जानी, करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी।।

विश्वेदेवाः

इन्द्रवायू बृहस्पतिं सुहवेह हंवामहे।
यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असंत्।।

ऋग्. १०।१४१।४

(सुहवा इन्द्रवायू बृहस्पतिं इह हवामहे) स्तुत्य तथा उत्तम प्रकार से आवाहन किये जाने योग्य इन्द्र, वायु तथा बृहस्पति को हम इस यज्ञ में आदर पूर्वक बुलाते हैं, (यथा सर्वः इत् जनः नः संगत्यां सुमनाः असत्) जिससे सभी लोग साथ साथ किये जाने वाले कार्यों में हमारे प्रति उत्तम मन वाले हों।

तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम्।
अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत्।।

ऋग्. १।८९।३

यजु. २५।१६,

(तान् पूर्वया निविदा वयं हूमहे) उन देवों को हम सनातन वेद मन्त्रों से बुलाते हैं, (भगं मित्रं अदितिं दक्षं अस्रिधं अर्यमणं वरुणं सोमं अश्विना सुभगा सरस्वती नः मयः करत्) भग, मित्र, अदिति, दक्ष, शोषण रहित सदा वर्तमान रहने वाले मरुद्गण, अर्यमा, वरुण, सोम, अश्विनी कुमार तथा सौभाग्य युक्त सरस्वती हमें सुख प्रदान करें।

प्राणो वै दक्षं सर्वस्य जगतो निर्माणे प्रजापतिं यद्वा प्राण रुपेण सर्वेषु प्राणिषु व्याप्यं समर्थ वर्तमानं हिरण्यगर्भम्।

तैत्ति. सं. २।५।२।४

अस्रिधं शोषण रहितं सर्वदा एक रूपेण वर्तमानं मरुद्गणं। असौ वा आदित्योऽर्यमाः।

तैत्ति. सं. २।३।४।१

सोमꣳ राजानं वरुणमग्निमन्वारंभामहे।
आदित्यं विष्णुꣳ सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम्।।

ऋग्. १०।१४१।३ (पाठभेद), साम.पूर्वा. क्र.सं. ९१
अथर्व.३।२०।४ (पाठभेद), यजु. ९।२६ (पाठभेद)

(राजानं सोमं) हम प्रकाशमान राजा सोम (वरुणम्, अग्निम् आदित्यम् विष्णुम् सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम्) तथा वरुण, अग्नि, आदित्य, विष्णु, सूर्य, ब्रह्मा एवं बृहस्पति का (अन्वारभामहे) अपनी रक्षा के लिये आह्वान करते हैं।

वाणी

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।।

अथर्ववेद.९।१०।२७, ऋग्वेद. १।१६४।४५

(वाक् चत्वारि पदानि परिमिता) वाणी चार पदों में परिमित है, वाणी के चार स्थान हैं, (तानि ये मनीषिणः ब्राह्मणाः विदुः) जो मनीषी (मनस ईषिणो मनीषिणः= मन पर शासन करने वाले) ज्ञानी ब्राह्मण हैं, वे उन पदों को जानते हैं। (त्रीणि गुहा निहिता न इङ्गयन्ति) इनमें से गुहा में निहित तीन पद प्रकट नहीं होते, (तुरीयं वाचः मनुष्याः वदन्ति) वाणी के चतुर्थ पद को मनुष्य बोलते हैं।

परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी, ये वाणी के चार पद हैं। परा वाणी का स्थान मूलाधार है। वहाँ से उत्पन्न होकर यह हृदय में पहुँचती है। उस हृदय स्थानीय वाणी को पश्यन्ती कहते हैं। वहाँ से आगे बढ़कर यह

बुद्धि में पहुँचती है। इस बुद्धि स्थानीय वाणी का नाम मध्यमा है। बुद्धि से प्रेरित होकर वाणी कण्ठ से होती हुई मुख में आकर प्रकट होती है, यह मुखर होने वाली वाणी वैखरी कहलाती है।

इनमें से परा, पश्यन्ती तथा मध्यमा, ये तीन पद बुद्धि रूपी गुहा में गुप्त रहते हैं, जिन्हें विद्वान् ब्राह्मण ही जान सकते हैं।

विद्वानों ने भिन्न भिन्न दृष्टि से 'चत्वारि पदानि' के निम्न प्रकार सात अर्थ किये हैं-

१. ऋषि लोग ओंकार तथा भूः, भुवः, स्वः, इन तीन महाव्याहृतियों को वाणी के चार पद मानते हैं।

२. वैयाकरण, नाम, आख्यात, उपसर्ग तथा निपात, इन चार पदों को वाक् स्वरूप परमेश्वर से उत्पन्न हुआ मानते हैं।

३. याज्ञिक लोग मन्त्र, कल्प, ब्राह्मण तथा व्यावहारिक वाणी, इन चार पदों को मानते हैं।

४. नैरुक्त ऋक् (पद्य), यजु (गद्य), साम (गीति) तथा व्यावहारिक वाणी, इन चार पदों को मानते हैं।

५. कतिपय विद्वान् सर्पों की वाणी, पक्षियों की वाणी, क्षुद्र रेंगने वाले क्रिमिओं की वाणी तथा व्यावहारिक वाणी, इन चार पदों को मानते हैं।

६. आत्मवादी लोग ग्राम्य पशुओं की वाणी, आरण्य पशुओं की वाणी, वाद्य यन्त्रों की वाणी तथा व्यावहारिक वाणी, इन चार पदों को मानते हैं।

७. यास्काचार्य जी द्वारा उल्लिखित किया गया है कि किसी ब्राह्मण के अनुसार पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक में फैली हुयी वाणी और मनुष्यों की वाणी, ये चार पद हैं। इनमें से पहली तीन वाणियाँ क्रमशः रथन्तर साम में, वामदेव्य साम में तथा बृहत् साम में निहित हैं और चौथी व्यावहारिकी वाणी मनुष्यों में निहित है।

देवीं वाचंमजनयन्त देवास्तां विश्वरूंपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहांना धेनुर्वागस्मानुष सुष्टुतैतुं।।

ऋग्. ८।१००।११

(तां विश्वरूपाः पशवः वदन्ति) उस वाणी को सब प्रकार के पशु, पक्षी तथा मूर्ख मनुष्य सभी बोलते हैं, (देवाः देवीं वाचं अजनयन्त) परन्तु विद्वान् लोग उत्कृष्ट दिव्यवाणी का उच्चारण किया करते हैं। (सा मन्द्रा) वह प्रसन्नता देने वाली (नः इषं ऊर्जं दुहाना) तथा हमारे लिये उत्तम अन्नों और रसों को दोहने वाली (सु स्तुता धेनुः वाक्) अच्छी तरह स्तुत हुयी वह प्रशस्त दिव्य वाणी रूपी गाय (अस्मान् उपैतु) हमें प्राप्त हो।

पवित्रता

पुनन्तुं मा पितरंः सोम्यासंः पुनन्तुं मा पितामहाः पुनन्तु प्रपिंतामहाः। पवित्रेंण शतायुंषा । पुनन्तुं मा पितामहाः पुनन्तु प्रपिंतामहाः। पवित्रेंण शतायुंषा विश्वमायुर्व्यश्नवै।।

यजु. १९।३७

(सोम्यासः पितरः पवित्रेण शतायुषा मा पुनन्तु) ऐश्वर्य युक्त तथा चन्द्रमा के समान शान्त पितर सौ वर्ष की पवित्र आयु से मुझे पवित्र करें, (पितामहाः मा पुनन्तु) पिता के पिता मुझे पवित्र करें, (प्रपितामहाः मा पुनन्तु) पितामह के पिता मुझे पवित्र करें, (पितामहाः पवित्रेण शतायुषा पुनन्तु, प्रपितामहाः पुनन्तु) पितामह तथा प्रपितामह मुझे सौ वर्ष की पवित्र आयु से पवित्र करें। (विश्वं आयुः व्यश्नवै) जिससे मैं सम्पूर्ण आयु को प्राप्त कर सकूँ।

पुनन्तुं मा देवजनाः पुनन्तु मनंसा धियंः।
पुनन्तु विश्वां भूतानि जातंवेदः पुनीहि मां।।

ऋग्. ९।६७।२७ (पाठभेद),
अथर्व. ६।१९।१ (पाठभेद), यजु. १९।३९

(पुनन्तु मा देवजनाः) देवगण तथा विद्वान् जन मुझे पवित्र करें, (पुनन्तु मनसा धियः) मन के साथ बुद्धियाँ तथा कर्म मुझे पवित्र करें, (पुनन्तु विश्वा भूतानि) समस्त प्राणी एवं पदार्थ मुझे पवित्र करें, (जातवेदः पुनीहि मा) हे जातवेद अग्ने! तथा हे सर्वज्ञ प्रभो! आप मुझे पवित्र कीजिये।

पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत्।
अग्ने क्रत्वा क्रतूँ२ रनु॥

यजु.१९।४०

(दीद्यत् देव अग्ने) हे दिव्य गुणों से युक्त देदीप्यमान् अग्ने! (पवित्रेण शुक्रेण मा पुनीहि) अपने पवित्र तेज से मुझे पवित्र कीजिये (क्रतून् क्रत्वा अनु) तथा हमारे यज्ञों, कर्मों एवं बुद्धियों को पुनः पुनः पवित्र कीजिये।

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा। ब्रह्म तेन पुनातु मा॥

यजु. १९।४१

आध्यात्मिक अर्थ

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म! (ते अर्चिषि अन्तरा पवित्रं ब्रह्म विततम्) तुम्हारे ज्योतिर्मय स्वरूप में निहित जो पवित्र एवं विस्तृत वेदज्ञान है, (तेन मा पुनातु) उससे मुझे पवित्र कीजिये।

पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः।
यः पोता स पुनातु मा॥

यजु. १९।४२

(यः विचर्षणिः पवमानः) जो ज्ञान स्वरुप, सर्वज्ञ एवं पवित्र तथा सबको पवित्र करने वाला है, (नः पोता सः अद्य पवित्रेण मा पुनातु) वह परब्रह्म आज हमें अपनी पवित्रता से पवित्र करे।

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च।
मां पुनीहि विश्वतः॥

यजु. १९।४३

(देव सवितः उभाभ्यां पवित्रेण च सवेन) समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले तथा प्रेरणा देने वाले हे सविता देव! अपने ज्ञान एवं प्रेरणा, दोनों से (विश्वतः मां पुनीहि) मुझे सब प्रकार से पवित्र कीजिये।

पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे।
अथो अरिष्टतातये।।

अथर्व. ६।१९।२

(पवमानः मा पुनातु क्रत्वे) पवित्र करने वाला परमेश्वर मुझे श्रेष्ठ कर्म करने के लिये, (दक्षाय) समृद्धि के लिये (अथो) और (अरिष्टतातये जीवसे) हिंसा रहित जीवन के लिये पवित्र करे।

अग्निहोत्र

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता।
वसोर्वसोर्वसुदानं एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम।।

अथर्व. १९।५५।३

(गृहपतिः अग्निः सायं सायं प्रातः प्रातः) गृह का रक्षक अग्नि प्रत्येक सायंकाल तथा प्रत्येक प्रातः काल (सौमनस्य दाता) हमें सौमनस्य अर्थात् (सु) सुख एवं शान्ति पूर्ण मन का देने वाला हो। तात्पर्य यह है कि प्रतिदिन प्रातः काल एवं सायंकाल के समय अग्निहोत्र करने से हमारा मन स्वस्थ, प्रसन्न, पवित्र एवं शिव संकल्प वाला बने। (वसोः वसोः) हे अग्ने! आप हमें (वसुदानः एधि) अभीष्ट वस्तुओं को देने वाले होइये। (त्वा इन्धानाः) तुम्हें आहुतियों से प्रदीप्त करते हुये (वयं तन्वं पुषेम) हम अपने शरीर को पुष्ट करें।

प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनसस्य दाता।
वसोर्वसोर्वसुदानं एधीन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम।।

अथर्व. १९।५५।४

(गृहपतिः अग्निः) गृह का रक्षक अग्नि (प्रातः प्रातः सायं सायं) प्रत्येक प्रातः काल तथा प्रत्येक सायंकाल (नः सौमनसस्य दाता) हमें मन

की पवित्रता, सरलता एवं उदारता देने वाला हो। (वसोः वसोः) हे अग्ने! (वसुदानः एधि) आप हमें समस्त प्रकार के धन प्रचुर मात्रा में देने वाले होइये। (त्वा इन्धानाः) तुम्हें समिधाओं एवं आहुतियों से प्रदीप्त करते हुये हम (शतं हिमाः ऋधेम) सौ हेमन्त ऋतुओं अर्थात् सौ वर्षों तक समृद्धि को प्राप्त होते रहें।

श्रद्धायै होतव्यं। -ऐतरेय. पंचम पंचिका ५. ३

श्रद्धा से ही हवन करना चाहिये।

ईजानम् सुकृतां लोके धत्त। (अथर्व. १८।४।१)

हे अग्नि! यज्ञ करने वालों को श्रेष्ठ कर्म करने वालों के लोक में ले जाओ।

ईजानाः स्वर्ग लोकम् यन्ति। (अथर्व. १८।४।२)

यज्ञ करने वाले स्वर्ग लोक को प्राप्त करते हैं।

नौर्ह वा एषा स्वर्ग्या यदग्निहोत्रम्। (शतपथ. २।३।३।१५)

यह जो अग्निहोत्र है, वह स्वर्ग को ले जानी वाली नौका है।

अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः। (मै. उप. ६।२६)

स्वर्ग की कामना वाला अग्निहोत्र करे।

सत्यं हास्य वदतः सत्ये हुतं भवति य एवं विद्धानुदिते जुहोति। तस्माद् उदिते होतव्यम्।

ऐतरेय. पंचम पंचिका ५.६

जो सूर्योदय के पश्चात् अग्नि होत्र करता है, वह सत्य बोलता है। इसलिये सूर्योदय के पश्चात् ही अग्नि होत्र करना चाहिये।

ऐतरेय ब्राह्मण में गाथा सं. ३१ दी गयी है, जिसमें कहा गया है कि जो सूर्योदय से पूर्व अग्नि होत्र करते हैं (प्रातः प्रातरनृतं ते वदन्ति) वे सुबह सुबह ही झूठ बोलते हैं क्योंकि तब सूर्य तो होता ही नहीं, फिर भी 'सूर्यो ज्योतिः' का पाठ करते हैं।

नास्तिकों के लिये भगवान् का कथन

नास्तिकों का कथन है-

प्र सु स्तोमं भरत वाजयन्त इन्द्राय सत्यं यदि सत्यमस्ति।
नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क ईं ददर्श कमभि ष्टवाम।।

ऋग्. ८।१००।३

(वाजयन्तः) हे बल के अभिलाषी मनुष्यो! (यदि) यदि इन्द्र (सत्यम् अस्ति) वास्तव में है तो (इन्द्राय) उस इन्द्र के लिये (सत्यम् स्तोमं प्र सु भरत) अवश्य ही स्तुति के स्तोत्र कहो, परन्तु (नेमः उत आह) यह नेम तो कहता है कि (इन्द्रः त्वः न अस्ति इति) इन्द्र तो कोई है ही नहीं। (ईम् कः ददर्श) उसको किसने देखा है? यदि नहीं है, (कं अभि स्तवाम) तो हम किसकी स्तुति करें!

ऐसे नास्तिकों तथा शंका करने वालों के लिये भगवान् का कथन है-

अयमस्मि जरितः पश्य मेह विश्वा जातान्यभ्यस्मि मह्ना।
ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्त्यादर्दिरो भुवना दर्दरीमि।।

ऋग्. ८।१००।४

(जरितः) हे स्तुति करने वालो! (अयमस्मि) मैं यह हूँ, (इह मा पश्य) मुझे यहाँ देखो। (मह्ना विश्वा जातानि अभि अस्मि) मैं अपनी महिमा से समस्त उत्पन्न हुये प्राणियों एवं पदार्थों को अभिभूत करता हूँ, परास्त करता हूँ, नियन्त्रण में रखता हूँ। (ऋतस्य प्रदिशः मा वर्धयन्ति) सत्य का उपदेश देने वाले मेरी प्रशंसा करते हैं, मेरी महिमा का गान करते हैं। (आ दर्दिरः भुवना दर्दरीमि) विनाश करने वाला बनकर मैं समस्त भुवनों का विनाश करता हूँ।

प्रदिशः प्रदेष्टारो। उपदेश देने वाले। (सायणभाष्य)

एकत्र होकर साथ साथ स्तुति करना

सहस्रं साकमर्चत परि ष्टोभत विंशतिः।
शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम्।।

ऋग्. १।८०।९

(सहस्त्र साकं अर्चत) सहस्त्रों की संख्या में एकत्र होकर एक साथ प्रभु की स्तुति करो, (विंशतिः परि स्तोभत) बीसियों लोग मिलकर प्रभु की स्तुति का गान करो, (शता एनं अनु अनोनवुः) सैकड़ों लोग मिलकर इस प्रभु की बारंबार प्रार्थना करो। (इन्द्राय ब्रह्म उत् यतं) इन्द्र के लिये यह स्तोत्र है। (स्व राज्यं अनु अर्चन्) अपने देश के स्वराज्य का सम्मान करो।

१. संगठित होकर भगवान् की प्रार्थना करने का यह महत्वपूर्ण उपदेश है। मन्दिरों तथा अन्य स्थानों में इस प्रकार एक साथ प्रार्थना करने से समाज का संगठन होगा और उससे अपने देश के स्वराज्य तथा अपनी संस्कृति के प्रति सम्मान बढ़ेगा।

२. अपना स्वराज्य सुरक्षित करने के लिये सदा प्रयत्नशील रहने, उसका सम्मान करने तथा संगठित होने का यह महत्वपूर्ण सन्देश तथा आदेश है कि समाज को संगठित करो और देश प्रेम की भावना जागृत करो। इसका हम सबको निष्ठा पूर्वक पालन करना चाहिये।

आततायी का वध

इन्द्रं जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम्।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम्।।

ऋग्. ७।१०४।२४, अथर्व. ८।४।२४

(इन्द्र) हे इन्द्र! (यातुधानम्) माया से, छल कपट से पीड़ा पहुँचाने, यातना देने वाले आततायी, (पुमांसम्) पुरुष को अथवा (मायया शाशदानां स्त्रियं) कपट से व्यवहार करने वाली स्त्री को (जहि) मार दो, नष्ट कर दो। (मूरदेवाः विग्रीवासः ऋदन्तु) हिंसा की पूजा करने वाले तथा निर्दोष लोगों को मारने वाले दुष्ट लोग ग्रीवा रहित होकर नष्ट हो जायँ, (ते उच्चरन्तं सूर्य मा दृशन्) वे उदय होते हुये सूर्य को न देख सकें।

यहाँ इन्द्र का अर्थ राजा भी है।

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ।।

मनु. ८।३५०

चाहे गुरु, बालक,वृद्ध, ब्राह्मण अथवा बहुत विद्वान्, शास्त्रों का ज्ञाता, कोई भी अधर्म के मार्ग पर चलने वाला आततायी हो, उसे बिना विचारे ही मार देना चाहिये। तात्पर्य यह है कि आततायी को मारना आवश्यक है, इसमें कोई दोष नहीं है।

मारने के लिये हाथ में शस्त्र लिया हुआ, अग्नि से जलाने वाला, विष देने वाला, धन सम्पत्ति को लूटने वाला, धान्य तथा खेत पर बलपूर्वक अधिकार करने वाला तथा अपहरण करने वाला, ये छः प्रकार के दुष्ट आततायी कहलाते हैं।

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति।।

मनु. ८।३५१

(आततायि वधे) आततायी दुष्ट पुरुष को मारने में (हन्तुः कश्चनः दोषः न भवति) हन्ता को पाप नहीं होता, (प्रकाशं वा अप्रकाशं वा) चाहे दिन में (सबके सामने) मारे चाहे रात्रि में, एकान्त में मारे (मन्युः तं मन्युं ऋच्छति) क्योंकि ऐसा करने में क्रोध को क्रोध ही मारता है।

पुरुष सूक्त

यजुर्वेद के अध्याय ३१, ऋग्वेद के दसवें मण्डल के सूक्त ९० तथा अथर्व वेद के काण्ड १९ सूक्त ६ तथा सामवेद के मन्त्र संख्या ६१७ से ६२१ में ब्रह्म का वर्णन पुरुष के रूप में किया गया है। अतएव इन्हें पुरुष सूक्त कहा जाता है। मन्त्रों में कुछ पाठान्तर होते हुये भी इन मन्त्रों का अर्थ प्रायः एक समान है। ऋग्वेद तथा अथर्व वेद में केवल १६ मन्त्र हैं, जब कि यजुर्वेद के इस सूक्त में २२ मन्त्र हैं किन्तु शतपथ ब्राह्मण १३।६।२।१२ के अनुसार इनमें केवल १६ मन्त्रों को ही पुरुष सूक्त माना जाता है।

ब्रह्माण्ड रूपी पुरी में वसने के कारण ब्रह्म को पुरुष कहा जाता है, **'पुरि वसति इति पुरुषः'**। शरीर रूपी पुरी में वसने के कारण आत्मा को भी पुरुष कहते हैं। पुरुष का एक अन्य निर्वचन निम्न प्रकार है- पुर्+ (वस्= उस= उष)= पुरुष।

पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते।
पुरिशेते इति पुरुषः।

अथर्व. १०।२।२८

ब्रह्माण्ड अथवा शरीर रूपी पुरी में शयन करने के कारण, निवास करने के कारण ब्रह्म को पुरुष कहा जाता है।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिꣳसर्वत स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।

अथर्व. १९।६।१ (पाठभेद) यजु.३१।१
ऋग्.१०।९०।१, साम.पूर्वा. ६।४।३ क्र.सं.६१७, (पाठभेद)

(सहस्रशीर्षा) वह परम पुरुष हज़ारों शिर, (सहस्राक्षः) हज़ारों नेत्रों तथा (सहस्रपात्) हज़ारों पैरों वाला है। (सः भूमिं) वह इस भूमि को, ब्रह्माण्ड को (सर्वतः स्पृत्वा) सब ओर से घेरकर, आच्छादित करके (अत्य तिष्ठत् दशाङ्गुलम्) दश अङ्गुल के आकार वाले तथा नाभि से दश अङ्गुल ऊपर स्थित हृदय में तथा इसका उलंघन करके इसके अन्दर और बाहर ब्रह्माण्ड में सब ओर स्थित है।

मनुष्य के हृदय को दशाङ्गुलम् इसलिये कहते हैं क्योंकि इसका आकार दश अंगुल का होता है और यह नाभि से दश अंगुल ऊपर स्थित होता है।

ब्रह्माण्ड को दशाङ्गुलम् इसलिये कहते हैं क्योंकि यह पञ्च महाभूत अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथिवी तथा इनकी तन्मात्रायें, क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध से बनता है।

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।।

ऋग्वेद,१०।९०।२, (पाठभेद), अथर्ववेद,१९।६।४,(पाठभेद), यजुर्वेद,३१।२
सामवेद पूर्वार्चिक, ६।४।५-६, क्र. सं. ६१९, (पाठभेद)

भूत, वर्तमान तथा भविष्य में, जो कुछ था, जो कुछ है और भविष्य में जो कुछ होगा, वह सब पुरुष ही है, ब्रह्म ही है। वह उस अमृतत्व अर्थात्

जीवात्मा का भी ईश्वर है, स्वामी है, जो शरीर में अन्न के साथ बढ़ता है।

आत्मा शरीर में व्याप्त रहता है और शरीर अन्न से बढ़ता है किन्तु आत्मा के बिना शरीर नहीं बढ़ सकता अतः मन्त्र में आलंकारिक ढंग से आत्मा को ही अन्न के साथ बढ़ने वाला कहा गया है।

अथर्व वेद.१९।६।४ में 'यदन्ने नाति रोहति' के स्थान पर 'यदन्येनाभवत्सह' है।

(यत् अन्येन सह अभवत्) जो दूसरे के साथ अर्थात् दूसरे मरणधर्मा शरीर के साथ रहता है। इसका तात्पर्य भी आत्मा से ही है क्योंकि आत्मा नाशवान् शरीर के साथ जन्म लेता है और आजीवन उसके साथ रहता है।

एतावांनस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुंषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानिं त्रिपादंस्यामृतंदिवि ।।

अथर्व.१९।६।३(पाठभेद) यजु. ३१।३,
साम पूर्वा. ६।४।६ क्र सं. ६२०, ऋग्वेद,१०।९०।३

(एतावान् अस्य महिमा) यह समस्त ब्रह्माण्ड उसकी महिमा है, इस विश्व से केवल उसकी महिमा का बोध होता है। (च पूरुषः अतः ज्यायान्) वह पुरुष तो इससे कहीं अधिक महान् और श्रेष्ठ है, (विश्वा भूतानि अस्य पादः) समस्त चराचर जगत् केवल उसका एक पाद है, एक अंश है। (अस्य त्रिपाद् अमृतं दिवि) उसके तीन पाद द्युलोक में अपने अमृत स्वरुप में स्थित हैं।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुंषः पादोऽस्येहाभंवत् पुनंः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ।।

ऋग्वेद, १०।९०।४, यजुर्वेद,३१।४

(अस्य पादः इह पुनः अभवत्) उस परब्रह्म के एक अंश से उत्पन्न होने वाली यह सृष्टि परिवर्तित होती रहती है, पुनः पुनः उत्पन्न एवं लय होती रहती है किन्तु (त्रिपात् पुरुषः ऊर्ध्वः उदैत्) उसके तीन पाद अर्थात्

वह पूर्ण पुरुष अपने अमृत स्वरूप में सदा अविकारी, अपरिवर्तनीय, आनन्दमय एवं ध्रुव होकर सबके ऊपर प्रकाशित रहता है (ततः सः अशन अनशने विष्वङ् अभि व्यक्रामत्) तथा वह परब्रह्म अन्न खाने वाले तथा अन्न न खाने वाले अर्थात् सभी प्राणियों एवं पदार्थों में अन्तर्यामी रूप से व्याप्त है।

ततो विराडंजायत विराजो अधि पूरुंषः।
स जातो अत्यंरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः।।

ऋग्. १०।९०।५ (पाठभेद), यजु. ३१।५

(ततो विराडजायत) उस परमात्मा से विशेष रूप से देदीप्यमान प्रकृति उत्पन्न हुयी तथा (विराजो अधि पूरुषः) प्रकृति के ऊपर अधिष्ठाता पुरुष हुआ। (स जातो अत्यरिच्यत) वह प्रकृति उत्पन्न होकर अनेक रूपों में विभक्त होने लगी, (पश्चाद् भूमिम् अथो पुरः) जिससे पृथिवी,सूर्यादि ग्रह तथा समस्त ब्रह्माण्ड पूर्व कल्प की भाँति उत्पन्न हुये।

सृष्टि एक कल्प तक रहती है। एक हज़ार चतुर्युगी का एक कल्प होता है, जिसे एक ब्रह्म दिन कहा जाता है। इसके पश्चात् प्रलय होती है।

मन्त्र में उल्लिखित (अधि पूरुषः) अर्थात् अधिष्ठाता पुरुष ही ब्रह्मा हैं, जो प्रकृति की सहायता से समस्त सृष्टि को नियमानुसार उत्पन्न करने का कार्य करते हैं, इसलिये उन्हें प्रजापति तथा भाग्य विधाता भी कहा जाता है। ब्रह्म तथा वेदों के ज्ञाता को भी ब्रह्मा कहते हैं।

विराट्= वि+ राजृ दीप्तौ

विराट् तथा विराज् शब्द, का अर्थ है विशेष रूप से दीप्तिमान्। विराट् शब्द ब्रह्म अर्थात् पुरुष तथा प्रकृति दोनों के लिये प्रयुक्त होता है। इसीलिये इसका प्रयोग कहीं पुलिंग में और कहीं स्त्रीलिंग में होता है। अथर्व ८।९।२ में प्रकृति को 'कामदुघो विराजः' कामना की पूर्ति करने वाली विराज् रूपी कामधेनु कहा गया है।

अथर्व ८।९।७ में विराज अर्थात् ब्रह्म को ब्रह्मा का पिता कहा गया है और ८।९।८ में विराट् को स्पष्ट रूप से परब्रह्म कहा गया है, जिसकी

प्रेरणा से यज्ञ चलते हैं और जिसकी प्रेरणा से यक्ष अर्थात् आत्मा गति करता है।

श्री सायणाचार्य ने अपने ऋग्वेद भाष्य में 'तस्मात् विराडजायत' का अर्थ 'तस्मात् आदि पुरुषात् विराट् ब्रह्माण्ड देहः अजायत उत्पन्नः' लिखा है और परमात्मा को स्वयं उसका अधिष्ठाता लिखा है, जैसा कि स्वामी दयानन्द जी ने भी लिखा है।

श्री प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकार ने अपने भाष्य में विराट् का अर्थ प्रदीप्त अण्ड किया है और उसका अधिष्ठाता पूर्ण परमेश्वर को लिखा है, जब कि मन्त्र में अण्ड शब्द नहीं है। उन्होंने अपने समर्थन में मनुस्मृति १।९ का उल्लेख किया है-

तदण्डमभवत् हैमं सहस्रांशु समप्रभम्।

अर्थात् भगवान् द्वारा डाला हुआ बीज सुवर्ण के समान वर्ण वाला तथा सूर्य के समान प्रभा वाला अण्डाकार बन गया किन्तु उन्होंने श्लोक की दूसरी पंक्ति की अनदेखी कर दी जिसमें कहा गया है, **'तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोक पितामहः'** अर्थात् उसी में से समस्त लोकों के पितामह ब्रह्मा स्वयं उत्पन्न हुये।

यदि मनुस्मृति के उक्त कथन को सत्य माना जाय तो उससे यही निष्कर्ष निकलता है कि प्रकृति सर्वप्रथम विशेष रूप से प्रदीप्त अण्ड के आकार में उत्पन्न हुयी और साथ ही ब्रह्मा जी भी प्रकट हुये।

विराट् के गोल अथवा अण्डाकार होने का कथन इस दृष्टिकोण से सत्य प्रतीत होता है कि पृथिवी, चन्द्रमा सूर्य आदि सभी ग्रह गोल अथवा अण्डाकार है और संस्कृत वाङ्मय में समस्त संसार को ब्रह्माण्ड ही कहा गया है।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥

ऋग्. १०।९०।९, यजु. ३१।७
कृष्ण यजु. ३५।१०, अथर्व. १९।६।१३

(तस्मात् यज्ञात् सर्वहुत) सभी आहुतियाँ जिसके लिये दी जाती हैं, उस सर्वपूज्य, सर्वोपास्य, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ परब्रह्म से (ऋचः सामानि जज्ञिरे) ऋग्वेद तथा सामवेद उत्पन्न हुये, (छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात्) उससे अथर्ववेद उत्पन्न हुआ (यजुः तस्मात् अजायत) तथा उसी से यजुर्वेद उत्पन्न हुआ।

सर्वहुतः- सर्व हूयमान= सर्वपूज्य, सर्वोपास्य

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः।।

ऋग्. १०।९०।१०, यजु. ३१।८

(तस्मात् अश्वाः अजायन्त) उस पूजनीय परमात्मा से अश्व तथा (ये के च उभयादतः) जो ऊपर नीचे दोनों तरफ़ दाँत वाले अन्य पशु होते हैं, उत्पन्न हुये। (गावः ह तस्मात् जज्ञिरे) उसी से गौयें उत्पन्न हुयीं तथा (तस्मात् जाता अजावयः) उसी से बकरियाँ और भेंड़े आदि पशु उत्पन्न हुये।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये।।

ऋग्. १०।९०।७, यजु. ३१।९

(ये देवाः साध्याः ऋषयः च) जो विद्वान्, साधक तथा ऋषि थे, (तं अग्रतः जातं) उन्होंने आदिकाल में प्रकट हुये (यज्ञं पुरुषं) उस पूजनीय परमात्मा को, (बर्हिषि प्रौक्षन्) मानस यज्ञ में प्रोक्षण करके, श्रद्धा भक्ति द्वारा सिंचन करके, बुद्धि तथा हृदय में धारण करके, (तेन अयजन्त) उससे अपना आत्मिक यज्ञ सम्पन्न किया।

यह मानस यज्ञ लौकिक अग्नि के स्थान पर ब्रह्म रुपी अग्नि से ही सम्पन्न किया जाता है। यहाँ मन, बुद्धि तथा आत्मा द्वारा ध्यान पूर्वक परमात्मा से जुड़ जाने का तथा आत्म समर्पण रुपी यज्ञ का वर्णन है।

इसी आधार पर गीता में कहा गया है-

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ।।

गीता, ४।२४

अर्पण अर्थात् स्रुवादिक ब्रह्म हैं, हव्य पदार्थ भी ब्रह्म हैं, ब्रह्मरुप अग्नि में ब्रह्मरूप कर्ता द्वारा किया गया हवन भी ब्रह्म है तथा ब्रह्मरुप कर्म में समाधिस्थ पुरुष का गन्तव्य भी ब्रह्म है ।

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ।।

अथर्व. १९।६।५, ऋग्. १०।९०।११ (पाठभेद) यजु. ३१।१०

(यत् पुरुषं व्यदधुः) जिस पुरुष को तुम अपनी बुद्धि में धारण करते हो, (कतिधा व्यकल्पयन्) उसकी कल्पना कितने प्रकार से की गयी है, (अस्य मुखं किं आसीत्) उसका मुख क्या है, (किं बाहू) भुजायें क्या हैं (किं ऊरू) तथा उसकी जंघायें क्या हैं (पादा उच्येते) और पैर किसे कहा जाता है?

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याꣳ शूद्रो अजायत ।।

अथर्व. १९।६।६ (पाठभेद), ऋग्. १०।९०।१२, यजु. ३१।११

(अस्य मुखं ब्राह्मणः आसीत्) ब्राह्मण इस मानव समाज रुपी पुरुष के मुख के समान हैं, (बाहू राजन्यः कृतः) क्षत्रिय इसके बाहुओं के समान हैं, (ऊरू अस्य तत् यद् वैश्यः) जो वैश्य हैं वह इसकी जांघों के समान हैं तथा (पद्भ्यां शूद्रः अजायत) शूद्र इसके पैरों से उत्पन्न हुये हैं, पैरों के समान हैं।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ।।

यजु. ३१।१२ (पाठभेद) अथर्व.१९।६।७, ऋग्.१०।९०।१३

सूर्य चन्द्र आदि की उत्पत्ति का आलंकारिक वर्णन करते हुये यहाँ बताया गया है कि (चन्द्रमा मनस: जात:) ब्रह्म के विराट शरीर के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, (चक्षो: सूर्य: अजायत) चक्षु से सूर्य उत्पन्न हुआ, (मुखाद् इन्द्र: च अग्नि: च) मुख से इन्द्र तथा अग्नि एवं (प्राणाद् वायु: अजायत) प्राण से वायु उत्पन्न हुआ।

नाभ्या आसीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ अकल्पयन्।।

अथर्व.१९।६।८, ऋग्.१०।९०।१४, यजु. ३१।१३

(नाभ्या अन्तरिक्षं आसीत्) ब्रह्म की नाभि से अन्तरिक्ष, (शीर्ष्णः द्यौः समवर्तत) शिर से द्युलोक, (पद्भ्यां भूमिः) पैरों से भूमि, (श्रोत्रात् दिशः) कानों से दिशायें उत्पन्न हुयीं (तथा लोकान् अकल्पयन्) तथा इसी प्रकार अन्य लोकों के उत्पन्न होने की कल्पना की गयी है।

यह ब्रह्म के विराट् स्वरूप की कल्पना है। इसका वर्णन वेदों में अनेक प्रकार से किया गया है। उदाहरणार्थ-

यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।

अथर्व. १०।७।३२

(यस्य भूमि: प्रमा) पृथिवी जिसकी पदस्थानीय है, (अन्तरिक्षं उत उदरम्) तथा अन्तरिक्ष जिसके उदर के समान है, (य: दिवं मूर्धानं चक्रे) जिसने द्युलोक को अपने मूर्धा अर्थात् शिर के रूप में बनाया है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है।

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।।

अथर्व.१९।६।१०, ऋग्.१०।९०।६, यजु. ३१।१४

(यत् देवाः) जब देवों ने (पुरुषेण हविषा यज्ञं अतन्वत) पुरुष रूपी हवि से अर्थात् आत्म समर्पण से यज्ञ सम्पन्न किया, (अस्य आज्यं) तब इस

आत्म यज्ञ में (वसन्तः आसीत्) वसन्त ऋतु घृत के समान थी और (ग्रीष्म इध्मः) ग्रीष्म ऋतु ईंधन अर्थात् समिधाओं के समान तथा (शरत् हविः) शरद ऋतु हवि के समान थी।

वास्तव में विद्वानों द्वारा मानव कल्याण के लिये किये जाने वाले आत्म समर्पण रूपी रूपी यज्ञ के सम्पादन में समस्त प्रकृति ही यज्ञ का साधन होती है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि पुरुष रूपी हवि का अर्थ पुरुष शरीर के अंगों से यज्ञ करना नहीं है, जैसा कि कुछ मूर्ख एवं दुष्ट लोग कहते हैं। शतपथ ब्राह्मण में इस तथ्य को अपनी अनोखी शैली में स्पष्ट किया गया है।

सप्तास्यांसन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्।।

अथर्व.१९।६।१५, ऋग्.१०।९०।१५, यजु. ३१।१५

समस्त संसार को देखने वाले ब्रह्म को अपने ध्यान में बाँधते हुये, स्थिरता पूर्वक अपने ध्यान को ब्रह्म में एकाग्र करते हुये, उसके साथ अपने को जोड़कर उपासना करते हुये देव अर्थात् विद्वान् जिस मानस अथवा आत्मिक यज्ञ का विस्तार करते हैं, सम्पादन करते हैं, (अस्य सप्त परिधयः आसन्) उसकी गायत्री आदि सात छन्द, सात परिधियाँ हैं तथा (त्रिः सप्त समिधः कृताः) पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, कर्म तथा आत्मा ये २१ समिधायें हैं।

तात्पर्य यह है कि वेद मन्त्रों से ध्यानपूर्वक परमात्मा की उपासना करते हुये अपने सम्पूर्ण समर्पण द्वारा यह मानसिक यज्ञ सम्पन्न किया जाना चाहिये।

२१ समिधाओं के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। हमारी दृष्टि में मानव शरीर के अन्य अवयवों के साथ इन समिधाओं में कर्म तथा आत्मा का समावेश किया जाना सर्वाधिक उचित है।

(पुरुषं पशुं) पशु का अर्थ है, सब को देखने वाला परमात्मा। **'पश्यति इति पशुः'** जो देखता है, वह पशु।

पश् धातु का अर्थ है देखना इसलिये पश्यक का अर्थ है देखने वाला। इसके पहले और अन्तिम अक्षर को उलट देने से 'कश्यप' शब्द बनता है, जिसका अर्थ होता है, सब को देखने वाला परमात्मा, सर्वसाक्षी प्रभु।

अद्भ्यः सम्भृंतः पृथिव्यै रसांच्च,
विश्वकंर्मणः समंवर्ततार्ग्रे।
तस्य त्वष्टां विदधंद्रूपमेंति तन्,
मर्त्यंस्य देवत्वमाजानमग्रें॥

यजु. ३१।१७

(अग्रे विश्वकर्मणः समवर्तत) सृष्टि के आदिकाल में केवल विश्वकर्मा परमात्मा ही था, (पृथिव्यै रसात् च संभृतः) उसने जल रुपी रस के साथ पृथिवी आदि अन्य पाँच महाभूतों से इस जगत् का निर्माण करके, इसे परिपुष्ट किया अर्थात् समस्त प्राणियों एवं पदार्थों को उत्पन्न करके उनका पोषण किया। (अग्रे त्वष्टा तस्य रूपं विदधत्) आदिकाल में विश्वकर्मा रुपी कारीगर ने समस्त प्राणियों एवं पदार्थों के रूप तथा उनके लिये नियमों आदि का विधान किया, बनाया। (मर्त्यस्य तत् देवत्वं आजानं एति) उसी विधान के अनुसार मरणधर्मा मनुष्य श्रेष्ठ कर्म करके देवत्व प्राप्त करता है।

वेदाहमेतं पुरुंषं महान्तं-
मादित्यवंर्णं तमंसः परस्तांत्।
तमेव विंदित्वातिं मृत्युमेंति,
नान्यः पन्थां विद्यतेऽयंनाय॥

यजुर्वेद. ३१।१८

(अहम् एतम् आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् महान्तं पुरुषं वेद) मैं उस आदित्य वर्ण वाले अर्थात् अज्ञान एवं अन्धकार से परे प्रकाश स्वरुप,

महान पुरुष को जानता हूँ। (तम् एव विदित्वा मृत्युं अति एति) उसी को जानकर ज्ञानी भक्त मृत्यु को पार करता है, (अयनाय अन्यः पन्था न विद्यते) मोक्ष के लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है।

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।।

अथर्व. १०।८।१३ (पाठभेद), यजु. ३१।१९

(प्रजापतिः चरति गर्भे अन्तः) प्रजापति गर्भ के अन्दर प्रवेश करता है तथा (अजायमानः बहुधा विजायते) अजायमान होते हुये भी बहुत प्रकार से जन्म लेता है। (तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीराः) उसके स्वरुप को धीर पुरुष भली प्रकार देखते हैं। (तस्मिन् ह तस्थुः भुवनानि विश्वा) उसी परमात्मा में समस्त लोक स्थित हैं।

मंत्र के अन्तिम अंश से यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ प्रजापति का अर्थ परमात्मा है, प्राण अथवा जीवात्मा नहीं।

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये।।

यजु. ३१।२०

(यः देवेभ्यः) जो देवों के लिये तपता है, सब को ऊर्जा तथा प्रकाश प्रदान करता है, (यः देवानां पुरोहितः) जो समस्त देवताओं में अग्रणी तथा श्रेष्ठ है और सभी देवों का हित करने वाला है (यः देवेभ्यः पूर्वः जातः) तथा जो अन्य देवताओं से पहले उत्पन्न हुआ है, (रुचाय ब्राह्मये नमः) ब्रह्म द्वारा सृजित किये गये उस परम तेजस्वी सूर्य देव को प्रणाम है।

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन् वशे।।

यजु. ३१।२१

(ब्राह्मं रुचं जनयन्तः देवाः) ब्रह्म के देदीप्यमान तेज तथा ब्रह्मज्ञान को प्रकट करने वाले, उसकी शिक्षा देने वाले विद्वानों ने (अग्रे तत्

अब्रुवन्) पूर्वकाल में ही यह कहा था कि (यः तु ब्राह्मणः एवं विद्यात्) जो ज्ञानी ब्राह्मण ब्रह्म के उस ज्योतिर्मय स्वरूप को भली प्रकार यथावत् जानता है, (तस्य वशे देवाः असन्) समस्त देव उसके वश में रहते हैं।

ब्रह्म के इस स्वरूप के विषय में कहा गया है-

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।।

अथर्व वेद १०।८।१

(यः भूतं च भव्यं च) जो भूत भविष्य तथा वर्तमान (यः सर्व अधितिष्ठति) सब का अधिष्ठाता है, सबका स्वामी है, (यस्य च केवलं स्वः) और जिसका केवल प्रकाशमय तथा आनन्दमय स्वरूप ही है अर्थात् जो केवल प्रकाश स्वरूप तथा सुखस्वरूप है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है।

ब्रह्म के इस स्वरूप को जानने का अर्थ है, ब्रह्म को प्राप्त करना। समस्त देवों का ऐसे ब्रह्मवेत्ता महर्षि के वश में रहना तो स्वाभाविक ही है।

श्री सातवलेकर जी ने देवों का अर्थ इन्द्रियाँ करते हुये लिखा है कि ऐसे ब्रह्मज्ञानी की इन्द्रियाँ उसके वश में रहती हैं।

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि
रूपमश्विनौ व्यात्तम्।
इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण ।।

यजु. ३१।२२

(श्रीः च लक्ष्मी च ते पत्न्यौ) हे प्रभो! धन सम्पत्ति तथा शोभा आपकी पत्नियाँ हैं, (पार्श्वे अहोरात्रे) दिन तथा रात्रि पार्श्व, दायें-बायें अथवा आगे-पीछे के समान हैं। (नक्षत्राणि रूपं) नक्षत्र आपके स्वरूप की सुन्दरता तथा महानता का दिग्दर्शन कराने वाले हैं, (अश्विनौ व्यात्तम्)

द्युलोक तथा पृथिवी आपके खुले हुये मुख के समान हैं। (तात्पर्य यह है कि समस्त ब्रह्माण्ड आपके विराट् स्वरूप के समान है) (इष्णन् इषाण) इच्छा करते हुये, इच्छा कीजिये कि (अमुं म इषाण, अमुं परलोकं मे मम इषाण) मेरा परलोक सुखमय हो अथवा (अमुं मे इषाण) मेरी इच्छा है कि (सर्वलोकं मे इषाण) मुझे उत्तम लोक की प्राप्ति हो।

राष्ट्रीय जीवन

सं गंच्छध्वं सं वंदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासंते ।।

ऋग्वेद, १०।१९१।२

(सं गच्छध्वं) तुम सब संगठित होकर साथ साथ चलो, मिलकर रहो, (सं वदध्वं) परस्पर विरोध को त्यागकर प्रेमपूर्वक वार्तालाप करो, (सं वो मनांसि जानताम्) तुम लोगों का मन समान भाव से शांत होकर ज्ञान प्राप्त करे। (देवा भागं यथा पूर्वे) जिस प्रकार तुम्हारे विद्वान् पूर्वज अपने अपने भाग में आने वाली धन सम्पदा को परस्पर सहमति से ग्रहण किया करते थे, (संजानाना उपासते) उसी प्रकार तुम भी एकमत होकर अपना अपना अंश स्वीकार करते हुये ईश्वर की उपासना करो।

समानो मन्त्रः समितिः समानी संमानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मंन्त्रये वः समानेनं वो हविषा जुहोमि।।

ऋग्. १०।१९१।३

(एषां मन्त्रः समानः समितिः समानी) इन सब राष्ट्र के निवासियों की प्रार्थना एवं विचार समान हों, इनकी सभा तथा आपस में मिलकर बैठने का स्थान एक समान हो। (मनः समानं एषा चित्तं सह) सबका मन एवं चित्त एक समान हो तथा साथ साथ मिलकर कर्म करने वाला हो। (वः समानं मन्त्रं अभि मन्त्रये) तुम्हें एक समान मन्त्र द्वारा अभिमंत्रित करता हूँ, ज्ञान देता हूँ, (वः समानेन हविषा जुहोमि) तुम्हें एक समान हवि द्वारा यज्ञ करने अर्थात् एक समान संस्कृति द्वारा जीवन रूपी यज्ञ का सम्पादन

करने के लिये प्रेरित करता हूँ, सुसंस्कृत करता हूँ।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।।

ऋग्वेद, १०।१९१।४

(वः आकूतिः समानी) तुम लोगों के संकल्प (वः हृदयानि समानः) और हृदय एक समान हों, (वः मनः समानं अस्तु) तुम लोगों का मन एक समान हो, (यथा च) जिससे तुम्हारा सामाजिक जीवन (सुसह असति) सुसंगठित एवं शोभनीय हो।

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु।।

अथर्व. १९।४१।१

(भद्रम् इच्छन्तः स्वर्विदः ऋषयः) सबके कल्याण की इच्छा करने वाले ज्ञानी ऋषियों ने (अग्रे तपः दीक्षां उप निषेदुः) पूर्व काल में तपस्या की तथा दीक्षा अर्थात् ज्ञान और कर्म की शिक्षा दी, (ततः राष्ट्रं बलं ओजः च जातं) उससे मनुष्यों में राष्ट्र के प्रति प्रेम तथा राष्ट्रीय भावना और प्रजा में राष्ट्रीय बल, ओज एवं सामर्थ्य उत्पन्न हुआ। (तद् अस्मै) अस्तु इस राष्ट्र के प्रति (देवाः उप सं नमन्तु) समस्त विद्वान् विनम्र भाव से श्रद्धावनत हों अर्थात् विनम्र भाव से राष्ट्र की सेवा में तत्पर रहें।

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ।।

यजु. २२।२२

हे (ब्रह्मन्) महान् शक्तिवाले परमेश्वर! हमारे (राष्ट्रे ब्रह्मवर्चसी

ब्राह्मणः आ जायताम्) राष्ट्र में ब्रह्मवर्चसी ब्राह्मण उत्पन्न हों, (शूरः इषव्यः अतिव्याधी महारथः राजन्यः आ जायताम्) शूर, बाण वेधन करने में कुशल, शत्रुओं को भली प्रकार परास्त करने वाले महारथी क्षत्रिय उत्पन्न हों, (अस्य यजमानस्य धेनुः दोग्ध्री) इस यजमान अर्थात् यज्ञ करने वाले पुरुष की गाय दूध देने वाली हो, (अनड्वान् वोढा) बैल वहनशील हों, (सप्तिः आशुः) घोड़ा शीघ्र गमन करने वाला हो, (योषा पुरन्धिः) स्त्री सर्वगुण सम्पन्न नगर का नेतृत्व करने वाली हो, (रथेष्ठाः) रथ में बैठकर युद्ध करने वाला (जिष्णुः वीरः) वीर विजेता हो, (युवा सभेयः आजायताम्) युवा होकार पराक्रम करने वाला तथा सभा के योग्य उत्तम वक्ता पुत्र उत्पन्न हो, (नः पर्जन्यः निकामे निकामे वर्षतु) हमारे राष्ट्र में समय समय पर आवश्यकतानुसार वृष्टि हो, (नः ओषधयः फलवत्यः पच्यन्ताम्) हमारी ओषधियाँ अर्थात् अन्न की फसलें फलवती होकर परिपक्वता को प्राप्त हों और (नः योगक्षेमः कल्पताम्) हमारा योगक्षेम उत्तम रीति से होता रहे।

परिवार

सहृदयं सांमनस्यामविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।।

अथर्व. ३।३०।१

(वः सहृदयं सांमनस्यम् अविद्वेषम् कृणोमि) तुम्हारे लिये सहृदयता, एक समान मन तथा परस्पर द्वेष का अभाव, निर्धारित करता हूँ। (अन्यो अन्यम् अभिहर्यत) तुम लोग एक दूसरे की कामना करो तथा आपस में प्रेम करो जैसे (अघ्न्या जातं वत्समिव) गौ अपने नवजात वत्स से करती है।

भगवान् की आज्ञा है कि परिवार में सदा सहृदयता, परस्पर प्रेम तथा अविद्वेष से रहना चाहिये।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्।।

अथर्व. ३।३०।२

(पुत्रः पितुः अनुव्रतः) पुत्र पिता के अनुकूल कर्म करने वाला हो और (मात्रा संमनाः भवतु) माता के साथ समान मन वाला हो। (जाया) पत्नी (पत्ये) पति के लिये (मधुमतीम् शन्तिवाम् वाचं वदतु) मधुर तथा शान्तिदायक वाणी बोले।

व्रतं कर्म नाम। निघण्टु. २।१

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।

अथर्व. ३।३०।३

(मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षत) भाई, भाई के साथ द्वेष न करे, (मा स्वसा स्वसारम्) बहिन, बहिन के साथ द्वेष न करे (सम्यञ्चः सव्रताः भूत्वा) और सम्यक् व्यवहार वाले तथा समान कर्मों वाले होकर (भद्रया वाचम् वदत) सुखदायक, शान्तिपूर्ण, कल्याण करने वाली वाणी बोलें।

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः।।

अथर्व. ३।३०।४

(येन देवाः न वियन्ति) जिसके कारण माता पिता आदि देव विपरीत मार्गों पर नहीं चलते (न च मिथः विद्विषते) और न परस्पर द्वेष करते हैं, (तत् ब्रह्म) उस वैदिक ज्ञान को, (पुरुषेभ्यः संज्ञानम्) जो पुरुषों को शिक्षा देता है, उचित मार्ग दर्शन करता है, (वः गृहे कृण्मः) तुम्हारे गृह के लिये निर्धारित करता हूँ।

प्रत्येक मनुष्य को वैदिक ज्ञान के अनुसार आचरण करके अपना

पारिवारिक जीवन सुखमय बनाना चाहिये।

ज्यायंस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयंन्तः सधुंराश्चरंन्तः। अन्यो अन्यस्मैं वल्गु वदंन्त एतं सध्रीचीनांन् वः संमंनस्कृणोमि।।

अथर्व. ३।३०।५

(ज्यायस्वन्तः) वृद्धजनों के नियन्त्रण में (चित्तिनः) अपने अपने कर्तव्यों के प्रति सचेत रहते हुये तथा (संराधयन्तः) एक साथ मिलकर कार्यों को सिद्ध करते हुये (सधुराः चरन्तः) एक बैलगाड़ी में जुते हुये बैलों के समान साथ साथ चलो, (मा वि यौष्ट) अलग अलग न हो, (अन्यो अन्यस्मै) परस्पर एक दूसरे के लिये (वल्गु वदन्तः एत) प्रिय वचन बोलते हुये जीवन व्यतीत करो। (सध्रीचीनान् वः) तुम्हें गृहकार्यों में साथ साथ चलते हुये (संमनसः कृणोमि) समान मन वाला, एक से मन वाला बनाता हूँ।

सबके उपकार के लिये श्रेष्ठ कर्म करना

देवस्यं त्वा सवितुः प्रंसवेऽश्विंनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्तांभ्यां प्रसूंत आ रंभे।।

अथर्व. १९।५१।२

(सवितुः देवस्य प्रसवे) सविता देव द्वारा उत्पन्न इस सृष्टि में (प्रसूतः) परमात्मा द्वारा प्रेरित हुआ मैं (अश्विनो बाहुभ्यां) अश्वि देवताओं की बाहुओं से अर्थात् सबकी रक्षा एवं सहायता करने वाली भुजाओं से तथा (पूष्णः हस्ताभ्यां) पूषा देव के हाथों अर्थात् सबका पालन पोषण पोषण करने वाले हाथों से (त्वा आ रभे) तुझ श्रेष्ठ कर्म का प्रारंभ करता हूँ।

अश्विनौ- 'यद् व्यश्नुवाते सर्वं रसेनान्यो ज्योतिषान्यः-सूर्याचन्द्रमसौ।'

निरुक्त. १२।१।१

चन्द्रमा आनन्द रूपी रस प्रदान के द्वारा तथा सूर्य ज्योति प्रदान

के द्वारा समस्त जगत् को व्याप्त करके उसका कल्याण करते हैं। इन दोनों सूर्य तथा चन्द्रमा को अश्विनौ कहा जाता है। इनकी किरणें ही इनकी भुजायें हैं। इसी प्रकार दिन तथा रात्रि और द्युलोक तथा पृथिवी को भी अश्विनौ कहा जाता है।

काम

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि।।

ऋग्. १०।१२९।४ (पाठभेद), अथर्व.१९।५२।१

(अग्रे) सृष्टि के आरम्भ में (कामः समवर्तत) काम, ईश्वरीय इच्छा के रूप में सम्यक् रूप से प्रकट हुआ। (यत् मनसः) ब्रह्म के मन से जो काम उत्पन्न हुआ (तत् प्रथमं रेतः आसीत्) वह कामना का प्रथम बीज था। हे काम! (बृहता कामेन सयोनी सः) परमेश्वर की महान् कामना के साथ उत्पन्न होने वाले वह तुम समान योनि में अर्थात् तत् सदृश होकर (यजमानाय रायस्पोषं धेहि) यजमान के लिये धन सम्पत्ति तथा पुष्टि एवं समृद्धि प्रदान करो।

सृष्टि उत्पन्न करने के लिये परमात्मा के मन में सर्व प्रथम इच्छा के रूप में काम उत्पन्न हुआ।

सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा इदꣳसर्वमसृजत यदिदं किं च। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्।

तैत्ति. उप. २।६

परमात्मा ने कामना की कि मैं प्रजा को उत्पन्न करके बहुत हो जाऊं। उसने तप किया उसने तप करके इस सब संसार को, यह जो कुछ भी है, उसे उत्पन्न किया। उसे उत्पन्न करके उसी में प्रविष्ट हो गया।

ऐतरेय ब्राह्मण ५।५।६-७ में भी यह प्रकरण आया है।

प्रजापतिरकामयत प्रजायेय भूयान् स्यामिति, त तपोऽतप्यत, स तपस्तप्त्वेमाँल्लोकानसृजत पृथिवीमन्तरिक्षं दिवं, ताँल्लोकान्भयतपत्, तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतींष्यजायन्ताग्निरेव पृथिव्या अजायत, वायुरन्तरिक्षादादित्यो दिवस्तानि ज्योतींष्यभ्यतपत्, तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त, ऋग्वेद एवाग्नेरजायत, यजुर्वेदो वायोः, सामवेद आदित्यात्, तान् वेदानभ्यतपत् तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त, भूरित्येव ऋग्वेदादजायत, भुव इति यजुर्वेदात्, स्वरिति सामवेदात्।

ऐतरेय पंचम पंचिका २५।७

प्रजापति ने कामना की कि मैं प्रजोत्पादन के द्वारा बहुत हो जाऊँ। उन्होंने तप किया, उन्होंने तप करके इन लोकों को उत्पन्न किया, पृथ्वी को अन्तरिक्ष को, द्युलोक को। पुनः उन तीनों लोकों को अभितप्त किया, भली प्रकार तपाया। उन अभितप्त लोकों से अग्नि, वायु और आदित्य रूपी तीन ज्योतियाँ उत्पन्न हुयीं। पृथ्वी से अग्नि, अन्तरिक्ष से वायु तथा द्युलोक से सूर्य। उन तीनों ज्योतियों को पुनः अभितप्त किया, उन अभितप्त ज्योतियों से तीन वेद उत्पन्न हुये। अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद तथा आदित्य से सामवेद। उन तीनों वेदों को पुनः अभितप्त किया, उन अभितप्त वेदों से तीन व्याहृतियाँ (शुक्राणि) उत्पन्न हुयीं। ऋग्वेद से भूः, यजुर्वेद से भुवः तथा सामवेद से स्वः नामक व्याहृति उत्पन्न हुयी।

तानि शुक्राण्यभ्यतपत्, त तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वर्णा अजायन्ताकार उकारो मकार इति, तानेकधा समभरत् तदेतदो३ मिति, तस्मादोमोमिति प्रणौत्योमिति वै स्वर्गो लोक ओमित्यसौ योऽसौ तपति।

ऐतरेय पंचम पंचिका २५।७

प्रजापति ने उन ज्योतियों को पुनः अभितप्त किया। उन अभितप्त ज्योतियों से तीन वर्ण उत्पन्न हुये, अकार, उकार और मकार। उन्होंने उन तीनों को एक साथ संयोजित कर दिया। वह एकीभूत वर्ण त्रय ही ओम् हुआ। वह ओम् स्वर्गलोक है तथा जो यह आदित्य तप रहा है, वह भी ओंकार स्वरूप ही है।

अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।
वेदत्रयान्निरदुहद् भूर्भुवः स्वरितीति च।।

मनु. २।७६

कामेन मा काम आगन्हृदयाद् हृदयं परि।
यदमीषामदो मनस्तदैतप मामिह।।

अथर्व.१९।५२।४

(कामेन मा कामः आगन्) कामना करने से मुझे मेरा काम्य प्राप्त हो गया है, मेरी इच्छा पूर्ण हो गयी है, (हृदयात् हृदयं परि) हार्दिक रूप से प्रार्थना करने से मेरी हृदय की अभिलाषा पूर्ण हो गयी है। (यत् अमीषां अदः मनः) उनका वह जो मन है, (तत् मां इह उप एतु) वह मेरे पास यहाँ आ जाय।

भगवान् की कृपा से मनुष्य की हर उचित तथा सच्ची इच्छा पूर्ण हो सकती है, उसे अपने प्रिय व्यक्ति का प्रेम भी प्राप्त हो सकता है। आवश्यकता है सच्ची प्रार्थना और सच्चे प्रेम की।

यत्काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः।
तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा।।

अथर्व. १९।५२।५

(काम) हे काम! (यत् कामयमानाः) जिस फल की कामना करते हुये (ते इदं हविः कृण्मसि) हम आपके लिये यह हवि अर्पण करते हैं (तत् नः सर्व समृध्यतां) हमारी वह कामना सब प्रकार से पूर्ण हो, (अथ एतस्य हविषः वीहि) आप इस हवि को स्वीकार कीजिये। (स्वाहा) मधुर वचनों

के साथ यह आहुति काम को समर्पित है।

कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः। ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि।।

अथर्व. ९।२।१९

(कामः प्रथमः जज्ञे) काम सबसे पहले उत्पन्न हुआ, (देवाः एनं न आपुः) देवों ने इसको प्राप्त नहीं किया (पितरः मर्त्याः न) और न पितरों तथा मर्त्यों ने अर्थात् काम से पहले कोई उत्पन्न नहीं हुआ। (ततः त्वं विश्वहा ज्यायान् महान् असि) अतः तुम सबसे ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ हो, (तस्मै ते इत् नमः कृणोमि) हे काम! उस तुमको मैं नमस्कार करता हूँ।

यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्रा याभिः सत्यं भवति यद् वृणीषे।
ताभिष्ट्वमस्माँ अभिसंविशस्वान्यत्र पापीरप वेशया धियः।।

अथर्व. ९।२।२५

हे काम! (याः ते शिवाः भद्राः तन्वः) जो तेरे कल्याणकारी तथा हितकारी शरीर हैं, (याभिः) जिनसे तुम (यत् सत्यं भवति) जो सत्य होता है, उसे (वृणीषे) स्वीकार करते हो। (ताभिः त्वं अस्मान् अभि सं विशस्व) अपने उन स्वरूपों से तुम हम सब में प्रविष्ट हो और (पापीः धियः अन्यत्र अपवेशय) पापी बुद्धियों को अन्यत्र प्रविष्ट कराओ, हमसे दूर कर दो।

भगवान् हमारी सत्य पर आधारित कल्याणकारी कामनायें ही पूर्ण करते हैं। इसके लिये यह आवश्यक है कि हम असत्य तथा अहित्कारी और पाप बुद्धि से युक्त कामनाओं का त्याग कर दें और अपनी बुद्धि को पवित्र करें। क्योंकि बुद्धि के नाश से तो मनुष्य का ही नाश हो जाता है।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

गीता. २।६३

क्रोध से संमोह अर्थात् अत्यन्त अविवेक उत्पन्न होता है, संमोह से

स्मृति का, विवेक का नाश होता है। स्मृति के भ्रमित हो जाने से बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि का नाश हो जाने से पुरुष का पतन हो जाता है, नाश हो जाता है।

इडा, सरस्वती, मही (तीन देवियाँ)

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः।।

ऋग्. १।१३।९,५।५।८

(इडा, सरस्वती, मही) मातृभाषा, ज्ञान की देवी सरस्वती तथा मही अर्थात् मातृभूमि, (तिस्रः देवीः मयोभुवः) ये सुख देने वाली तीन देवियाँ (अस्रिधः) क्षीण न होती हुयीं (बर्हिः सीदन्तु) प्रसन्नता पूर्वक यज्ञ में आकर विराजमान हों।

इळा के अनेक अर्थ हैं।

इळा- रीढ़ की बायीं ओर स्थित महत्वपूर्ण नाड़ी, जिसे गङ्गा भी कहा जाता है।

इळा= गौः।

इळा= भूमि। निघण्टु. १।१

इळा = अन्न। निघण्टु. २।७

इळा = वाणी। निघण्टु. १।११

इळा= पृथ्वी स्थानीय अग्नि को भी इळा कहा जाता है।

निरुक्त. ८।२।१३

भारती पवमानस्य सरस्वतीळा मही।
इमं नो यज्ञमा गमन् तिस्रो देवीः सुपेशसः।।

ऋग्. ९।५।८

(सरस्वती इडा) ज्ञान की देवी सरस्वती, मातृभाषा तथा (मही भारती) भारत की महान् भूमि, भारतमाता अथवा भारतीय संस्कृति (सुपेशसः तिस्रः देवीः) सुन्दर रुप वाली ये तीन देवियाँ (पवमानस्य इमं

नः यज्ञं) हमारे इस सोम यज्ञ में (आ गमन्) आयें।

भारती-भरत आदित्यस्तस्य भाः। निरुक्त. ८।२।१३

अतः भारती का अर्थ हुआ आदित्य प्रभा, आदित्य की ज्योति।

भारती का अर्थ सरस्वती तथा भारत की भाषा संस्कृति अथवा भारतीय संस्कृति होता है क्योंकि भाषा तथा संस्कृति में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। किसी भी देश की भाषा से उसकी संस्कृति बनती है और संस्कृति से भाषा।

श्री सातवलेकर जी ने भारती का अर्थ भारत की राष्ट्र भाषा किया है।

सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतूर्तिः।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य।।

ऋग्. २।३।८

(नः धियं साधयन्ती) हमारी बुद्धियों को उत्तम मार्ग में प्रेरित करने वाली (सरस्वती) सरस्वती, (इडा) देवी इडा, दिव्य गुणों से युक्त वाणी, (विश्वतूर्तिः भारती) सबको तृप्त करने वाली भारती, भारतभूमि तथा भारतीय संस्कृति, (तिस्रः देवीः) ये तीनों देवियाँ (इदं शरणं निषद्य) इस यज्ञशाला में बैठकर (स्वधया) अपनी धारणा शक्ति से (इदं बर्हिः अच्छिद्रं पान्तु) इस यज्ञ की पूर्ण रूप से रक्षा करें।

भारती का अर्थ सरस्वती भी होता है।

'वीणा पुस्तक रञ्जति हस्ते भगवति भारति देवि नमस्ते' इति कालिदासस्य वचनम्।

हलायुध कोश

निरुक्त ८।२।१३ में कहा गया है-

भरत= आदित्य।

भारती= आदित्य ज्योति।

सरस्वती= जल में रहने वाली विद्युत।

इडा= पृथिवी स्थानीय अग्नि।

'आदित्य ज्योति' अग्नि तथा विद्युत, ये तीन प्रकाशमान अग्नियाँ

तिस्रो देवी हैं।

अथर्व वेद ५।२७।९ में कहा है- इडा सरस्वती मही भारती।
यजुर्वेद २७।१९ में कहा है- इडा सरस्वती भारती मही।
यजुर्वेद २१।१९ में कहा है- इडा सरस्वती भारती
यजुर्वेद २०।६३ में कहा है- सरस्वती भारती इडा
यजुर्वेद २०।४३में कहा है- इडा सरस्वती भारती
ऋग्वेद २।३।८ में कहा है- इडा सरस्वती भारती।
ऋग्वेद ९।५।८ में कहा है- सरस्वती इडा भारती।
ऋग्वेद ५।५।८ में कहा है- इडा सरस्वती मही।
ऋग्वेद १।१३।९ में कहा है- इडा सरस्वती मही।
ऋग्वेद १०।११०।८ में कहा है- इडा सरस्वती भारती।

इसका अर्थ है कि मही तथा भारती पर्यायवाची शब्द हैं। मही का पृथिवी अर्थ तो प्रसिद्ध है। अतः इन मन्त्रों में मही भारती का अर्थ भारतमाता, मातृभूमि अथवा भारतीय संस्कृति लेना उचित प्रतीत होता है।

तिस्रो देवीर्बर्हिरेद ँ सदन्त्विडा सरस्वती भारती।
मही गृणाना।।

यजु. २७।१९

(इडा सरस्वती मही गृणाना) बड़ी स्तुति के योग्य इडा, सरस्वती तथा भारती, (तिस्रः देवीः) ये तीन देवियाँ (इदं बर्हिः आसदन्तु) इस यज्ञ में कुश के आसन पर बैठें।

ऐतरेय ब्राह्मण २।१।४ में कहा गया है-

तिस्रो देवीर्यजति, प्राणो वा अपानो व्यानस्तिस्रो देवीः, ता एव तत्प्रीणाति, ता यजमाने दधाति।

प्राण, अपान तथा व्यान, ये तीन देवियाँ हैं। उन से उन्हीं को सन्तुष्ट करता है और उनको यजमान में रखता है।

यश

यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशः सोमो अजायत।
यशा विश्वस्य भूतस्याहमस्मि यशस्तमः।।

अथर्व. ६।५८।३,६।३९।३

हे प्रभो! जिस प्रकार (यशाः इन्द्रः) सूर्य यशस्वी होकर उत्पन्न हुआ है, (यशाः अग्निः) अग्नि यशस्वी होकर उत्पन्न हुआ है, (यशाः सोमः अजायत) चन्द्रमा यशस्वी होकर उत्पन्न हुआ है, उसी प्रकार (यशा विश्वस्य भूतस्य) समस्त यशस्वी प्राणियों में (अहम् अस्मि यशस्तमः) मैं सबसे अधिक यशस्वी बनूँ।

यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती।
यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रतिमुच्यताम्।
यशसाऽस्याः सꣳसदोऽहं प्रवदिता स्याम्।।

साम. पूर्वा. ६।३।१०, क्र.सं. ६११

(यशः मा द्यावा पृथिवी) द्युलोक तथा पृथिवी लोक मुझे यश प्राप्त करायें, यशस्वी बनायें, (यशः मा इन्द्र बृहस्पती) इन्द्र तथा बृहस्पति मुझे यश प्रदान करें। (यशः भगस्य विन्दतु) भग देवता का यश मुझे प्राप्त हो। (यशः मा प्रति मुच्यताम्) मैं यश से कभी वञ्चित न होऊँ, (यशसा अस्याः संसदः अहम् प्रवदिता स्याम) इस संसद के यश से युक्त होकर मैं इस सभा में प्रवक्ता बनूँ।

यशसं मेन्द्रो मघवान् कृणोतु यशसं द्यावापृथिवी उभे इमे।
यशसं मा देवः सविता कृणोतु प्रियो दातुर्दक्षिणाया इह स्याम्।।

अथर्व. ६।५८।१

(मघवान् इन्द्रः मा यशसं कृणोतु) धनवान् इन्द्र मुझे यशस्वी करें, (उभे इमे द्यावा पृथिवी मा यशसं) ये दोनों द्यावा पृथिवी मुझे यशस्वी बनायें, (सविता देवः मा यशसं कृणोतु) सविता देव मुझे यशस्वी करें, (दक्षिणायाः दातुः इह प्रियः स्याम्) मैं यहाँ दक्षिणा देने वाले का प्रिय बनूँ।

यथेन्द्रो द्यावांपृथिव्योर्यशंस्वान् यथाप ओषंधीषु यशंस्वतीः।
एवा विश्वेषु देवेषुं वयं सर्वेषु यशसंः स्याम।।

अथर्व. ६।५८।२

(यथा इन्द्रः द्यावा पृथिव्योः यशस्वान्) जिस प्रकार इन्द्र, द्युलोक तथा पृथिवी के बीच में यशस्वी हैं, (यथा आपः ओषधीषु यशस्वीः) जिस प्रकार जल ओषधियों में यश से युक्त हैं, (एवा विश्वेषु देवेषु) उसी प्रकार समस्त देवों में (सर्वेषु वयं यशसः स्याम) और समस्त प्राणियों में हम यशस्वी हो जायँ।

संसार का वर्णन

द्यौर्नः पिता जंनिता नाभिरत्र बन्धुंर्नो माता पृंथिवी महीयम्।
उत्तानयोश्चम्वो३ योनिंरन्तरत्रा पिता दुंहितुर्गर्भमाधांत्।।

ऋग्. १।१६४।३३, अथर्व.९।१०।१२

(द्यौः नः पिता जनिता) यह द्युतिमान् सूर्य हमारा पिता तथा जन्मदाता है (इयं मही पृथिवी माता) और यह महनीया पृथिवी हमारी माता है। (अत्र नाभिः नः बन्धुः) एक ही नाभि से सम्बद्ध होने के कारण हम सब आपस में बन्धु के समान हैं। (उत्तानयोः चम्बोः) ऊपर की ओर तने हुये द्युलोक तथा (अन्तः) नीचे जो पृथिवी रूपी (योनिः) सबकी उत्पत्ति का स्थान है। (अत्र) उसमें (पिता) अर्थात् सूर्य (दुहितुः) अपने से सुदूर स्थित पृथिवी में (गर्भं आधात्) गर्भ स्थापित करता है, जिससे प्राणियों एवं वनस्पतियों आदि की उत्पत्ति होती है।

मूर्ख एवं दुष्ट लोग इस आलंकारिक वर्णन का जानबूझकर दुष्प्रचार करते हुये कहते हैं कि वेद में तो लिखा है कि पिता अपनी पुत्री में गर्भ स्थापित करता है, जब कि इस मन्त्र में सूर्य द्वारा पृथिवी में गर्भ धारण कराने की बात कही गयी है क्योंकि सूर्य के कारण ही पृथिवी में समस्त प्राणियों तथा वनस्पतियों आदि की उत्पत्ति होती है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया,

समानं वृक्षं परि षस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-,

नंश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ।।

अथर्व. ९।९।२०, ऋग्. १।१६४।२०

(द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया) एक साथ रहने वाले तथा उत्तम पंखों वाले दो मित्र पक्षी (आत्मा एवं परमात्मा) (समानं वृक्षं परिषस्वजाते) एक ही संसार रूपी अथवा शरीर रूपी वृक्ष पर मिलकर रहते हैं, (तयो अन्यः) उन दोनों में से एक (जीवात्मा) वृक्ष के पके हुये फलों को स्वाद लेकर खाता है, संसार के ऐश्वर्य का उपभोग करता है तथा (अन्यः अनश्नन्) दूसरा (परमात्मा) न खाता हुआ (अभिचाकशीति) भली प्रकार सब देखता है।

यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे।

तस्य यदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद।।

ऋग्. १।१६४।२२, अथर्व.९।९।२१

(यस्मिन् वृक्षे) जिस संसार रूपी वृक्ष में (मध्वदः सुपर्णाः) मधुर फल खाने वाले तथा सुन्दर पंखों वाले पक्षी (निविशन्ते) निवास करते हैं और (विश्वे अधि सुवते) सब अपनी सन्तानों को उत्पन्न करते हैं, (तस्य यत् अग्रे स्वादु पिप्पलं आहुः) उस वृक्ष का जो स्वादयुक्त तथा सर्वश्रेष्ठ फल कहा जाता है, (तत् न उत् नशत्) उस फल को वह प्राप्त नहीं कर पाता (यः पितरं न वेद) जो जगत् के पिता परमात्मा को नहीं जानता।

कः स्विदेकाकी चरति क उं स्विज्जायते पुनः।

किꣳ स्विद्धिमस्यं भेषजं किम्वावपनं महत्।।

यजु. २३।४५

(कः स्वित् एकाकी चरति) कौन अकेला विचरण करता है (उ कः स्वित् पुनः जायते) और कौन फिर फिर उत्पन्न होता है? (किं स्वित् हिमस्य

भेषजम्) हिम की औषधि क्या है (उ किं महत् आवपनम्) तथा बीज बोने का महान् स्थान क्या है?

सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत्॥

यजु. २३।४६

(सूर्यः एकाकी चरति) सूर्य अकेला चलता है, (चन्द्रमाः पुनः जायते) चन्द्रमा फिर फिर उत्पन्न होता है, (अग्निः हिमस्य भेषजम्) शीत की औषधि अग्नि है तथा (महत् आवपनं भूमिः) बीज बोने का महान स्थान भूमि है।

किꣳ स्वित्सूर्यसमं ज्योतिः किꣳ समुद्रसमꣳ सरः।
किꣳ स्वित्पृथिव्यै वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यते॥

यजु. २३।४७

(स्वित् सूर्यसमं ज्योतिः किम्) सूर्य के समान ज्योति कौन है? (समुद्रसमं सरः किम्) समुद्र के समान सरोवर कौन है? (स्वित् पृथिव्यै वर्षीयः किम्) पृथिवी से अधिक वर्षों पुराना अथवा बड़ा एवं श्रेष्ठ कौन है तथा (कस्य मात्रा न विद्यते) किसकी मात्रा, किसका परिमाण ज्ञात नहीं होता?

कुछ विद्वानों ने 'वर्षीय' का अर्थ श्रेष्ठ अथवा बड़ा किया है।

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमꣳ सरः।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते॥

यजु. २३।४८

(सूर्यसमं ज्योतिः ब्रह्म) ब्रह्म, सूर्य के समान ज्योति है, (समुद्रसमं सरः द्यौः) द्युलोक समुद्र के समान सरोवर है, (पृथिव्यै वर्षीयान् इन्द्रः) पृथिवी से अधिक वर्षों पुराना अथवा श्रेष्ठ इन्द्र अर्थात् सूर्य है और (गोः तु मात्रा न विद्यते) वाणी का परिमाण ज्ञात नहीं होता।

कुछ विद्वानों ने गो का अर्थ गाय किया है।

सामाजिक समरसता

यत्र ब्रह्मं च क्षत्रं चं सम्यञ्चौ चरंतः सह।
तँल्लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निनां।।

यजु. २०।२५

(यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च) जहाँ ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ण दोनों (सम्यञ्चौ सह चरतः) अच्छी प्रकार से एक साथ मिलकर विचरण करते हैं, कार्य करते हैं तथा (यत्र देवाः अग्निना) जहाँ विद्वान् लोग अग्नि के समान तेजस्वी होकर निवास करते हैं, (तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं) उस लोक को मैं पुण्य तथा उत्कृष्ट मानता हूँ।

यत्रेन्द्रंश्च वायुश्चं सम्यञ्चौ चरंतः सह।
तँल्लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यतें।।

यजु. २०।२६

(यत्र इन्द्रः च वायुः च) जहाँ इन्द्र और वायु (सम्यञ्चौ चरतः सह) एक साथ मिलकर सम्यक रूप से विचरण करते हैं तथा (यत्र सेदिः न विद्यते) जहाँ अन्न आदि न मिलने के कारण लोगों को क्लेश नहीं होता, (तं पुण्यं लोकं प्रज्ञेषं) उस लोक को मैं पुण्य लोक मानता हूँ।

जहाँ सूर्य, मेघ, जल, अग्नि तथा वायु आदि शक्तियों की उपलब्धता सम्यक् रूप से होती है, वही लोक श्रेष्ठ माना जाता है क्योंकि वहाँ जनता को अन्न आदि उपलब्ध होने के कारण सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने का अवसर प्राप्त होता है और अतिवृष्टि, अनावृष्टि तथा दुर्भिक्ष आदि से कष्ट नहीं होता।

प्रेयसी की कामना

यथां वृक्षं लिबुंजा समन्तं परिषस्वजे। एवा परिष्वजस्व
मां यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापंगा असंः।।

अथर्व. ६।८।१

(यथा लिबुजा वृक्षं समन्तं परिषस्वजे) जिस प्रकार बेल वृक्ष से

चारों ओर से लिपट जाती है, (एवं मां परिष्वजस्व) उसी प्रकार तुम मेरा आलिंगन करो, (यथा मां कामिनी असः) जिससे तुम मेरी कामना करने वाली बनो और (यथा मत् अपगा न असः) मुझसे दूर जाने वाली न हो।

यथा सुपर्णः प्र पतन् पक्षौ निहन्ति भूम्याम्। एवा निहंन्मि ते
मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापंगा असंः।।

अथर्व. ६।८।२

(यथा प्रपतन् सुपर्णः) जैसे ऊपर से उतरता हुआ पक्षी (भूम्यां पक्षौ निहन्ति) अपने दोनों पंखों को भूमि की ओर दबाता है, गति रहित कर देता है, उसी प्रकार (एवं ते मनः नि हन्मि) मैं तेरे मन को गति रहित करता हूँ, स्थिर करता हूँ और अपनी ओर खींचता हूँ। (यथा मां कामिनी असः) जिससे तुम मेरी कामना करने वाली बनो और (यथा मत् अपगा न असः) मुझसे दूर जाने वाली न हो।

यथेमे द्यावापृथिवी सद्यः पर्येति सूर्यः। एवा पर्येमि ते
मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापंगा असंः।।

अथर्व. ६।८।३

(यथा इमे द्यावा पृथिवी) जिस प्रकार इस द्युलोक और पृथिवी लोक में (सूर्यः सद्यः पर्येति) सूर्य का प्रकाश तुरन्त चारों ओर फैल जाता है, (एवं ते मनः पर्येमि) उसी प्रकार मैं तेरे मन के अन्दर व्याप्त हो जाता हूँ, उसे चारों ओर से घेर लेता हूँ। (यथा मां कामिनी असः) जिससे तुम मेरी कामना करने वाली बनो और (यथा मत् अपगा न असः) मुझसे दूर जाने वाली न हो।

वाञ्छं मे तन्वं१ पादौ वाञ्छाक्ष्यौ३ वाञ्छं सक्थ्यौ३।
अक्ष्यौ३ वृषण्यन्त्याः केशा मां ते कामेन शुष्यन्तु।।

अथर्व. ६।९।१

हे प्रेयसी! (मे तन्वं पादौ वाञ्छ) तुम मेरे शरीर और पैरों की कामना करो, (अक्ष्यौ वाञ्छ) मेरे नेत्रों की कामना करो, (सक्थ्यौ वाञ्छ)

मेरी जाँघों की कामना करो। (वृषण्यन्त्याः ते अक्ष्यौ केशाः) वीर्य सेचन में समर्थ मेरी कामना करती हुयी तेरी आँखें और बाल (कामेन मां शुष्यन्तु) काम से मुझे सुखा दें।

मम॑ त्वा दोषणि॒श्रिषं॑ कृणोमि॑ हृदय॒श्रिष॑म्।
यथा॒ मम॒ क्रता॒वस॒ो मम॑ चि॒त्तमु॒पाय॑सि।।

अथर्व. ६।९।२

(त्वा मम दोषणिश्रिषं) मेरी भुजाओं में आश्रित तुम्हें (हृदयाश्रिषं कृणोमि) मैं अपने हृदय में आश्रित कता हूँ, वसाता हूँ, (यथा मम क्रतौ असः) जिससे तुम मेरे कार्यों में, मेरे जीवन में आ जाओ तथा (मम चित्तं उपायसि) मेरे चित्त के, मेरे मन तथा हृदय के समीप आ जाओ।

ऋण रहित होना

इ॒हैव सन्त॒ः प्रति॑ दद्म एनज्जी॒वा जी॒वेभ्यो॒ नि ह॑राम एनत्।
अ॒पमित्य॑ धा॒न्यं॑१॒ यज्ज॒घसा॒हमि॒दं तद॑ग्ने अनृ॒णो भ॑वामि।।

अथर्व. ६।११७।२

(इह इव सन्तः एनत् प्रति दद्म) यहाँ रहते हुये ही इस ऋण को चुका देते हैं, (जीवाः जीवेभ्यः एनत् नि हरामः) इस जीवन में अन्य जीवों के इस ऋण को हम निःशेष करते हैं, पूर्ण रूप से चुका देते हैं। (यत् धान्यं अपमित्य अहं जघस) जो धान्य अर्थात् अनाज आदि हमने उधार लेकर खाया है, (अग्ने) हे अग्ने! (इदं तत् अनृणः भवामि) मैं इस प्रकार उससे ऋण रहित होता हूँ।

अ॒नृणा अ॒स्मिन्न॑नृ॒णाः पर॑स्मिन् तृ॒तीये॑ लो॒के अ॑नृ॒णाः स्या॑म।
ये दे॑व॒यानाः॑ पितृ॒याणा॑श्च लो॒काः सर्वा॑न् प॒थो अ॑नृ॒णा आ क्षि॑येम।।

अथर्व. ६।११७।३

(अस्मिन् लोके अनृणाः) इस लोक में हम अनृण, ऋण रहित हों, (परस्मिन् अनृणाः) परलोक में ऋण रहित हों (तृतीये लोके अनृणाः

स्याम) तथा तृतीय लोक में भी हम ऋण रहित हों। (ये देवयानाः पितृयाणाः च लोकाः) जो देवयान तथा पितृयान लोक हैं, (सर्वान् पथः अनृणाः आक्षियेम) उन सबके मार्ग में हम ऋण मुक्त होकर चलें।

मनुष्य को सब प्रकार के ऋणों से सर्वथा मुक्त रहना चाहिये। ऋणी रहकर मरना उचित नहीं है।

केन सूक्त

अपने शरीर की रचना पर ही सम्यक् रुप से विचार करके हमें भगवान् की महिमा का बोध हो जाता है। इस सूक्त में शरीर आदि से सम्बन्धित प्रश्नों द्वारा परमात्मा का चिन्तन करने का उपदेश किया गया है। इसी सूक्त के आधार पर केनोपनिषद् की रचना की गयी है।

केन पार्ष्णी आभृते पूरुषस्य केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ।
केनाङ्गुलीः पेशनीः केन खानि केनोच्छ्लङ्खौ मध्यतः कः प्रतिष्ठाम्।।

अथर्व. १०।२।१

(पूरुषस्य पार्ष्णी केन आभृते) मनुष्य की एड़ियाँ किसने बनायी हैं? (केन मांसं संभृतं) शरीर में मांस किसने भरा है? (केन गुल्फौ) टखने किसने बनाये हैं? (केन पेशनीः अंगुलीः) सुन्दर अंगुलियाँ किसने बनायी हैं? (केन खानि) आँख, कान, नाक आदि के छिद्र किसने बनाये हैं? (केन उच्छ्लंखौ) पाँव के तलवे किसने बनाये हैं? (मध्यतः कः प्रतिष्ठाम्) शरीर के मध्य भाग को आधार कौन देता है?

कस्मान्नु गुल्फावधरावकृण्वन्नष्ठीवन्तावुत्तरौ पूरुषस्य।
जङ्घे निर्ऋत्य न्य१ दधुः क्व१ स्विज्जानुनोः संधी क उ तच्चिकेत।।

अथर्व. १०।२।२

(नु कस्मात् अधरौ गुल्फौ अकृण्वन्) भला किस के द्वारा नीचे के दोनों टखने बनाये गये हैं और (पूरुषस्य उत्तरौ अष्ठीवन्तौ) पुरुष के ऊपर के दोनों घुटनों तथा (जंघे निर्ऋत्य क्व स्वित् न्यदधुः) जाघों को अलग अलग बनाकर कैसे जोड़ दिया गया है? (जानुनोः संधी) घुटनों के जोडों

को किसने बनाया है? (क उ तत् चिकेत) भला कौन उसको जानता है?

कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्। येषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम्।।

अथर्व. १०।२।६

(इमौ कर्णौ नासिके चक्षणी मुखं सप्त खानि शीर्षणि कः ततर्द) सिर में इन दो कान, दो नाक, दो आँख तथा मुख के सात छेद किसने खोदे हैं? (येषां विजयस्य मह्मनि चतुष्पादः द्विपदः यामं पुरुत्रा यन्ति) जिनके विजय की महिमा में अर्थात् जिनकी सहायता से विजय प्राप्त करके चतुष्पाद् और द्विपाद प्राणी अर्थात् जानवर तथा मनुष्य अपने जीवन पथ पर बहुत प्रकार से चलते हैं।

हन्वोर्हि जिह्वामदधात् पुरुचीमधा महीमधि शिश्राय वाचम्।
स आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तरपो वसानः क उ तच्चिकेत।।

अथर्व. १०।२।७

(हि पुरूचीं जिह्वां हन्वोः अदधात्) बहुत चलने वाली जीभ को दोनों जबड़ों के बीच में रख दिया है (अध महीं वाचं अधि शिश्राय) और प्रभावशाली महिमामयी वाणी को उसमें आश्रित कर दिया है। (अपः वसानः सः भुवनेषु अन्तः आ वरीवर्ति) कर्मों को धारण करने वाला वह सब भुवनों के अन्दर गुप्त होकर रह रहा है, (क उ तत् चिकेत) भला उसे कौन जानता है?

केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौरुत्तरा हिता।
केनेदमूर्ध्वं तिर्यक्चान्तरिक्षं व्यचो हितम्।।

अथर्व. १०।२।२४

(केन इयं भूमिः विहिताः) किसने यह भूमि विशेष रूप से रची है? (केन द्यौः उत्तरा हिता) किसने द्युलोक को ऊपर रखा है? (केन इदं अन्तरिक्षं ऊर्ध्वं तिर्यक् व्यचः च हितम्) किसने यह विस्तृत अन्तरिक्ष ऊपर

तिरछा और सब ओर फैला हुआ रखा है?

ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता।
ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक्चान्तरिक्षं व्यचो हितम्।।

अथर्व. १०।२।२५

(ब्रह्मणा भूमिः विहिता) ब्रह्म ने भूमि को विशेष प्रकार से विहित किया है, (ब्रह्म द्यौः उत्तरा हितः) ब्रह्म ने द्युलोक को ऊपर रखा है (ब्रह्म इदं अन्तरिक्षं ऊर्ध्वं तिर्यक् व्यचः च हितम्) तथा ब्रह्म ने ही यह अन्तरिक्ष ऊपर तिरछा और फैला हुआ रखा है।

सूर्य की किरणों से रोग नाश

सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः।
उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशीशमः।।

अथर्व. ९।८।२२

(ते शीर्ष्णः कपालानि सं) तेरे शिर के कपालों के साथ (शीर्ष्णः रोगं) सिर के रोग को (हृदयस्य च यः विधुः) तथा हृदय की जो व्याधि है, (उद्यन् आदित्यः रश्मिभिः) उसे उदय होता हुआ सूर्य अपनी किरणों से (अनीनशः) नाश कर देता है और (अंगभेदं अशीशसः) अंगों की पीड़ा आदि को शान्त कर दे ता है।

सूर्य की किरणों से पवित्रता

वाचस्पतये पवस्व वृष्णो अꣳशुभ्यां गभस्तिपूतः।
देवो देवेभ्यः पवस्व येषां भागोऽसि।।

यजु. ७।१

हे मनुष्य! (वाचः पतये पवस्व) वेदवाणी के स्वामी तथा रक्षक परमात्मा की प्राप्ति के लिये पवित्र हो, (वृष्णः अंशुभ्यां गभस्ति पूतः) सुखों की वर्षा करने वाले सूर्य की किरणों से पवित्र होकर (देवः) तथा दिव्य गुणों से युक्त होकर, तुम (येषां भागः असि) जिन देवों के भाग हो, अंश हो, (देवेभ्यः पवस्व) उन देवों को प्राप्त करने के लिये पवित्र हो।

भगवान् को प्राप्त करने के लिये तथा देवों के समीप जाने के लिये हमें पवित्र बनना चाहिये। शारीरिक एवं मानसिक रूप से पवित्र होने के लिये हमें पवित्र करने वाली सूर्य किरणों से सहायता लेनी चाहिये, उनका सेवन करना चाहिये। उनसे हमारा शरीर, मन एवं बुद्धि, सब स्वस्थ तथा पवित्र होंगे।

सवितुस्त्वां प्रसव उत्पुंनाम्यच्छिंद्रेण पवित्रेंण सूर्यस्य रश्मिभिंः। सवितुर्वः प्रसव उत्पुंनाम्यच्छिंद्रेण पवित्रेंण सूर्यस्य रश्मिभिंः। तेजोऽसि शुक्रमंस्यमृतंमसि धाम नामांसि प्रियं देवानामनांधृष्टं देवयजंनमसि।।

यजु. १।३१

(सवितुः प्रसवे) सविता देव की इस सृष्टि में (त्वा) तुम सबको (अच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः उत्पुनामि) छिद्र रहित अर्थात् पूर्ण रूप से निरन्तर पवित्र करने वाली सूर्य की किरणों से उत्कृष्टता से पवित्र करता हूँ। (सवितुर्वः प्रसव अच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः उत्पुनामि) सविता देव की इस सृष्टि में छिद्र रहित अर्थात् पूर्ण रूप से निरन्तर पवित्र करने वाली सूर्य की किरणों से भली भाँति पवित्र करता हूँ। (तेजः असि) तुम तेजस्वी हो, (शुक्रं असि) पवित्र हो, वीर्यवान् हो, (अमृतं असि) अमृत स्वरूप हो, (धाम नाम असि) तुम ही दवताओं का पवित्र धाम तथा यज्ञ हो, (देवानां प्रियं अनाधृष्टं देव यजनं) तुम देवों के प्रिय, किसी से अभिभूत न होने वाले, यजन अर्थात् देव पूजन के साधन हो। तुम्हारा शरीर देवों का मन्दिर है।

स्पष्ट है कि सूर्य की किरणें पवित्र करने का उत्कृष्ट साधन हैं।

गौ

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमंक्रन्त्सीदंन्तु गोष्ठे रणयंन्त्वस्मे।
प्रजाऽवंतीः पुरुरूपां इह स्युरिन्द्रांय पूर्वीरुषसो दुहांनाः।।

अथर्व. ४।२१।१

(गावः आ अग्मन्) गौयें आ गयी हैं (उत भद्रं अक्रन्) और उन्होंने कल्याण किया है। (गोष्ठे सीदन्तु) वे गोशाला में रहें (अस्मे रणयन्) और हमें सुख दें। (इह प्रजावतीः पुरुरूपा स्युः) वे यहाँ सन्तान युक्त होकर बहुत रूपों वाली, बहुत रंगो वाली हो जायँ (इन्द्राय उषसः पूर्वीः दुहानाः) तथा इन्द्र के यज्ञ के लिये उषाकाल के प्रारम्भ होते ही दुहे जाने वाली हो जायँ।

यूयं गांवो मेदयथा कृशं चिंदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृंणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वयं उच्यते सुभासुं।।

ऋग्. ६।२८।६, अथर्व.४।२१।६

(यूयं गावो मेदयथा) हे गौवो! तुम दुर्बल को भी पुष्ट कर देती हो, (अश्रीरं चित् सुप्रतीकम्) निस्तेज को, श्री रहित को भी सुन्दर तथा शोभायुक्त बना देती हो, (भद्रवाचः) हे कल्याणकारी वाणी अर्थात् उत्तम शब्द करने वाली गौवो! (गृहं भद्रं कृणुथ) तुम घर को कल्याकारी तथा सुखप्रद कर देती हो। (वः वयः) तुम्हारा अन्न अर्थात् दुग्ध आदि (सभासु) सभाओं में लोगों के द्वारा (बृहत् उच्यते) वृद्धि करने वाला तथा महत्वपूर्ण कहा जाता है।

प्रजावंतीः सूयवंसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुंप्रपाणे पिबंन्तीः।
मा वं स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्यं हेतिर्वृंणक्तु।।

ऋग्. ६।२८।७, अथर्व.४।२१।७

(प्रजावतीः) उत्तम बच्चों वाली, (सुयवसे रुशन्ती) उत्तम घास के लिये इधर उधर घूमते हुये शोभायमान होने वाली (सुप्रपाणे शुद्धाः अपः पिबन्ती) तथा उत्तम पेयजल के स्थानों में शुद्ध जल को पीने वाली गौवो (स्तेनः अघशंसः वः मा ईशत) चोर, तस्कर और पापी तुम्हारे ऊपर अधिकार न कर लें, (वः रुद्रस्य हेतिः परि वृणक्तु) रुद्र के अस्त्र तुम्हारी चारों ओर से रक्षा करें।

उपं ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम्।
श्रेष्ठं सवं संविता सांविषन्नो ऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम्।।

अथर्व.९।१०।४, ऋग्. १।१६४।२६

(एतां सुदुघां धेनुं उपह्वये) सुगमता से दुही जाने वाली धेनु अर्थात् वेदवाणी को पास बुलाता हूँ अर्थात् अध्ययन करता हूँ, (उत सुहस्तः गो धुक् एनां दोहत) उत्तम हाथों से, अच्छे हाथों से, दुहने में कुशल पुरुष अर्थात् विद्वान् इस वेदवाणी को दुहें, इससे ज्ञान प्राप्त करें। (सविता श्रेष्ठं सवं नः साविषत्) सविता देव हमें श्रेष्ठ प्रेरणा तथा ऐश्वर्य प्रदान करें (घर्मः अभीद्धः तत् उ सु प्रवोचम्) तथा प्रकाशमान दिन के समान हमें ज्ञान का प्रवचन करें, उपदेश करें।

घर्मः अहः नाम। निघण्टु. १।९

घर्म= दिन।

धेनुः वाङ् नाम। निघण्टु. १।११

गौः वाङ् नाम। निघण्टु. १।११

इस मन्त्र में धेनु तथा गो का अर्थ वेदवाणी है।

अभीद्धः अभिदीप्तः घर्मः। प्रकाशमान दिन।

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाऽभ्यागात्।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय।।

ऋग्. १।१६४।२७, अथर्व.९।१०।५

(वसूनां वसुपत्नी) अष्ट वसुओं तथा ऐश्वर्यों को धारण करने वाली, (इयं अघ्न्या) न मारे जाने योग्य यह गौ, (हिंकृण्वती) हिंकारती हुयी, रंभाती हुयी, (मनसा वत्सं इच्छन्ती) मन से अपने बछड़े की इच्छा करती हुयी (अभ्यागात्) बछड़े के सम्मुख आयी है। (अश्विभ्यां पयः दुहां) यह गौ अश्वि देवों के लिये दूध दुहे तथा (महते सौभगाय वर्धतां) महान सौभाग्य के लिये बढ़े।

चतुष्पाद् गौ। निघण्टु. २।११

अघ्न्या न हनन् योग्या। जो मारे जाने के योग्य नहीं है।

अघ्न्या अहन्तव्या भवति। निरुक्त. १।१६४।४०

इस मन्त्र में धेनु तथा गो का अर्थ वेदवाणी भी है।

गौरमीमेदभि वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उं।
सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः।।

ऋग्. १।१६४।२८, अथर्व.९।१०।६

(गौः मिषन्तं वत्सं) आँखों के पलकों को झपकाते हुये उत्सुक छोटे बछड़े को लक्ष्य करके गौ (मूर्धानं मातवै उ) बछड़े को यह बताने के लिये कि मैं आ गयी हूँ, उसके शिर के पास (हिङ्ङकृणोत्) शब्द करती है, रंभाती है (अभि अमीमेत्) तथा चारों ओर से प्रेम करती है। (सृक्वाणं घर्मं अभि वावशाना) थनों से झरते हुये धारोष्ण दुग्ध को पिलाने की अत्यन्त इच्छा करती हुयी (मायुं मिमाति) शब्द करती है और (पयोभिः पयते) दूध से बछड़े को तृप्त करती है।

सूयवसाद् भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः स्याम।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती।।

ऋग्. १।१६४।४०, अथर्व.९।१०।२०

(अघ्न्ये) हे न मारने योग्य गौ! (सु यवस अद् भगवती हि भूयाः) तुम उत्तम तृण आदि खाने वाली भाग्यशालिनी हो, (अधा वयं भगवन्तः स्याम) तुम्हारे साथ हम सब भी भाग्यवान् हों, प्रभूत धन के स्वामी हों। तुम (आचरन्ती) इधर उधर विचरती हुयी (विश्वदानीं तृणं अद्धि) सर्वदा तृणों का भक्षण करो तथा (शुद्धं उदकं पिब) शुद्ध जल का पान करो।

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट।।

ऋग्. ८।१०१।१५

यह गौ (रुद्राणां माता) रुद्र देवों की माता, (वसूनां दुहिता) वसु देवों की पुत्री, (आदित्यानां स्वसा) आदित्य देवों की बहिन और (अमृतस्य नाभिः) अमृत का केन्द्र स्थान है। मैं (चिकितुषे जनाय नु प्रवोचं) ज्ञानी मनुष्य से यही कहता हूँ कि (अनागां अदितिं गां) निरपराध और न मारने योग्य गाय का (मा वधिष्ट) वध मत करो।

कुछ विद्वानों के अनुसार यहाँ गौ का अर्थ वेदवाणी है।

वसूनां- २४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले वेद विद्वान्
रुद्र- ३६ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले वेद विद्वान्
आदित्य- ४८ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले वेद विद्वान्

गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम्।।

अथर्व. ४।२१।५ (पाठभेद), ऋग्.६।२८।५

(गावः भगः) गौयें ही धन हैं, ऐश्वर्य स्वरुप हैं, (इन्द्रः मे गावः अच्छान्) इन्द्र मुझे गौयें प्रदान करें। (गावः प्रथमस्य सोमस्य भक्षः) गौवों का दूध पहले सोम रस में मिलाया जाता है, तब सोम पान किया जाता है अथवा गो दुग्ध प्रथम अवस्था वाले (सोमस्य) सौम्य स्वभाव वाले शिशु का (भक्षः) भोजन है, उसे पिलाया जाता है। (जनासः) हे मनुष्यो! (इमाः या गावः) यह जो गौयें हैं, (सः इन्द्रः) वह मानो साक्षात् इन्द्र हैं, (इन्द्रं हृदा मनसा चित् इच्छामि) मैं उस इन्द्र की हृदय तथा श्रद्धा युक्त मन से इच्छा करता हूँ, कामना करता हूँ।

मयोभूर्वातो अभि वातूस्रा ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्ताम्।
पीवस्वतीर्जीवधन्याः पिबन्त्ववसाय पद्वते रुद्र मृळ।।

ऋग्. १०।१६९।१

(वातः मयोभूः उस्राः अभि वातु) वायु सुख देता हुआ गायों की ओर बहे, (ऊर्जस्वतीः ओषधीः आ रिशन्ताम्) गायें रस युक्त, ऊर्जा देने वाली ओषधियों अर्थात् अन्नों को खायें (पीवस्वतीः जीवधन्याः पिबन्तु) तथा प्राणियों के लिये उत्तम और आनन्ददायक जल पियें। (रुद्र) हे रुद्र! (अवसाय) मार्ग मे भोजनार्थ पदार्थ जैसे दूध से बनी मिठायी आदि के लिये (पद्वते मृड) चार पैरों से चलने वाली गायों को सुख दीजिये।

पद्वत= गाय, अवसं= पथ्यदनम्= मार्ग में भोजनार्थ पदार्थ।

दुःस्वप्न को हटाना

दुःस्वप्नम्- मन को परेशान करने वाले दुःस्वप्न।

अपेहि मनसस्पते ऽपं क्राम पुरश्चर।
परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः।।

ऋग्. १०।१६४।१

(मनसः पते) स्वप्नावस्था में मन के स्वामी, दुःस्वप्न! (अप इहि) दूर हो, (अपक्राम परः चर) तू दूर चला जा, दूर स्थान में विचरण कर। (निर्ऋत्यै परः आ चक्ष्व) निर्ऋति के लिये, कुविचारों के लिये दूर देश देख। (जीवतः मनः बहुधा) मुझ जीवित मनुष्य का मन अनेक श्रेष्ठ विचारों से युक्त है।

मन्त्र से स्पष्ट है कि दुःस्वप्नों से छुटकारा पाने का एक मात्र साधन है, श्रेष्ठ विचार तथा शिव संकल्प एवं श्रेष्ठ कर्म।

आकूतिः (संकल्प शक्ति)

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम्।।

अथर्व. १९।४।२

(आकूतिः देवीं सुभगां) सौभाग्य प्रदा दिव्य संकल्प शक्ति को (पुरः दधे) मैं अपने सम्मुख रखता हूँ, उसे अपना आधार एवं मार्गदर्शक बनाता हूँ। (चित्तस्य माता) स्वस्थ एवं सबल चित्त का निर्माण करने वाली यह शक्ति (नः सुहवा अस्तु) हमारे लिये सुगमता से आह्वान किये जाने के योग्य हो। (यां आशां केवली एमि) जिस श्रेष्ठ कामना की पूर्ति के लिये मैं प्रयास करूँ, (सा मे अस्तु) मेरी वह इच्छा पूर्ण हो। (एनां मनसि प्रविष्टां विदेयं) मन में रहने वाली इस संकल्प शक्ति को मैं प्राप्त करूँ।

जीवन में उन्नति के लिये संकल्प शक्ति तथा इच्छा शक्ति की अत्यन्त आवश्यकता है।

आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा गहि।
अथो भगस्य नो धेह्यथो नः सुहवो भव।।

अथर्व. १९।४।३

हे बृहस्पते! हे प्रभो, (आकूत्या नः उपागहि) दृढ़ संकल्प के साथ हमारे पास आइये, (आकूत्या नः) हमें दृढ़ संकल्प शक्ति तथा दृढ़ इच्छाशक्ति प्रदान कीजिये (अथो भगस्य नः धेहि) और हमें सौभाग्य प्रदान कीजिये (अथो नः सुहवः भव) तथा हमारे लिये सुगमता से आह्वान किये जाने योग्य होइये।

संकल्प शक्ति को दो बार कहने का अभिप्राय उसका महत्व प्रकट करना है।

कामना से संकल्प उत्पन्न होता है और संकल्प से उस कामना को पूर्ण करने की शक्ति उत्पन्न होती है।

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्प सम्भवाः ।
व्रतानि यमधर्मांश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृःताः ।।

मनु. २।३

कामना ही सारे संकल्पों का मूल है। यज्ञ भी संकल्प पर आधारित होते हैं। इसी प्रकार व्रत, यम नियम तथा सभी धार्मिक कृत्य संकल्प से ही उत्पन्न होने वाले हैं अर्थात् संकल्प पर ही आधारित होते हैं।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य जीवन में कर्म, तप तथा संकल्प सबसे महत्वपूर्ण हैं। इनके बिना मनुष्य कोई उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। मन का शिव संकल्प, श्रेष्ठ कर्म तथा तप अर्थात् उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये किया गया कठोर परिश्रम, ये तीनों सफलता के आधार हैं। इसीलिये वेद में महत्वपूर्ण प्रार्थना की गयी है कि **तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।**

भाग्य भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है किन्तु वह इनके बाद पाँचवे स्थान पर आता है।

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ।।

गीता. १८।१४

कर्मों की सिद्धि में इन पाँच कारणों का योगदान होता है, प्रथम- अधिष्ठान अर्थात् कार्य करने वाले का आधार, द्वितीय- कर्ता के गुण, तृतीय- उसे प्राप्त होने वाले विविध प्रकार के उपकरण, साधन एवं सहायता, चतुर्थ- कर्ता द्वारा कर्मों के सम्पादन के लिये किये गये भिन्न भिन्न प्रकार के प्रयत्न तथा पाँचवा- उसका भाग्य। इस प्रकार स्पष्ट है कि मनुष्य की सफलता में भाग्य का पाँचवा स्थान होता है, प्रथम नहीं ।

अपवित्र लक्ष्मी को दूर हटाना

या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टाऽभि चस्कन्द वन्दनेव वृक्षम् ।
अन्यत्रास्मत्सवितस्तामितो धा हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः ।।

अथर्व. ७।२०।२

(सवितः) हे सविता देव! (पतयालुः) पतन की ओर ले जाने वाली, (अजुष्टा) सेवन करने अर्थात् श्रेष्ठ प्रकार से उपभोग करने के अयोग्य (या लक्ष्मीः) जो लक्ष्मी (मा अभिचस्कन्द) मेरे पास इस प्रकार आ गयी है, जैसे (वन्दना वृक्षं इव) लता वृक्ष के ऊपर लिपट जाती है, (तां इतः अन्यत्र अस्मत् धाः) उसे हमसे दूर कहीं और स्थापित कर दीजिये, हमारे पास से हटा दीजिये। (हिरण्यहस्तः) हे स्वर्णिम हाथों वाले प्रभो! (नः वसु रराणः) हमें श्रेष्ठ धन प्रदान कीजिये।

वैदिक जीवन

ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ।।

ईशावास्योपनिषद्.१, यजु. ४०।१

जगती में, सम्पूर्ण सृष्टि में जो कुछ भी चराचर पदार्थ हैं, वह सब ईश्वर से आच्छादित एवं व्याप्त हैं अर्थात् ईश्वर के हैं। उनका त्याग भाव से,

अनासक्ति भाव से उपभोग करो। किसी के धन को, स्वत्व को अथवा वस्तु को मत छीनो, उसकी अभिलाषा, आकांक्षा अथवा लिप्सा मत करो।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

यजु. ४०।२

(इह कर्माणि कुर्वन् एव) इस लोक में (वेदोक्त प्रशस्त) कर्मों को करता हुआ ही (शतम् समाः जिजीविषेत्) सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करे। (एवं त्वयि नरे कर्म न लिप्यते) इस प्रकार तुझ पुरुष में कर्म लिप्त नहीं होते। (इतः अन्यथा न अस्ति) इससे भिन्न अथवा इसके अतिरिक्त जीवन का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर।।

गीता. ३।९

यज्ञ के लिये किये गये कर्मों के सिवाय अन्य कर्मों से मनुष्य कर्मों के बन्धन में फँसता है। अतः हे अर्जुन! आसक्ति से रहित होकर यज्ञ के लिये, लोक कल्याण के लिये कर्म करो।

यदृच्छालाभ सन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते।।

गीता. ४।२२

बिना इच्छा किये हुये जो अपने आप प्राप्त हो, उसमें ही सदा सन्तुष्ट रहने वाला, ईर्ष्या रहित, हर्ष, शोक आदि द्वन्द्वों से सर्वथा मुक्त, सिद्धि एवं असिद्धि में सम भाव रखने वाला कर्मयोगी, कर्म करता हुआ भी कर्मों के बन्धन में नहीं बँधता।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः।।

गीता. ३।१९

इसलिये तुम आसक्ति से रहित होकर कर्तव्य भावना से कर्म करो। आसक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ पुरुष परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ।।

गीता. ३।२५

हे भारत ! कर्म में आसक्त हुये अज्ञानीजन जिस प्रकार अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये निरन्तर कर्म करते हैं, उसी प्रकार विद्वानों को आसक्ति रहित होकर लोक संग्रह के लिये, लोक कल्याण के लिये निस्वार्थ भाव से सतत् कर्म करना चाहिये।

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृंताः।
ताँस्ते प्रेत्यापिंगच्छन्ति ये के चांत्महनो जनाः।।

यजु. ४०।३

(असुर्या नाम ते लोकाः) असुर्य नाम वाले वे लोक (अन्धेन तमसा वृताः) घोर अन्धकार से आवृत्त हैं, आच्छादित हैं, (तान् ते जनाः प्रेत्य अपिगच्छन्ति) मृत्यु के उपरान्त उन लोकों को वे लोग प्राप्त होते हैं, (ये के च आत्महनः) जो कोई अपनी आत्मा का हनन करने वाले होते हैं अर्थात् जो आत्म हत्या करते हैं अथवा अपनी आत्मा की अन्तः प्रेरणा के विरुद्ध निकृष्ट आचरण करते हैं, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि से ग्रस्त होकर दूसरों पर अत्याचार करते हैं, उनकी हिंसा करते हैं।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यंति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिंकित्सति।।

यजु. ४०।६

(यः सर्वाणि भूतानि) जो समस्त प्राणियों एवं पदार्थों अर्थात् सम्पूर्ण चराचर जगत् को (आत्मनि एव अनुपश्यति च) परमात्मा में ही स्थित देखता है तथा (सर्वभूतेषु आत्मानम्) समस्त भूतों में, समस्त प्राणियों एवं पदार्थों में परमात्मा को देखता है, (ततः न वि चिकित्सति)

वह इस ज्ञान दृष्टि को प्राप्त करने के उपरान्त, संशय नहीं करता अर्थात् वह समस्त प्रकार के संशयों और उनसे उत्पन्न होने वाले भय, शोक एवं मोह से मुक्त हो जाता है।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।

गीता,६।२९

(योग युक्तात्मा) योग से युक्त आत्मा अर्थात् समाहित अन्त: करण वाला तथा (समं निर्विशेषं दर्शनं ज्ञानं यस्य स सर्वत्र समदर्शनः) समस्त भूतों को समत्व भाव से, समान रूप से देखने वाला योगी, (सर्वभूतस्थम् आत्मानम्) परमात्मा को समस्त भूतों में स्थित (च सर्वभूतानि आत्मनि) तथा समस्त भूतों को परमात्मा में स्थित (ईक्षते) देखता है।

यह स्पष्ट है कि जब तक कोई पुरुष परमात्मा को समस्त भूतों में, और समस्त भूतों को परमात्मा में स्थित नहीं देखेगा तब तक वह समदर्शी एवं योगी नहीं हो सकता।

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम्।।

गीता. १८।२०

जिस ज्ञान से पुरुष पृथक् पृथक् समस्त भूतों में एक अविनाशी परमात्मा को ही समभाव से स्थित देखता है उस ज्ञान को सात्विक कहते हैं।

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकं एकत्वमनुपश्यतः।।

यजु. ४०।७

(यस्मिन्) जिस अवस्था में (विजानतः) विशेष ज्ञानी की दृष्टि में (सर्वाणि भूतानि) समस्त प्राणी एवं पदार्थ (आत्मा एव अभूत्) आत्मा ही हो गये, परमात्मा का रूप हो गये, (तत्र) उस अवस्था में (एकत्वं अनुपश्यतः) एकत्व का अनुभव करने वाले उस ज्ञानी को (कः मोहः)

कैसा मोह, (कः शोकः) कैसा शोक अर्थात् उसे किसी प्रकार का मोह और शोक नहीं होता।

अन्धं तमः प्र विंशन्ति येऽविंद्यामुपासंते।
ततो भूयं इव ते तमो य उं विद्यायांᳯ रताः।।

यजु. ४०।१२

(ये अविद्यां उपासते) जो अविद्या की उपासना करते हैं अर्थात् जो अविद्या अर्थात् सांसारिक ज्ञान में लिप्त रहते हैं, वे (अन्धं तमः प्रविशन्ति) घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं। (ते ततः भूयः इव तमः) किन्तु वे उनसे भी अधिक घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं, (ये उ विद्यायां रताः) जो केवल विद्या अर्थात् आत्मविद्या या ब्रह्मविद्या ही में रत रहते हैं।

अन्यदेवाहुर्विद्यायां अन्यदांहुरविंद्यायाः।
इतिं शुश्रुम धीरांणां ये नस्तद्विंचचक्षिरे।।

यजु. ४०।१३

(विद्याया अन्यद् एव आहुः) विद्या का फल भिन्न ही कहा जाता है और (अविद्याया अन्यद् आहुः) अविद्या का फल उससे भिन्न कहा जाता है। (इति धीराणां शुश्रुम) ऐसा हमने उन धीर पुरुषों से सुना है (ये नः तद् विचचक्षिरे) जिन्होंने हमें उस विषय में विशेष रूप से बताया है, उपदेश दिया है।

विद्यां चाविंद्यां च यस्तद्वेदोभयंᳯ सह।
अविंद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतंमश्नुते।।

यजु. ४०।१४

(यः विद्यां च अविद्यां च तत् उभयं सह वेद) जो विद्या तथा अविद्या इन दोनों को साथ साथ जानता है अर्थात् दोनों का साथ साथ ज्ञान प्राप्त करता है, वह (अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा) अविद्या अर्थात् सांसारिक विषयों जैसे साहित्य, इतिहास, गणित, भूगोल, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, इलेक्ट्रानिक्स आदि के ज्ञान से मृत्यु को पारकर अर्थात् इस मृत्यु लोक में

सुखपूर्वक जीवन बिताकर (विद्यया अमृतं अश्नुते) विद्या से, ब्रह्मज्ञान से तथा आत्मज्ञान से अमृतत्व को, मोक्ष को प्राप्त करता है।

यहाँ पर अविद्या का अर्थ कर्म अथवा उल्टी या गलत विद्या नहीं है, जैसा कि अनेक भाष्यकारों ने लिखा है। विद्या तथा अविद्या को समझने के लिये यह जानना आवश्यक है कि जिससे मोक्ष प्राप्त किया जाय वह विद्या, शेष सभी अविद्या।

संसार में आर्थिक उन्नति के लिये उन विषयों का ज्ञान आवश्यक है जिनसे धन, शक्ति तथा ऐश्वर्य प्राप्त किया जा सकता है।

वायुरनिंलममृतमथेदं भस्मांन्तꣳ शरीरम् ।
ओ३म् क्रतोस्मर । क्लिबे स्मंर । कृतꣳ स्मंर ।।

यजु. ४०।१५

(वायुः अनिलं अमृतम्) मृत्यु के समय यह प्राण वायु अमृत अर्थात् अविनाशी कारण रूपी समष्टि वायु में विलीन हो जाता है (अथ इदं शरीरम् भस्मान्तं) और इस शरीर का अन्त भस्म के रूप में हो जाता है। (ओ३म् कृतो स्मर) हे कर्म करने वाले जीव! ओ३म् का स्मरण करो । (क्लिबे स्मर) अपनी सामर्थ्य की वृद्धि के लिये ओम् का स्मरण करो। (कृतं स्मर) अपने द्वारा किये गये कर्मों का स्मरण करो।

ओ३म् क्रतो स्मर ।

हे कर्म करने वाले जीव! ओ३म् का स्मरण करो।

ओ३म् का ज्ञान, उसका जप तथा उसकी साधना ही पुरुष के परम कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है।

जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराड् भामः।
मोदाः प्रमोदा अङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः।।

यजु. २०।६

(मे जिह्वा भद्रम्) मेरी जीभ कल्याणकारी वस्तुओं का भोग करने वाली हो, उसे निकृष्ट पदार्थों को खाने की इच्छा न हो, (वाक् महः) मेरी

वाणी महत्वपूर्ण कथन करने वाली हो, ओछी और नीचतापूर्ण बात कहने वाली न हो, (मनः मन्युः) मेरा मन दुष्टों पर क्रोध करने वाला हो, (भामः स्वराट्) मेरी बुद्धि ज्ञान से प्रकाशित हो। (अङ्गुलयः मोदाः) मेरी अंगुलियाँ तथा (अङ्गानि प्रमोदाः) अन्य अंग मोद तथा प्रमोद को बढ़ाने वाले हों, (मे मित्रं सहः) मेरा सामर्थ्य तथा बल, मेरा मित्र हो, सहायक हो।

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत्तरेमाभि वाजान्।।

ऋग्. १०।५३।८

(अश्मन्वती रीयते) पत्थरों से युक्त, पथरीली नदी बह रही है, (सखायः) हे मित्रो! (सं रभध्वम् उत्तिष्ठत प्र आ तरत) एक साथ उठकर प्रयत्न करो और इस नदी को पार कर लो। (ये अशेवाः असन् अत्र जहाम) जो हमें दुःख देने वाली परिस्थितियाँ हैं, वस्तुयें हैं, उन्हें हम यहीं इस पार छोड़ते हैं और (शिवान् वाजान् अभि वयं उत्तरेम) जो कल्याणकारी तथा सुखदायी अन्न आदि वस्तुयें हैं, उन्हें भली प्रकार प्राप्त करने के लिये हम इस नदी को पार करते हैं।

शेवम् इति सुखनाम। वाजानि अन्नानि।

जीवन में उत्पन्न अत्यन्त कठिन परिस्थितियों को छोड़ते हुये, पार करते हुये हमें सुख तथा कल्याणकारी वस्तुओं एवं परिस्थितियों को प्राप्त करने के लिये एक साथ नदी के उस पार जाकर अर्थात् अन्य स्थान पर जाकर सामूहिक रूप से मिलकर प्रयास करना चाहिये।

भगवान् कृष्ण का मथुरा छोड़कर द्वारिका में जाकर राज्य स्थापित करना एक उत्तम उदाहरण है।

निष्पाप जीवन

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि।
अप नः शोशुचदघम्।।

ऋग्.१।९७।६, अथर्व.४।३३।६

(विश्वतो मुख) सब ओर मुख वाले, हे सर्व दृष्टा प्रभो! (त्वं हि विश्वतः

परिभूः असि) निश्चय ही आप सब को वश में रखने वाले हैं, सर्वोपरि हैं तथा सब ओर आपकी ही सत्ता है। (नः अघम् अप शोशुचत्) आपकी कृपा से हमारे समस्त पाप नष्ट हो जायँ।

स नः सिन्धुमिव नावातिं पर्षा स्वस्तये।
अपं नः शोशुंचदघम्।।

अथर्व.४।३३।८

(सः नः) वह आप (स्वस्तये अति पर्ष) हमारे कल्याण के लिये, हमें दुःखों, कष्टों तथा संकटों से उसी प्रकार पार कर दीजिये (नावा सिन्धुम् इव) जिस प्रकार नौका से समुद्र को पार किया जाता है। (नः अघम् अप शोशुचत्) आपकी कृपा से हमारे समस्त पाप नष्ट हो जायँ।

सुजांतं जातवेंदसमग्निं वैश्वानरं विभुम्।
हव्यवाहं हवामहे स नो मुञ्चत्वंहंसः।।

अथर्व. ४।२३।४

(सुजातं) सुन्दर एवं शोभायमान स्वरूप में प्रकट होने वाले, (जातवेदसम्) संसार में उत्पन्न समस्त पदार्थों में व्याप्त रहने के कारण उन्हें जानने वाले, (वैश्वानरं) विश्व के समस्त प्राणियों के हितकारी, उन्हें जीवन, प्रेरणा, ऊर्जा एवं गति देने वाले, (विभुम्) सर्वव्यापक, (हव्यवाहम्) अन्न आदि समस्त हव्य पदार्थों का वहन करने वाले, (अग्निं) अग्नि देव का हम (हवामहे) आह्वान करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि (सः नः) वह हमें (अंहसः मुञ्चन्तु) पापों से मुक्त करायें अर्थात् हमें पापों से दूर रखें तथा हमारे पापों को नष्ट करें।

अपि पन्थांमगन्महि स्वस्तिगामंनेहसंम्।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्तिं विन्दते वसुं।।

ऋग्. ६।५१।१६

(स्वस्तिगां अनेहसं पन्थां अपि अगन्म) हम पापरहित कल्याणकारी

मार्ग से जायें, (येन विश्वाः द्विषः परिवृणक्ति) जिससे समस्त शत्रु दूर होते हैं और (वसु विन्दते) धन प्राप्त होता है।

यद् विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयम्।
यूयं नस्तस्मान्मुञ्चत विश्वेदेवाः सजोषसः।।

अथर्व. ६।११५।१

(यद् विद्वांसः यद् अविद्वांसः वयम् एनांसि चकृम्) जो जानबूझकर या अनजाने में हमने पाप किया हो, (विश्वेदेवाः सजोषसः यूयम् नः तस्मात् मुञ्चतु) हे विश्वे देवाः! आप हमारे ऊपर प्रेम एवं कृपा करते हुये हमें उस पाप से मुक्त कीजिये।

यदि जाग्रद् यदि स्वपन्नेनं एनस्योऽकरम्।
भूतं मा तस्माद् भव्यं च द्रुपदादिव मुञ्चताम्।।

अथर्व. ६।११५।२

हे प्रभो! (यदि जाग्रत् यदि स्वपन्) यदि जागते हुये अथवा सोते हुये (एनस्यः एनः अकरम्) मैने पापी व्यक्ति द्वारा किये जाने योग्य पाप किया हो, (भूतम् मा तस्मात् च भव्यम् मुञ्चताम्) तो उन भूत, वर्तमान अथवा भविष्य में होने वाले पाप से मुझे इस प्रकार छुड़ाइये (द्रुपदात् इव) जैसे खूँटे से पशु को छुड़ाया जाता है।

मुमुक्तमस्मान् दुरितादवद्याज्जुषेथां यज्ञममृतमस्मासु धत्तम्।।

अथर्व. ५।६।८

हे प्रभो! (दुरितात् अवद्यात् अस्मान् मुमुक्तम्) हमें निन्दनीय पाप से छुड़ाइये, (यज्ञम् जुषेथाम्) हम यज्ञ का सेवन करें, हमारा जीवन यज्ञमय हो। (अस्मासु अमृतम् धत्तम्) हमारे अन्दर अमृत धारण कराइये, हम श्रेष्ठ कर्म करके अमरत्व प्राप्त करें।

यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम्।
अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳ हंसः।।

यजु. २०।१४

(देवाः देवासः) हे प्रकाशमान् देवताओ! (यत् वयं देवहेडनं आचकृम) हमने जो देवताओं के प्रति अपराध किया हो, (अग्निः तस्मात् एनसः विश्वान् अंहसः) अग्नि देव उस पाप से और अन्य सब पापों से (मा मुञ्चतु) हमें मुक्त करें।

यदि दिवा यदि नक्तमेनांꣳसि चकृमा वयम्।
वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः॥

यजु. २०।१५

(यदि वयं दिवा) यदि हमने दिन में अथवा (यदि नक्तं) रात्रि में (एनांसि आचकृम्) पाप किये हों तो, (वायुः तस्मात् एनसः) वायुदेव उन सभी पापों से तथा (विश्वस्मात् अंहसः मा मुञ्चतु) अन्य समस्त पापों से हमें मुक्त करें।

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न एनांꣳसि चकृमा वयम्।
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः॥

यजु. २०।१६

(वयं यदि जाग्रत्) यदि मैने जाग्रत अवस्था में अथवा (यदि स्वप्ने) निद्रावस्था में, स्वप्न में (एनांसि आचकृम्) पाप किये हों, तो (सूर्यः तस्मात् एनसः सर्वस्मात् अंहसः) सूर्य देव हमें उस पाप से तथा अन्य समस्त पापों से मुक्त करें।

यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये।
यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि
तस्यावयजनमसि॥

यजु. २०।१७

(यत् ग्रामे, यत् अरण्ये, यत् सभायां, यत् इन्द्रिये) हे प्रभो! हमने जो पाप ग्राम में, जो वन में, जो सभा में, जो इन्द्रियों के विभिन्न कार्यों में तथा (यत् शूद्रे, यत् अर्ये, यत् एनः वयं चकृम्) जो शूद्रों के प्रति, जो वैश्यों के प्रति पाप किये हों और (यत् एकस्य अधिधर्मणि) जो पाप किसी अन्य

एक मनुष्य के सम्बन्ध में किये हों, (तस्य अवयजनं असि) आप उन सब पापों से हमें मुक्त करने वाले हों।

न वा उं एतन्म्रियसे न रिंष्यसि देवाँ२ इदेषि पथिभिः सुगेभिः।
यत्रासंते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्रं त्वा देवः संविता दधातु।।

यजु. २३।१६

श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वाला पुरुष (एतत् वै न म्रियसे) निश्चय ही न मरता है, (उ न रिष्यति) न क्षीण होता है, न दुःख तथा दुर्गति को प्राप्त होता है। (सुगेभिः पथिभिः देवान् इत् एषि) वह श्रेष्ठ देवयान मार्ग से देवताओं के पास गमन करता है, (यत्र सुकृतः आसते) जहाँ पुण्य कर्म करने वाले पुण्यात्मा लोग रहते हैं। (यत्र ते ययुः) जहाँ वे श्रेष्ठ लोग गये हैं, (तत्र सविता देवः त्वा दधातु) वहाँ सविता देव तुम्हें ले जायें।

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति।।

गीता. ६।४०

हे पार्थ! (योग की पूर्ण सिद्धि न होने पर भी) योग द्वारा भगवत्प्राप्ति का प्रयास करने वाले पुरुष का न तो इस लोक में और न परलोक में नाश होता है। हे तात् !कल्याणकारी कर्म करने वाला कोई भी मनुष्य स ,दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ।।

गीता. ३।३७

रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम है, यह क्रोध है, जो पुरुष को पाप में प्रवृत्त करता है। यह बहुत खाने वाला अर्थात् भोगों से कभी तृप्त न होने वाला महापापी है, इसको ही मनुष्य का शत्रु समझो।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ।।

गीता. ३।३९

हे अर्जुन ! कभी सन्तुष्ट न होने वाले नित्य वैरी इस कामरुप अग्नि से ज्ञानियों का ज्ञान आवृत्त हो जाता है, नष्ट हो जाता है।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ।।

गीता. ३।४३

हे महाबाहो ! इस प्रकार बुद्धि से पर अर्थात् श्रेष्ठ, सूक्ष्म एवं बलवान आत्मा को जानकर और बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके, तुम अत्यन्त कठिनायी से जीते जाने वाले इस कामरूप शत्रु को मारो।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।।

गीता. १६।२१

आत्मा का नाश करने वाले अर्थात् उसे अधोगति में ले जाने वाले काम, क्रोध तथा लोभ रुपी नरक के तीन द्वार हैं। अतएव इन तीनों को त्याग देना चाहिये।

पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेनेति।

शतपथ. १४।६।२।१४

पुण्य कर्म से ही मनुष्य पुण्यात्मा होता है, पाप कर्म से पापी । मनुष्य जैसा कर्म करता है, वैसे ही बन जाता है। (जीवन में कर्म का ही महत्व है।

पर्यावरण एवं सामाजिक व्यवस्था

इषे त्वोर्जे त्वा वायवं स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठंतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावंतीरनमीवा अंयक्ष्मा मा वंस्तेन ईंशत माघशंꣳसो ध्रुवा अस्मिन् गोपंतौ स्यात बह्वीर्यजंमानस्य पशूत्पांहि।।

यजु. १।१

(इषे त्वा ऊर्जे त्वा वायवः स्थ) हे मनुष्यो! तुम्हें अन्न तथा रस देने के लिये यह वायु है। यहाँ रस का तात्पर्य वृष्टि तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त होने वाले जल एवं ओषधियों तथा फलों आदि में जल से उत्पन्न होने वाले रस से है। तात्पर्य यह है कि मनुष्यों को शुद्ध अन्न, जल एवं रस की प्राप्ति के लिये वायु के महत्व को समझ कर उसे पवित्र रखना चाहिये, उसे दूषित नहीं करना चाहिये। (देवः वः सविता श्रेष्ठतमाय कर्मण) समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले, उसे प्रेरणा तथा ज्ञान का प्रकाश देने वाले सविता देव, परमात्मा उक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिये अर्थात् शुद्ध अन्न, जल तथा वायु की प्राप्ति के लिये तुम्हें श्रेष्ठतम कर्म अर्थात् यज्ञ आदि करने की (प्रार्पयतु) प्रेरणा दें, श्रेष्ठ कर्मों से तुम्हें संयुक्त करें जिससे तुम (आप्यायध्वम्) सर्वतोमुखी उन्नति को प्राप्त हो। (अघ्न्याः इन्द्राय भागं प्रजावतीः अनमीवाः अयक्ष्माः) इन्द्राय भागम् अर्थात् परम ऐश्वर्य तथा धन की प्राप्ति के लिये हिंसा न किये जाने योग्य तुम्हारी गौयें बहुत सन्तान वाली तथा राजयक्ष्मा एवं अन्य समस्त रोगों से मुक्त हों। (मा वः स्तेनः ईशत) तुम ऐसी व्यवस्था करो कि चोर तुम पर शासन न कर सकें (मा अघशंसः) तथा समाज में पाप एवं पापियों की प्रशंसा करने वाले न हों। (ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीः) हे प्रभो! गोपतौ अर्थात् गौओं, पृथिवी एवं वेद आदि की रक्षा करने वाले इस श्रेष्ठ पुरुष के पास बहुत सी गौयें तथा धन सम्पत्ति आदि अचल होकर रहे। (यजमानस्य पशून् पाहि) हे प्रभो! इस यज्ञ करने वाले श्रेष्ठ पुरुष की सन्तान एवं पशुओं की रक्षा कीजिये।

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म। यज्ञाय हि तस्मादाह श्रेष्ठ तमाय कर्मण इति।

शतपथ. १।७।१।४

यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है। जब श्रेष्ठतम कर्म के लिये कहा, तब यज्ञ के लिये ही कहा। (सविता देव तुम्हें श्रेष्ठतम कर्म अर्थात् यज्ञ के लिये प्रेरित करें।)

सं सं स्रवन्तु नद्यः१ सं वाताः सं पतत्रिणः।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येऽण हविषा जुहोमि।।

अथर्व. १९।१।१

(सं सं स्रवन्तु नद्यः) नदियाँ सम्यक् रूप से बहती रहें, (सं वाताः सं पतत्रिणः) विभिन्न दिशाओं से बहने वाले वायु सम्यक् रूप से हमारे अनुकूल होकर बहते रहें, पक्षीगण उड़ते रहें, चह चहाते रहें (इमं यज्ञं गिरः वर्धयत) तथा इस यज्ञ को वेद वाणियाँ अथवा हमारे द्वारा बोले गये वेद मन्त्र बढ़ायें, अस्तु (संस्राव्येण हविषा जुहोमि) मैं सम्यक् रूप से बहने वाले पिघले हुये घृत, दुग्ध आदि पदार्थों तथा सुख को बढ़ाने वाले अन्य होम द्रव्यों से आहुति देता हूँ।

सं सं स्रवन्तु पशवः समश्वाः समु पूरुषाः।
सं धान्य‍ऽस्य या स्फातिः सं स्राव्येऽण हविषा जुहोमि।।

अथर्व. २।२६।३

(सं स्राव्येण हविषा जुहोमि) सम्यक् रूप से बहने वाले आज्य तथा दुग्ध आदि अथवा सुख का संचार करने वाले हव्य द्रव्यों से आहुति देता हूँ, यज्ञ करता हूँ, जिससे कि संसार में (पशवः सं स्रवन्तु) गो तथा अश्व आदि वेगवान् पशु सम्यक् रूप से विचरण करें, (सम् उ पूरुषाः) पुरुष सुख पूर्वक इच्छानुसार रोग एवं भय से मुक्त होकर विचरण करें (सं धान्यस्य या स्फातिः) तथा देश में धान्य अर्थात् विविध प्रकार के अन्नों के उत्पादन में जो वृद्धि हो, वह सम्यक् रूप से हो ताकि समस्त प्राणियों को प्रचुर मात्रा में अन्न उपलब्ध हो सके।

सामाजिक पक्ष में (संस्राव्येण हविषा) का अर्थ 'सबके द्वारा सम्यक् रूप से एकत्र की गयी उत्तम हवि से' है। भाव यह है कि सब लोग मिलकर पारस्परिक सहयोग रूपी संस्राव अथवा सुप्रवाह से साधन एकत्र करके यज्ञ करें।

ब्राह्मण की रक्षा

य एनं हन्ति मृदुं मन्यमानो देवपीयुर्धनकामो न चित्तात्।
सं तस्येन्द्रो हृदयेऽग्निमिन्ध उभे एनं द्विष्टो नभसीचरन्तम्।।

अथर्व. ५।१८।५

(यः देवपीयुः धनकामः) जो देव अर्थात् विद्वानों का शत्रु तथा धन का लोभी (न चित्तात्) अज्ञानवश बिना विचारे (एनं मृदुं मन्यमानः) इस ब्राह्मण को कोमल तथा दुर्बल मानकर (हन्ति) मारता है, (इन्द्रः तस्य हृदये अग्निं सं इन्धे) इन्द्र उसके हृदय में अग्नि प्रज्वलित कर देते हैं, उसकी सुख शान्ति को अग्नि के समान जला देते हैं, उसे अत्यन्त दुःख तथा कष्ट देते हैं और (उभे नभसी चरन्तं एनं द्विष्टः) द्युलोक तथा पृथिवी लोक दोनों उससे द्वेष करने लगते हैं।

न ब्राह्मणो हिंसितव्योऽग्निः प्रियतनोरिव।
सोमो ह्यस्य दायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः।।

अथर्व. ५।१८।६

(प्रियतनोः अग्निः इव) प्रिय शरीर की अग्नि के समान (ब्राह्मणः न हिंसितव्यः) ब्राह्मण की हिंसा नहीं करनी चाहिये। (हि) निश्चय ही (अस्य सोमः दायाद) सोम इस ब्राह्मण का सम्बन्धी तथा उत्तराधिकारी है और (इन्द्रः अस्य अभिशस्ति पाः) इन्द्र इसका रक्षक है, शाप तथा हिंसा से बचाने वाला है।

ब्राह्मण के सौम्य स्वभाव के कारण इसे सोम अर्थात् चन्द्रमा का सम्बन्धी कहा गया है।

उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति।
परा तत्सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते।।

अथर्व. ५।१९।६

(यः राजा उग्रः मन्यमानः) जो उग्र स्वभाव का राजा अभिमानी होकर (ब्राह्मणम् जिघत्सति) ब्राह्मण को खा जाना चाहता है, उसे सताता

है, उसका राज्य तथा (यत्र ब्राह्मणः जीयते) जहाँ ब्राह्मण कष्ट भोगता है, (तत् राष्ट्रं परा सिच्यते) वह राष्ट्र आपत्तियों के प्रवाह में बह जाता है, नष्ट प्राय हो जाता है।

तद्वै राष्ट्रमा स्रवति नावं भिन्नामिवोदकम्।
ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद्राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना।।

अथर्व. ५।१९।८

(यत्र ब्राह्मणं हिंसन्ति) जहाँ ब्राह्मण के प्रति हिंसा की जाती है, उसे कष्ट दिया जाता है, (तत् राष्ट्रं) निश्चय ही उस राष्ट्र में (उदकं भिन्नं नावं इव) विदीर्ण नाव में जल के समान (दुच्छुना आस्रवति) दुर्गति आ जाती है और (तत् राष्ट्रं हन्ति) उस राष्ट्र को नष्ट कर देती है।

दुच्छुना= दुःशुना। दुः+ शुन गतौ (तुदादि)= दुर्गति।

अतिथि

यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् प्रति पश्यति देवयजनं प्रेक्षते।।

अथर्व. ९।६।३

(यत् वै अतिथिपतिः) जो अतिथि की रक्षा करने वाला गृहस्थ (अतिथीन् प्रतिपश्यति) अतिथियों को सम्मान पूर्वक देखता है, (वै देव यजनं प्रेक्षते) वह मानो देवयज्ञ को ही देखता है।

यदभि वदति दीक्षामुपैति यदुदकं याचत्यपः प्रणयति।।

अथर्व.९।६।४

(यत् अभिवदति दीक्षां उपैति) जो अतिथि का अभिवादन करता है, वह मानो यज्ञ दीक्षा प्राप्त करता है। (यत् उदकं याचति) अतिथि जो जल मांगता है और (अपः प्र णयति) गृहस्थ उसे जल लाकर देता है, वह मानो यज्ञ के निमित्त जल लाता है।

ता एव यज्ञ आपः प्रणीयन्ते ता एव ताः।।

अथर्व.९।६।५

(याः एव यज्ञे आपः प्रणीयन्ते) यज्ञ के निमित्त जो जल लाये जाते

हैं, (ताः एव ताः) वे मानो वही जल हैं, जो अतिथि के लिये लाये जाते हैं।

अतिथि यज्ञ के समान पूजनीय है, यज्ञ स्वरुप है, उसकी सेवा सुश्रूषा करना यज्ञ करने के समान है। वैदिक संस्कृति का कैसा उच्च आदर्श है यह।

इ॒ष्टं च॒ वा ए॒ष पू॒र्तं चं गृ॒हाणा॑मश्ना॒ति यः पूर्वोऽति॑थेर॒श्नाति॑।।

अथर्व.९।६।३१

(यः अतिथेः पूर्वं अश्नाति) जो अतिथि के पूर्व स्वयं भोजन करता है, (एष) वह (ग्रहाणां इष्टं च वै पूर्तं च अश्नाति) अपने घर के इष्ट और पूर्त को ही खा जाता है।

इष्टम्-

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते।।

पूर्तम्-

वापी कूपतडागादि देवतायतनानि च।
अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते।।

पयंश्च॒ वा ए॒ष रसं चं गृ॒हाणा॑मश्ना॒ति यः पूर्वोऽति॑थेर॒श्नाति॑।।

अथर्व.९।६।३२

(यः अतिथेः पूर्वः अश्नाति) जो अतिथि के पूर्व स्वयं भोजन करता है, (एष) वह (वै ग्रहाणां पयः च रसं च अश्नाति) निश्चय ही अपने घर के दूध और रस को ही खा जाता है अर्थात् उसे नष्ट कर देता है।

उ॒र्जां च॒ वा ए॒ष स्फा॒तिं चं गृ॒हाणा॑मश्ना॒ति यः
पूर्वोऽति॑थेर॒श्नाति॑।।

अथर्व.९।६।३३

(यः अतिथेः पूर्वः अश्नाति) जो अतिथि के पूर्व स्वयं भोजन करता है, (एष) वह (ग्रहाणां उर्जां च स्फातिं च अश्नाति) अपने घर के अन्न, ऊर्जा और समृद्धि को ही खा जाता है।

प्रजां च वा एष पशूंश्च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति।।

अथर्व.९।६।३४

(यः अतिथेः पूर्वः अश्नाति) जो अतिथि के पूर्व स्वयं भोजन करता है, (एष) वह (ग्रहाणां प्रजां च पशून् च अश्नाति) अपने घर की प्रजा अर्थात् सन्तान और पशुओं को ही खा जाता है अर्थात् उन्हें नष्ट कर देता है।

कीर्तिं च वा एष यशश्च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति।।

अथर्व.९।६।३५

(यः अतिथेः पूर्वः अश्नाति) जो अतिथि के पूर्व स्वयं भोजन करता है, (एष) वह (ग्रहाणां कीर्तिं च यशः च अश्नाति) अपने घर की कीर्ति और यश को ही खा जाता है।

श्रियं च वा एष संविदं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति।।

अथर्व.९।६।३६

(यः अतिथेः पूर्वः अश्नाति) जो अतिथि के पूर्व स्वयं भोजन करता है, (एष) वह (ग्रहाणां श्रियं च संविदं च अश्नाति) अपने घर के श्री अर्थात् शोभा, लक्ष्मी और ज्ञान को ही खा जाता है।

एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियस्तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात्।।

अथर्व.९।६।३७

(एष वै अतिथिः यत् श्रोत्रियः) निश्चय ही जो अतिथि है, वह श्रोत्रिय है, वेद का विद्वान् है। (तस्मात् पूर्वः न अश्नीयात्) उससे पहले न खाये।

अशितावत्यतिथावश्नीयाद् यज्ञस्य सात्मत्वाय
यज्ञस्याविच्छेदाय तद् व्रतम्।।

अथर्व.९।६।३८

(यज्ञस्य सात्मत्वाय) अतिथि यज्ञ की सात्मकता के लिये, उसकी पूर्णता के लिये तथा (यज्ञस्य अविच्छेदाय) यज्ञ के अविच्छेद के लिये, भंग न होने के लिये (अतिथौ अशितावति अश्नीयात्) अतिथि के खा चुकने पर

ही खाये, (तद् व्रतम्) यह व्रत है।

अतिथि- अतिथि रम्यतितो भवति।

निरुक्त. ४।१।५।५

यह गृहस्थियों के घरों में अभिगत होता है।

अभ्येति तिथिषु- यह शुभ तिथियों पर, मंगल अवसरों पर दूसरे के घरों में जाता है।

सोम

स्वादिंष्ठया मदिंष्ठया पवंस्व सोम धारंया।
इन्द्रांय पातंवे सुतः।।

यजु. २६।२५, साम. क्र.सं. ४६८, ऋग्. ९।१।१

(इन्द्राय पातवे) इन्द्र के पीने के लिये (सुतः) निचोड़कर निकाले गये (सोम) हे सोम! (स्वादिष्ठया मदिष्ठया) तुम स्वादयुक्त, हर्ष बढ़ाने वाली (धारया) धारा से (पवस्व) पवित्र होकर प्रवाहित हो।

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा विश्वां वृत्राणिं जिघ्नते।
शूरों मघा चं मंहते।।

ऋग्. ९।१।१०

(अस्य मदेषु इत्) इस सोमरस पान के आनन्द में ही इन्द्र (विश्वा वृत्राणि) सभी घेरने वाले शत्रुओं को (आ जिघ्नते) मारता है तथा वह (शूर मघा च मंहते) शूरवीर इन्द्र अपने भक्तों को धनों का दान करता है।

दविंद्युतस्या रुचा पंरिष्टोभंन्त्या कृपा।
सोमांः शुक्रा गवांशिरः।।

साम. क्र.सं. ६५४ ऋग्. ९।६४।२८

(शुक्राः सोमाः) शद्ध किये गये सोमरस (दविद्युतस्या रुचा) तेजस्वी कान्ति से युक्त (परिष्टोभन्त्या कृपा) शब्द करने वाली धारा से (गवाशिरः) गौ के दूध के साथ मिलाये जाते हैं।

मन्त्र से स्पष्ट है कि सोमरस को गो दुग्ध के साथ मिलाकर पिया जाता है। जो मूर्ख लोग सोमरस को शराब बताकर हमारी संस्कृति को अपमानित करते हैं, उन्हें इस प्रकार के मन्त्र ध्यान से पढ़ने चाहिये।

देवता-इन्द्र

आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम।।

ऋग्. ५।४०।१

(वृत्रहन्तम् वृषन् इन्द्र) वृत्र को मारने वाले हे बलवान् इन्द्र! आप (वृषभिः आ याहि) बलवान् अश्वों से आइये और (सोमपते) हे सोम के स्वामी इन्द्र (अद्रिभिः सुतं सोमं पिब) पत्थरों से कूट कर निचोड़े गये सोम रस को पीजिये।

मन्त्र से स्पष्ट है कि सोम रस, सोमलता को पत्थर से कूट कर निकाला जाता है, यह मदिरा नहीं है जैसा कि कुछ मूर्ख तथा दुष्ट लोग वैदिक संस्कृति का अपमान करने के लिये कहते हैं।

स आ गमदिन्द्रो यो वसूनां चिकेतद् दातुं दामनो रयीणाम्।
धन्वचरो न वंसगस्तृषाणश्चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम्।।

ऋग्. ५।३६।१

(यः वसूनां दातुं चिकेतत्) जो धनों को देना जानता है, ऐसा (इन्द्रः) इन्द्र (आगमत्) हमारे पास आये। (रयीणां दामनः) धनों को देने वाला, (तृषाणः) प्यासा इन्द्र (धन्वचरः वंसगः न) शिकारी जैसे पशुओं की इच्छा करता है, उसी प्रकार (चकमानः) सोमपान की इच्छा करता हुआ (दुग्धं अंशुं पिबतु) दूध से मिले हुये सोम रस को पिये।

मन्त्र से स्पष्ट है कि सोम शराब नहीं है, यह दुग्ध में मिलाकर पिया जाता है। वेदों में इस प्रकार के अनेक मन्त्र हैं।

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः।
न रिष्येत्वावतः सखा।।

ऋग्. १।९१।८

(सोम राजन्) आनन्ददायक, समस्त जगत् के स्वामी हे प्रभु! (विश्वतः अघायतः त्वं नः रक्ष) हमें दुःख देने वाले समस्त पापी दुष्टों से आप हमारी रक्षा कीजिये। (न रिष्येत् त्वावतः सखा) आपके सदृश महान् रक्षक का मित्र दुःख तथा विनाश को प्राप्त न हो।

सोमं मन्यते पपिवान् यत्संपिंषन्त्योषधिम्।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन।।

अथर्व. १४।१।३ (पाठभेद), ऋग्.१०।८५।३

(यत् ओषधिं संपिषन्ति पपिवान् सोमं मन्यते) जब सोम लता रूपी ओषधि को पीसकर पीते हैं, उस समय लोग यह मानते हैं कि उन्होंने सोमपान कर लिया परन्तु (यं सोमं ब्रह्माणः विदुः) जिस सोम को ब्रह्म ज्ञानी जानते हैं (तस्य कः चन न अश्नाति) उसे कोई भी दूसरा अर्थात् ब्रह्म को न जानने वाला नहीं खा सकता।

यहाँ सोम का अर्थ है ब्रह्मज्ञान से प्राप्त होने वाला आनन्द।

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा।
त्वं भद्रो असि क्रतुः।।

ऋग्. १।९१।५

(सोम) हे शान्तिदायक प्रभु! (त्वं सत्पतिः असि) आप सज्जनों के पालनकर्ता हैं (उत त्वं राजा वृत्रहा) तथा आप दुष्टों एवं शत्रुओं का नाश करने वाले राजा हैं। (त्वं भद्रः क्रतुः असि) आप सबका कल्याण करने वाले हैं।

स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम्।
ईशानः सोम विश्वतः।।

साम. क्र.सं. ७८९ ऋग्. ९।६१।६

(सोम) हे सोम! (विश्वतः ईशानः) आप सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं, (सः पुनानः) वह पवित्र करने वाले आप (नः वीरवतीं इषं) हमारे लिये वीर पुत्र उत्पन्न करने वाला अन्न तथा (रयिं आभर) धन भरपूर दीजिये।

त्वं नः सोम विश्वतो वयोधास्त्वं स्वर्विदा विशा नृचक्षाः।
त्वं न इन्द ऊतिभिः सजोषाः पाहि पश्चातादुत वा पुरस्तात्।।

ऋग्. ८।४८।१५

(सोम) हे प्रभो! (त्वं नः विश्वतः वयोधाः) आप हमें सब ओर से अन्न देने वाले हो, (स्वर्वित् नृचक्षाः त्वं) समस्त सुखों को देने वाले तथा मनुष्यों का, मनुष्यों के कार्यों का निरीक्षण करने वाले आप (आ विश) हमारे हृदय में प्रविष्ट हो। (इन्दो) हे आनन्ददाता! (सजोषाः ऊतिभिः) आप प्रसन्नता पूर्वक अपनी रक्षाओं से (नः पश्चातात् पुरस्तात् पाहि) हमारी पीछे से तथा आगे से रक्षा कीजिये।

सोम के परमात्मा, परमानन्द, शान्ति, चन्द्रमा, सोम लता आदि अनेक अर्थ होते हैं।

अभय

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः।।

अथर्व. २।१५।१

(यथा द्यौः च पृथिवी च) जैसे द्युलोक तथा पृथिवी (न बिभीतः) नहीं डरते हैं, (एवम्) उसी प्रकार (मे प्राण) हे मेरे प्राण! (मा बिभेः) न डरो और (न रिष्यतः) न किसी से पीड़ित हो।

भयभीत मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता, इसलिये कभी किसी से डरना नहीं चाहिये।

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि।।

ऋग्. ८।६१।१३, (पाठभेद), साम.पूर्वा. ३।९।२, क्र.सं.२७४
अथर्व.१९।१५।१ (पाठभेद), साम.उत्त.१०।१०।२१, क्र.सं.१३२१

(इन्द्र) हे इन्द्र! (यतः भयामहे ततः नः अभयम् कृधि) जिससे अथवा जहाँ से हमें भय हो, वहाँ से हमें अभय कीजिये। (मघवन्) हे

धनवान् इन्द्र! (शग्धि) आप हमें अभय करने में समर्थ हैं, (तत्) अतः (नः ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (तव) अपनी शक्ति से (द्विषः वि जहि) हमसे द्वेष करने वाले हमारे शत्रुओं का नाश कीजिये (मृधः वि जहि) तथा हमारे साथ हिंसा करने वालों को, हमेंदुःख एवं कष्ट देने वालों को, नष्ट कर दीजिये, मार दीजिये।

अभ॑यं नः कर॒त्य॒न्तरि॑क्ष॒मभ॑यं॒ द्यावा॑पृथि॒वी उ॒भे इ॒मे।
अभ॑यं प॒श्चादभ॑यं पु॒रस्ता॑दुत्त॒राद॑ध॒रादभ॑यं नो अस्तु।।

अथर्व. १९।१५।५

(अभयं नः करति अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष हमें अभय प्रदान करे, (अभयं द्यावा पृथिवी उभे इमे) द्युलोक तथा पृथिवी ये दोनों हमें अभय प्रदान करें, (अभयं पश्चात् अभयं पुरस्तात्) हमें पीछे से अभय हो, सामने से अभय हो, (उत्तरात् अधरात् अभयं नः अस्तु) ऊपर से हमें अभय हो तथा नीचे से हमें अभय हो। अथवा हमें पश्चिम दिशा से अभय हो, पूर्व दिशा से अभय हो, उत्तर दिशा से अभय हो तथा दक्षिण दिशा से अभय हो।

अभ॑यं मि॒त्रादभ॑यम॒मित्रा॒दभ॑यं ज्ञा॒तादभ॑यं पु॒रो यः।
अभ॑यं॒ नक्त॒मभ॑यं॒ दिवा॑ नः॒ सर्वा॒ आशा॒ मम॑ मि॒त्रं भ॑वन्तु।।

अथर्व. १९।१५।६

(अभयं मित्रात् अभयं अमित्रात्) हमें मित्र से अभय हो, अमित्र अर्थात् जो मित्र नहीं है, उससे अभय हो, (अभयं ज्ञातात् अभयं पुरः यः) जो ज्ञात है उससे अभय हो, जो सामने है उससे अभय हो, (अभयं नक्तं अभयं दिवा) हमें रात्रि में अभय हो, दिन में अभय हो (सर्वाः आशाः मम मित्रं भवन्तु) तथा समस्त दिशायें हमारी मित्र हों।

मेधा

उ॒प॒ह्व॒रे गि॑री॒णाꣳ सं॑ग॒मे च॑ न॒दीना॑म्।
धि॒या विप्रो॑ अजायत।।

ऋग्. ८।६।२८, साम. क्र.सं. १४३ यजु. २६।१५

(गिरीणां उपह्वरे च नदीनां संगमे) पर्वतों के समीप तथा नदियों के संगम स्थान पर उपासना करने वाले (धिया विप्रः अजायत) विप्र को श्रेष्ठ बुद्धि प्राप्त होती है।

मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम्।
प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे।।

अथर्व. ६।१०८।२

(अहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं) मै श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध कराने वाली, वेद द्वारा प्रेरित (ब्रह्मजूतां ऋषिस्तुतां) तथा ऋषियों द्वारा स्तुत (ब्रह्मचारिभिः प्रपीतां मेधां) और ब्रह्मचारियों द्वारा पूर्ण रूप से प्राप्त की गयी श्रेष्ठ मेधा का (देवानां अवसे हुवे) इन्द्रियों की तथा दिव्य गुणों की रक्षा के लिये आवाहन करता हूँ।

यां मेधामृभवो विदुर्यां मेधामसुरा विदुः।
ऋषयो भद्रां मेधां यां विदुस्तां मय्या वेशयामसि।।

अथर्व. ६।१०८।३

(यां मेधां ऋभवः विदुः) जिस मेधा को शिल्पी लोग तथा सत्यानुष्ठान की ज्योति से प्रकाशमान् श्रेष्ठ पुरुष जानते हैं, (याम् मेधां) जिस मेधा को (असुराः विदुः) श्रेष्ठ प्राणवाले अर्थात् बलिष्ठ तथा प्रज्ञावान् लोग जानते हैं, (यां भद्रां मेधां ऋषयः विदुः) जिस कल्याणकारी मेधा को ऋषि लोग जानते हैं, (तां मयि आ वेशयामसि) उस मेधा को हम अपने अन्दर प्रविष्ट करते हैं।

ऋभव उरु भान्तीति वा। ऋतेन भान्तीति वा। ऋतेन भवन्तीति वा।

निरुक्त. ११।२।१५

राष्ट्र रक्षा में चमकते हैं, सत्य व्यवहार से प्रकाशित होते हैं अथवा सत्य व्यवहार से युक्त होते हैं।

'असुः प्राणनाम, तेन तद्वन्तः'। निरुक्त. ३।२।८

प्राणवाले अर्थात् बलिष्ठ

असुः प्रज्ञानाम। असुराः प्रज्ञावन्तः। निघण्टु. ३।९

यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु।।

अथर्व. ६।१०८।४

(भूतकृतः मेधाविनः ऋषयः) सत्य कर्मों को करने वाले अथवा मनुष्य को ज्ञान के द्वारा श्रेष्ठ बनाने वाले मेधावी ऋषि (यां मेधां विदुः) जिस मेधा को जानते हैं, (हे अग्ने) हे ईश्वर! (अद्य मां तया मेधया) मुझे आज उस मेधा से (मेधाविनं कृणु) मेधावी कीजिये।

मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यन्दिनं परि।
मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयामहे।।

अथर्व. ६।१०८।५

(मेधां सायं) मेधा को सायंकाल, (मेधां प्रातः) मेधा को प्रातःकाल, (मेधां मध्यन्दिनं परि) मेधा को मध्याह्न तथा उसके आस पास (मेधां सूर्यस्य रश्मिभिः) मेधा को सूर्य की किरणों से हम (वचसा आवेशयामसि) वेदवाणी के स्वाध्याय तथा विद्वानों के उपदेश के द्वारा अपने अन्दर प्रविष्ट करते हैं।

मेधा का अर्थ है धारणावती बुद्धि, जिससे ब्रह्मज्ञान तथा अन्य सभी प्रकार का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। मेधा प्राप्त करने में सूर्य की किरणों का विशेष महत्व है क्योंकि उससे मस्तिष्क तथा शरीर पुष्ट एवं निरोग होता है।

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा।।

यजु. ३२।१४

हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म! देवगण तथा पितर अर्थात् समस्त विद्वान् एवं हमारे पूर्वज तथा श्रेष्ठ वयोवृद्ध, रक्षा करने वाले ज्ञानीजन

जिस विवेकपूर्ण उत्तम बुद्धि की उपासना करते हैं, उसे प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, उसी उत्तम बुद्धि से आज मुझे मेधावी कीजिये, बुद्धिमान बनाइये। (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति परमात्मा को समर्पित है अथवा मैं पूर्ण रूपेण अपने को भगवान् के प्रति समर्पित करता हूँ, शरणागत होता हूँ।

अहमिद्धि पितुष्परिं मेधामृतस्यं जग्रभं।
अहं सूर्य इवाजनि।

अथर्व. २०।११५।१

(अहं इत् हि) मैने निश्चय से (पितुः परि) परमपिता परमात्मा से (ऋतस्य मेधां जग्रभ) सत्य निष्ठ तथा सत्य से परिपूर्ण बुद्धि को गृहण किया है। (अहं सूर्य इव अजनि) जिसके फल स्वरुप मैं सूर्य के समान तेजस्वी हो गया हूँ।

विधवा स्त्री

इयं नारी पतिलोकं वृणाना नि पंद्यत उपं त्वा मर्त्य प्रेतंम्।
धर्मं पुराणमंनुपालयंन्ती तस्यैं प्रजां द्रविंणं चेह धेंहि।।

अथर्व. १८।३।१

(मर्त्य) हे मनुष्य! (इयं नारी) यह नारी (पति लोकं वृणाना) पतिकुल की कामना करती हुयी (प्रेतं उप) पति की मृत्यु के उपरान्त (पुराणं धर्म अनुपालयन्ती) पुरातन धर्म का अनुपालन करती हुयी (त्वा उप निपद्यते) तुम्हारे पास आयी है। (तस्यै) उसके लिये (इह प्रजां द्रविणं च) इस लोक में सन्तान और धन दो।

मधुमय जीवन

मधुवातां ऋतायते मधुं क्षरन्ति सिन्धंवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषंधीः।।

ऋग्. १।९०।६, यजु.१३।२७

(मधुवाता ऋतायते) हमारे लिये वायु मधुर होकर बहे, वायु हमारे

जीवन में माधुर्य लाये, (मधु क्षरन्ति सिन्धवः) नदियाँ हमारे लिये मधुर स्वास्थ्यकारी शुद्ध जल बहाकर लायें, हमारे जीवन को मधुर रस से परिपूर्ण कर दें। (माध्वीः नः सन्तु ओषधीः) ओषधियाँ हमारे लिये मधुर हों, पुष्टि कारक मधुर रस से परिपूर्ण हों।

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिता।।

ऋग्. १।९०।७, यजु.१३।२८

(मधु नक्तं उत उषसः) रात्रि एवं उषा हमारे लिये मधुमय हों, (मधुमत् पार्थिवं रजः) पृथिवी का कण कण हमारे लिये मधुर हो। (मधु द्यौः अस्तु नः पिता) पिता के समान पालन एवं रक्षा करने वाला द्युलोक हमारे लिये मधुमय हो, सुखमय हो।

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ अस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः।।

ऋग्. १।९०।८, यजु.१३।२९

(मधुमान् नः वनस्पतिः) वनस्पतियाँ अर्थात् वृक्ष आदि हमारे लिये मधुमय हों, सुखकारी एवं मधुर रस से पूर्ण हों, (मधुमान् अस्तु सूर्यः) सूर्य हमारे लिये मधुमय हो, सूर्य का प्रकाश हमें सुख देने वाला हो। (माध्वीः गावः भवन्तु नः) सूर्य की किरणें तथा गौयें हमारे लिये मधुरिमा से पूर्ण हों, हमें स्वास्थ्यवर्धक दुग्ध देने वाली हों।

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि।।

अथर्व.१।३४।२

(मे जिह्वाया अग्रे मधु) मेरी जिह्वा के अग्र भाग में मधुरता रहे, (जिह्वामूले) मेरी जिह्वा के मूल में मधुरता का बाहुल्य रहे। हे मधुरिमे! (मम क्रतौ) तुम मेरे कर्म में (इत् अह) निश्चय से (असः) रहो, जिससे मेरे कर्म मधुर हों, सबको सुख देने वाले हों (मम चित्तं) तथा तुम मेरे मन में,

मेरे चित्त एवं अन्तःकरण में (उप आयसि) आ जाओ, जिससे मेरे विचार, मेरी कामनायें मधुमय हों, सब के लिये सुखकारी हों। इस प्रकार मेरा मन, मेरी वाणी तथा मेरे कर्म सभी मधुर हों।

क्रतु कर्म नाम। (निघण्टु. २।१)

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः।।

अथर्व. १।३४।३

(मे निक्रमणं मधुमत्) मेरा निकट आना मधुर हो, (मे परायणम् मधुमत्) मेरा जाना मधुर हो, अथवा मेरा कार्य प्रारम्भ करना मधुर हो तथा पूर्ण करना मधुर हो। (वाचा वदामि मधुमत्) मैं मधुर वाणी बोलूँ (भूयासम् मधुसंदृशः) तथा मैं माधुर्य की मूर्ति बन जाऊँ।

मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान् नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम।।

ऋग्. ४।५७।३

(ओषधीः नः मधुमतीः) ओषधियाँ तथा वनस्पतियाँ हमारे लिये मधुरता से भरपूर हों, (द्यावः आपः अन्तरिक्षं) द्युलोक, जल तथा अन्तरिक्ष (नः मधुमत् भवतु) हमारे लिये मधुर हों। (क्षेत्रस्य पतिः नः मधुमान् अस्तु) क्षेत्र के स्वामी सभी देव हमारे लिये मधुरता से युक्त हों। (अरिष्यन्तः) किसी तरह से हिंसित अथवा दुःख को प्राप्त न होते हुये हम (एनं अनु चरेम) उनका अनुरसण करें।

सामिधेनी ऋचायें

अध्वर्यु अग्नि को समिधाओं से (इन्धे) जलाता है, अस्तु समिधाओं को इध्म (ईंधन) कहते हैं। होता सामिधेनियों को बोलकर अग्नि को अधिक प्रज्वलित करता है, अतः इन मन्त्रों को सामिधेनी ऋचायें कहा जाता है।

यह मन्त्र गायत्री छन्द के होते हैं। गायत्री अग्नि का छन्द है। अतः

अपने ही छन्द से अग्नि प्रज्वलित की जाती है। (शतपथ. १।३।५।४)

वीर्यं गायत्री ब्रह्म गायत्री। गायत्री वीर्य है। गायत्री ब्रह्म है। अतः वीर्य से ही अग्नि को प्रज्वलित करता है। (शतपथ. १।३।५।४)

ग्यारह मन्त्र बोलता है। त्रिष्टुप् के एक पाद में ग्यारह ही अक्षर होते हैं। गायत्री ब्राह्मण है, त्रिष्टुप् क्षत्रिय है। इन्हीं दो शक्तियों के द्वारा अग्नि को प्रज्वलित करता है। इसीलिये ग्यारह मन्त्र बोलता है। (शतपथ. १।३।५।५)

कुल मिलाकर सामधेनियाँ पन्द्रह होती हैं। पन्द्रह का अंक वज्र है। वज्र वीर्य है। अतः वीर्य रूपी वज्र से वह यज्ञ को समन्वित करता है। (शतपथ. १।३।५।७)

पहले मन्त्र को तीन बार बोलता है और अन्तिम मन्त्र को तीन बार बोलता है। (इस प्रकार सामधेनियाँ पन्द्रह हो जाती हैं।) यज्ञ आदि में त्रिवृत् है और अन्त में भी त्रिवृत् है। इसीलिये वह पहले और अन्तिम मन्त्र को तीन बार बोलता है। (शतपथ. १।३।५।६)

पन्द्रह गायत्रियों में ३६० अक्षर हुये। वर्ष में भी ३६० दिन होते हैं। इस प्रकार वह दिनों को तथा वर्ष को भी प्राप्त करता है। (शतपथ. १।३।५।९)

पहले मन्त्र को तीन बार और अन्तिम मन्त्र को तीन बार एक साँस में पढ़ना चाहिये। तीन ही ये लोक हैं। इस प्रकार वह तीनों लोकों को (स्पृणुते) तानता है। पुरुष में तीन प्राण होते हैं। ऐसा करने से उसका जीवन बढ़ जाता है। मृत्यु उसको बीच से नहीं काटता। (शतपथ. १।३।५।१३)

प्रणव या ओंकार से साम का रूप होता है। अतः ओंकार (ओ३म्) कहने से समस्त यज्ञ साम रूप हो जाता है। (शतपथ. १।४।१।१)

<u>ऋषिः-गाथिनो विश्वामित्रः, देवता-अग्निः</u>

१. प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या।
देवाञ्जिगाति सुम्नयुः।।

ऋग्. ३।२७।१

(प्र वो वाजा अभिद्यवः) आपके अन्न द्युलोक को जायँ अर्थात् आपके द्वारा दी गयी अन्न आदि की आहुतियाँ देवताओं को प्राप्त हों। (सुम्नयुः हविष्मन्तः घृताच्या देवान् जिगाति) घृत से भरपूर चमचे से आहुति देने वाला यजमान सुख तथा शान्ति की इच्छा करते हुये देवों के पास जाना चाहता है, उनकी शरण में जाता है, उनका पूजन अर्चन करता है। (शतपथ. १।४।१।२१)

वाज कहते हैं अन्न को।

इस मन्त्र के पाठ से अन्न की प्राप्ति होती है। (शतपथ. १।४।१।९)

इससे प्राण को प्रज्वलित करता है।

२. अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ।।

साम.पूर्वा. १।१, उत्तरा. २।१, क्र. सं. १ तथा ६६०, ऋग्. ६।१६।१०

(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप परब्रह्म ! (गृणानः हमारे द्वारा स्तुत किये हुये, (होता) हमें सब कुछ देने वाले दाता, आप (वीतये) यज्ञ की समृद्धि के लिये हमें प्रकाश, ज्ञान एवं समृद्धि देने के लिये तथा (हव्य दातये) अन्न आदि समस्त सुखकारी पदार्थ उपलब्ध कराने के लिये (आयाहि) आइये और (बर्हिषि नि सत्सि) हमारे द्वारा बिछाये गये कुश के आसन पर तथा हमारे हृदयाकाश में विराजिये ।

अथवा, हे अग्नि देव! (वीतये) हविषान्न ग्रहण करने के लिये तथा अन्य देवों को (हव्यदातये) हविषान्न पहुँचाने के लिये और (गृणानः) हमारे द्वारा स्तुत होकर (नि होता सत्सि बर्हिषि) इस यज्ञ वेदी में विराजिये।

होता अग्नि है तथा बर्हि से आच्छादित वेदी आसन है।

(शतपथ.ब्रा.)

यह जगत् बर्हि है। इस प्रकार अग्नि को जगत् में लोक कल्याण के लिये स्थापित करता है। (शतपथ. ब्राह्मण. १।४।१।२४)

बर्हिः- आसन, अन्तरिक्ष, जल तथा यज्ञ।

३. तं त्वां समिद्भिरङ्गिरो घृतेनं वर्धयामसि।
बृहच्छोचा यविष्ठ्य।।

यजु. ३।३, ऋग्. ६।१६।११

(अंगिरः) हे अग्नि! (तं त्वा) यज्ञ में आये हुये आप को (समिद्भिः च घृतेन) समिधा तथा घृत से (वर्धयामसि) बढ़ाते हैं, अतिशय प्रदीप्त करते हैं। (यविष्ठ्य) हे तरुण तथा बलवान् अग्नि देव! । (बृहत् आ शोच) आप अत्यन्त प्रदीप्त हों।

यज्ञ में स्थापित किये जाने से अग्नि अतिशय तरुण है, इसीलिये यविष्ठ्य कहा गया है। अग्नि ही अङ्गिरस है, यही समस्त अंगों को प्राणाग्नि के रुप में जीवित रखता है।

इस मन्त्र से उदान को प्रज्वलित करता है।

४. स नंः पृथु श्रवाय्यमच्छां देव विवाससि।
बृहदंग्ने सुवीर्यम्।।

ऋग्. ६।१६।१२

(स नः पृथु श्रवाय्यम्) हे अग्ने! वह आप हमारे लिये विस्तृत, लम्बा चौड़ा, प्रकाश युक्त, अच्छा, यशस्वी, (बृहत् सुवीर्यम्) विशाल तथा शक्तिशाली लोक प्राप्त कराइये, (देव विवाससि) जिसमें देव निवास करते हैं,

इसी लोक के अभिप्राय से ही यह कहा गया है- शतपथ. १।४।१।२७,२८

५. ईळेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः।
समग्निरिध्यते वृषां।।

ऋग्. ३।२७।१३

(ईळेन्यः नमस्यः दर्शतः) स्तुति करने योग्य, पूजनीय, नमस्कार के योग्य, दर्शनीय तथा (वृषा अग्निः) बलवान् अग्नि (तमांसि तिरः) स्वप्रकाश से अन्धकार को दूर करता हुआ, अन्धकार में भी (सम् इध्यते)

चमकता है, प्रदीप्त होता है।

६. वृषो अग्निः समिंध्यतेऽश्वो न देववाहनः।
तं हविष्मन्त ईळते।।

ऋग्. ३।२७।१४

(अश्वः न देववाहनः वृषा अग्निः सं इध्यते) अश्व के समान देवों को लाने वाला अथवा देवों के लिये हवि ले जाने वाला यह बलवान् अग्नि अच्छी प्रकार प्रज्वलित होता है। (हविष्मन्तः तं ईळते) यज्ञ में हवि अर्पण करने वाले यजमान उसकी स्तुति करते हैं।

७. वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिंधीमहि।
अग्ने दीद्यतं बृहत्।।

ऋग्. ३।२७।१५

(वृषन् अग्ने) अभीष्ट फलों की वर्षा करने वाले हे अग्ने! (वृषणः वयं) बलवान् हम (वृषणं दीद्यतं त्वां) बलवान्, प्रकाशमान तथा महान आपको (सं इधीमहि) सम्यक् रूप से प्रदीप्त करते हैं।

वृषण शब्द वाली तीन ऋचाओं का पाठ करता है। ये सब सामिधेनियाँ अग्नि देवता की होती हैं। यज्ञ का देवता इन्द्र है और वह (वृषण) बलवान् है। अतः यह तृच इन्द्र देवता का हो जाता है। (शतपथ.ब्रा.)

८. अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्।।

साम क्र.सं. ३ तथा ७९०, अथर्व.२०।१०१।१ ऋग्. १।१२।१

(अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्) इस यज्ञ को अच्छी प्रकार सम्पन्न करने वाले, (विश्व वेदसम्) सब कुछ जानने वाले, समस्त ज्ञान तथा धन से युक्त, (होतारं) देवों को यज्ञ में बुलाने वाले (अग्निं दूतं वृणीमहे) अग्नि का हम दूत के रूप में वरण करते हैं।

अथवा, (होतारं विश्ववेदसम्) होता अर्थात् यज्ञ का सम्पादन

करने वाला अग्नि, जो सब कुछ जानने वाला है, उसका वरण करते हैं।

यज्ञ को अच्छी प्रकार सम्पन्न करने वाला अग्नि यज्ञ का सुक्रतुः है।

शतपथ. १।४।१।३५

अग्निं दूतं वृणीमहे-

प्रजापति की सन्तान देव तथा असुर प्रभुत्व के लिये लड़ पड़े। गायत्री बीच में पड़ गयी। जो गायत्री थी, वही यह पृथिवी है। यही पृथिवी दोनों के बीच में थी। देव जानते थे कि जिसके साथ पृथिवी रहेगी, उसी की विजय होगी। इसलिये उन्होंने अग्नि को अपना दूत बनाया जिससे पृथिवी देवों के साथ मिल गयी और उनकी विजय हुयी।

शतपथ. १।४।१।३४

९. समिध्यमानो अध्वरे३ऽग्निः पावक ईड्यः।
शोचिष्केशस्तमीमहे।।

ऋग्. ३।२७।४

(सं इध्यमानः अध्वरे) यज्ञ में भली प्रकार प्रज्वलित (शोचिषकेशः पावकः ईड्यः अग्निः) ज्वाला रूपी केशों से युक्त अग्नि पवित्रकर्ता एवं पूजनीय है, (तं) उस अग्नि की हम (ईमहे) स्तुति करते हैं, सुख की प्रार्थना करते हैं।

१०. समिद्धो अग्न आहुत देवान् यक्षि स्वध्वर।
त्वं हि हव्यवाळसि।।

ऋग्. ५।२८।५

(आहुत सु अध्वर अग्ने) यजमानों द्वारा आहुत, शोभन, उत्तम यज्ञाग्नि, (त्वं समिद्धः देवान् यक्षि) तुम भली भाँति प्रदीप्त होकर देवों का यजन करो। (त्वं हि हव्यवाट् असि) तुम निश्चय ही हव्य को वहन करने वाले हो, उसे ले जाकर देवों तक पहुँचाने वाले हो।

११. आ जुहोता दुवस्यताऽग्निं प्रयत्यध्वरे।
वृणीध्वं हव्यवाहनम्।।

ऋग्. ५।२८।६

(अध्वरे प्रयति आ जुहोत) हिंसा रहित यज्ञ के प्रारम्भ होने पर यज्ञाग्नि में हव्य की आहुति दो, (वृणीध्वं) अग्नि देव का वरण करो। (हव्यवाहनं अग्निं दुवस्यत) हव्य का वहन करने वाले अग्नि की सेवा करो, उसे भली प्रकार श्रद्धापूर्वक घृत आदि से प्रज्वलित करो तथा जिस कामना के लिये यज्ञ किया है, उसको पूर्ण करो।

प्रयति प्रवृत्ते सति। प्रारम्भ हो जाने पर। (सायण भाष्य)

अध्वर- जिसका विध्वंस न हो सके। (शतपथ. १।४।१।४०)

जब देव यज्ञ कर रहे थे तब असुरों ने उसका विध्वंस करना चाहा किन्तु वे सफल नहीं हुये। इसीलिये यज्ञ को अध्वर कहा जाता है।

अध्वर शब्द वाले तृच के समूह को पढ़ता है।

संवत्सर, युगों तथा कल्प के वर्ष

शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणिं चत्वारिं कृण्मः।
इन्द्राग्नी विश्वें देवास्तेऽनुं मन्यन्तामहृंणीयमानाः।।

अथर्व. ८।२।२१

(ते शतं हायनान् कृण्मः) तुम्हारी सौ वर्ष की आयु निश्चित करता हूँ। (इन्द्र अग्नि वायु विश्वेदेवाः) इन्द्र, अग्नि, वायु तथा समस्त देव बिना संकोच किये हुये तुम्हारी आयु का अनुमोदन करें अर्थात् तुम्हें यह सौ वर्ष की आयु प्राप्त करने में सहायता करें। (द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः)

सैकड़े के शून्य के बायीं ओर क्रमशः ४,३,२ लिखने से कलियुग की वर्ष संख्या ४३२,००० प्राप्त होती है।

हज़ार के शून्य के बायीं ओर क्रमशः ४,३,२ लिखने पर एक चतुर्युगी की वर्ष संख्या ४३,२०,००० प्राप्त होती है।

एक हज़ार चतुर्युगी का एक कल्प होता है। एक चतुर्युगी को एक खम्भा मानकर लिखा गया है कि भूत, भविष्य, वर्तमान रुपी काल के घर में एक हज़ार खम्भे होते हैं।

दस हज़ार के सौ गुने अर्थात् दस लाख के शून्य के बायीं ओर क्रमशः ४,३,२ लिखने से ४,३२, ००,००,००० एक कल्प की वर्ष संख्या प्राप्त होती है।

कलियुग	४,३२,००० वर्ष	कलियुग
द्वापर, कलियुग का दो गुना	८,६४,०००	
त्रेतायुग, कलियुग का तीन गुना	१२,९६,०००	
सतयुग, कलियुग का चार गुना	१७,२८,०००	
चतुर्युगी	४३,२०,०००	

सप्त युंञ्जन्ति रथमेकंचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभिं चक्रमजरंमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधिं तस्थुः।।

अथर्व. ९।९।२, ऋग्. १।१६४।२

(एकं चक्रं रथं सप्त युञ्जन्ति) सूर्य के एक चक्र वाले रथ में सात अश्व अर्थात् उसकी सात रंगों वाली किरणें जुती हुयी हैं, (एकं चक्रं) सूर्य के रथ में संवत्सर रूपी केवल एक ही पहिया है। (सप्तनामा एकः अश्वः वहति) ये सात रंगों वाली किरणें मिलकर एक श्वेत रंग वाली सूर्य की किरण बनाती है, अतः कहा गया है कि सात नामों वाला एक ही अश्व सूर्य के रथ को ले जाता है, चलाता है। (त्रिनाभि चक्रं) सूर्य के रथ का चक्र अर्थात् संवत्सर ग्रीष्म, वर्षा तथा हेमन्त अर्थात् शीत ऋतु, इन तीन नाभियों वाला है। (अजरं अनर्वं) यह संवत्सर कभी कम या अधिक न होकर एक समान रहने के कारण अजर है और किसी पर आश्रित अथवा किसी के आधीन न होने के कारण अनर्व है। (यत्र इमा विश्वा भुवनानि तस्थुः) इस संवत्सर में ये सब भुवन स्थित हैं, इसके प्रभाव से कोई मुक्त नहीं हैं, अलग नहीं है।

हिमवत्= हिमवन्त= हेमन्त= शीत ऋतु

ग्रीष्म, वर्षा तथा हेमन्त, ये तीन प्रमुख ऋतुयें हैं, शेष तीन ऋतुयें इन्हीं के विभाग है।

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तंस्थुर्भुवनानि विश्वा।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः।।

अथर्व. ९।९।१, ऋग्. १।१६४।१३

(तस्मिन् परिवर्तमाने पंचारे चक्रे) इस घूमने वाले पाँच अरों अर्थात् पाँच ऋतुओं वाले संवत्सर रूपी चक्र में (विश्वा भुवनानि आ तस्थुः) समस्त लोक स्थित हैं। (तस्य भूरिभारः अक्षः न तप्यते) अत्यधिक भार होने पर भी उसका अक्ष कभी गरम नहीं होता, (सनाभिः सनात् एव न शीर्यते) सनातन काल से लगातार चलने पर भी वह नाभि कभी घिसती नहीं है, टूटती नहीं है।

हेमन्त और शिशिर को मिला देने पर छह में से केवल पाँच ऋतुयें ही रह जाती हैं।

पञ्चर्तवः संवत्सरस्य हेमन्त शिशिरयोः समासेन।

निरुक्त. ४।४।२७।६२

मास, दिन तथा रात्रि

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः।।

अथर्व. ९।९।१३, ऋग्. १।१६४।११

(द्यां परि) सूर्य के चारों ओर पृथिवी की परिक्रमा के कारण (द्वादशारं) बारह महीनों रूपी अरों से युक्त (ऋतस्य चक्रं) संवत्सर का चक्र (वर्वर्ति) निरन्तर घूमता है, (न हि तत् जराय) वह कभी क्षीण अथवा जीर्ण नहीं होता। (अग्ने) हे अग्ने! हे विद्वान्! (अत्र) इस संवत्सर चक्र में (मिथुनासः पुत्राः) अहोरात्र, दिन रात रूपी जोड़े वाले (सप्तशतानि विंशतिश्च) सात सौ बीस पुत्र स्थित रहते हैं। एक संवत्सर में ३६० दिन तथा ३६० रात होते हैं। इस प्रकार कुल ७२० पुत्र जोड़े के रूप में स्थित रहते हैं।

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तस्मिन् त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः।।

ऋग्. १।१६४।४८

(एकं चक्रं द्वादश प्रधयः) संवत्सर रूपी एक चक्र की बारह महीने रूपी बारह परिधियाँ हैं, (त्रीणि नभ्यानि) इसमें ग्रीष्म, वर्षा तथा हेमन्त ऋतुओं रूपी तीन नाभियाँ हैं। (तत् कः उ चिकेत) उसे कौन पूर्णतया

जानता है अथवा कोई विद्वान् ही उसे जानता है। (तस्मिन् शङ्कवः न) उसमें खूँटियों के समान (साकं त्रिंशत न षष्ठिः) एक साथ ३६० (चला चलासः) सदा चलायमान दिन (अर्पिताः) लगे हुये हैं।

प्रधि= परिधि (त्रिंशंत षष्ठिः) (तीन सौ और साठ) मास महीना। (मास -'मा' धातु से 'स'। इससे समय को मापते हैं।

(द्यूत) जुये की निन्दा

जाया तंप्यते कितवस्यं हीना माता पुत्रस्य चरंतः क्वं स्वित्।
ऋणावा बिभ्यद्धनंमिच्छमानो ऽन्येषामस्तमुप नक्तंमेति।।

ऋग्. १०।३४।१०

(कः स्वित् चरतः कितवस्य) एक ओर तो इधर उधर मारे मारे फिरते हुये जुआरी की (जाया हीना) स्त्री हीन अवस्था को प्राप्त होकर दुःख भोगती है, (पुत्रस्य माता तप्यते) और दूसरी ओर उसकी माता पुत्र की दुर्दशा देखकर संतप्त होती है। (ऋणावा धनं इच्छमानः) फिर वह ऋणी जुआरी धन की इच्छा करता हुआ (बिभ्यद् नक्तं अन्येषां अस्तं उप एति) भयभीत होकर रात्रि के समय अन्य लोगों के घर में चोरी के लिये जाता है।

ईशावास्योपनिषद

'शुक्ल यजुर्वेद; काण्व संहिता के अन्तिम, चालीसवें अध्याय में वैदिक जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण मार्ग दर्शन केवल अठारह मन्त्रों में दिया गया है। इसमें दिये हुये सारगर्भित ज्ञान के कारण 'काण्व संहिता' के अन्तिम अध्याय को 'ईशावास्योपनिषद्' कहा जाता है। वेद का ही भाग होने के कारण यह समस्त उपनिषदों में प्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ है। इसके विस्तृत अध्ययन के लिये कृपया लेखक की पुस्तक 'यजुर्वेद अन्तिम अध्याय-ईशावास्योपनिषद्' देखने का कष्ट करें।

ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगंत्यां जगंत्।
तेनं त्यक्तेनं भुञ्जीथा मा गृंधः कस्यंस्विद्धनंम्।।

यजु. ४०।१

(जगत्यां जगत्) जगती में, सम्पूर्ण सृष्टि में (यत्किंच) जो कुछ भी है, (इदं सर्वम्) यह सब (ईशावास्यम्) ईश्वर से आच्छादित एवं व्याप्त है अर्थात् ईश्वर का है। (तेन त्यक्तेन) (उसका त्यागभाव से, समर्पित भाव से, अनासक्ति भाव से (भुञ्जीथाः) उपभोग करो, (कस्य स्विद् धनम्) किसी के धन को, स्वत्व को अथवा वस्तु को (मा गृधः) मत छीनो, उसकी अभिलाषा, आकांक्षा अथवा लिप्सा मत करो।

अथवा, (मा गृधः) लालच मत करो, (धनं कस्य स्वित्) धन किसका है? अर्थात् किसी का नहीं।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

यजु. ४०।२

(इह कर्माणि कुर्वन् एव) इस लोक में (वेदोक्त प्रशस्त) कर्मों को करता हुआ ही (शतम् समाः जिजीविषेत्) सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करे। (एवं त्वयि नरे कर्म न लिप्यते) इस प्रकार तुझ पुरुष में कर्म लिप्त नहीं होते। (इतः अन्यथा न अस्ति) इससे भिन्न अथवा इसके अतिरिक्त जीवन का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

प्रथम मन्त्र में उल्लिखित अनासक्ति भाव से उपभोग करना तथा जिजीविषा, जीवित रहने की इच्छा करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। किसी भी दशा में निराश होकर जीवित रहने की इच्छा नहीं छोड़नी चाहिये।

इस मन्त्र में उल्लिखित कर्म करने के विज्ञान के विषय में गीता के निम्नाङ्कित श्लोक अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं-

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः।।

गीता. ३।१९

इसलिये तुम आसक्ति से रहित होकर कर्तव्य भावना से कर्म करो। आसक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ पुरुष परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।

गीता. ३।२१

श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो प्रमाण अथवा उदाहरण स्थापित करता है अर्थात् वह अपने आचरण से जिस कर्म को उचित तथा करने योग्य बताता है, उसी के अनुसार अन्य सभी लोग व्यवहार करने लगते हैं।

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्।।

गीता. ३।२५

हे भारत ! कर्म में आसक्त हुये अज्ञानीजन जिस प्रकार अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये निरन्तर कर्म करते हैं, उसी प्रकार विद्वानों को आसक्ति रहित होकर लोक संग्रह के लिये, लोक कल्याण के लिये निस्वार्थ भाव से सतत् कर्म करना चाहिये।

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽवृंताः।
ताँ स्ते प्रेत्यापिंगच्छन्ति ये के चांत्महनो जनाः।।

यजु. ४०।३

माध्यन्दिन संहिता में (प्रेत्यापिगच्छन्ति) शब्द आया है।

(असुर्या नाम ते लोकाः) असुर्य नाम वाले वे लोक (अन्धेन तमसा वृताः) घोर अन्धकार से आवृत्त हैं, आच्छादित हैं (च) और (तान् ते जनाः प्रेत्य अभिगच्छन्ति) मृत्यु के उपरान्त उन लोकों को वे लोग प्राप्त होते हैं, (ये के आत्महनः) जो कोई अपनी आत्मा का हनन करने वाले होते हैं अर्थात् जो आत्म हत्या करते हैं अथवा अपनी आत्मा की अन्तः प्रेरणा के विरुद्ध निकृष्ट आचरण करते हैं, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि से ग्रस्त होकर दूसरों पर अत्याचार करते हैं, उनकी हिंसा करते हैं।

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्शत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति।।

यजु. ४०।४

(एकं अनेजत् मनसः जवीयः) परमात्मा केवल एक है, वह कम्पन रहित अथवा अचल होते हुये भी मन से भी अधिक वेगवान् है। (एनत् देवाः न आप्नुवन्) उस ब्रह्म को देव अथवा इन्द्रियाँ प्राप्त नहीं कर सकतीं, अगोचर होने के कारण वह चक्षु आदि इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता। (तत् तिष्ठत् धावतः अन्यान् अत्येति) वह स्थिर रहते हुये भी अन्य सभी दौड़ने वालों से आगे निकल जाता है (पूर्व अर्शत्) क्योंकि वह सर्वत्र पहले से ही पहुँचा हुआ है, सबसे पुरातन है और सबको (ऋष=गति) गति, स्फूर्ति एवं प्रेरणा देने वाला है। (तस्मिन् अपः मातरिश्वा दधाति) उस ब्रह्म में अथवा उसके आधार से ही वायु जलों को मेघादि के रूप में धारण करता है अथवा उसके आधार से ही (मातरि+श्वा) माता के गर्भ में रहने वाला जीवात्मा (अपः) पूर्व जन्म के क्षय न हुये कर्मों को (दधाति) धारण करता है।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।

यजु. ४०।५

(तत् एजति) वह चलता है, (तत् न एजति) वह नहीं चलता है। (तत् दूरे तत् उ अन्तिके) वह दूर है और वह निश्चय ही समीप है, (तत् अस्य सर्वस्य अन्तः) वह इस सब के अन्दर है (तत् उ अस्य सर्वस्य बाह्यतः) और वह सबके बाहर भी है।

ये सब विरोधाभासी गुण परमात्मा में ही सम्भव हैं क्योंकि वह सर्वव्यापक तथा सर्व शक्तिमान है। उसके लिये दूर या निकट, अन्दर या बाहर, चलना या न चलना इन शब्दों का कोई अर्थ नहीं है।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यंति।
सर्वभूतेषुं चात्मानं ततो न वि जुंगुप्सते।।

यजु. ४०।६

माध्यन्दिन संहिता में 'विचिकित्सति' शब्द आया है।

(यः सर्वाणि भूतानि) जो समस्त प्राणियों अर्थात् सम्पूर्ण चराचर जगत् को (आत्मनि एव अनुपश्यति) परमात्मा में ही स्थित देखता है तथा (सर्व भूतेषु आत्मानम्) समस्त भूतों में, समस्त प्राणियों एवं पदार्थों में परमात्मा को देखता है, (ततः न विजुगुप्सते) वह किसी से घृणा नहीं करता, किसी का तिरस्कार नहीं करता, उसकी सर्वत्र समदृष्टि होती है, उसमें सबके प्रति समानता का भाव होता है।

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूंद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकं एकत्वमंनुपश्यंतः।।

यजु. ४०।७

(यस्मिन्) जिस अवस्था में (विजानतः) विशेष ज्ञानी की दृष्टि में (सर्वाणि भूतानि) समस्त प्राणी एवं पदार्थ (आत्मा एव अभूत्) आत्मा ही हो गये, परमात्मा का ही रूप हो गये। (तत्र) उस अवस्था में (एकत्वं अनुपश्यतः) एकत्व का अनुभव करने वाले उस ज्ञानी को (कः मोहः) कैसा मोह, (कः शोकः) कैसा शोक, अर्थात् उसे किसी प्रकार का मोह और शोक नहीं होता।

यह अद्वैत का वर्णन है।

स पर्य्यगाच्छुक्रमंकायमंव्रणमंस्नाविरꣳ शुद्धमपांपविद्धम्।
कविर्मंनीषी पंरिभूः स्वंयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छा
श्वतीभ्यः समांभ्यः।।

यजु. ४०।८

(सः परि अगात्) वह परमात्मा सर्वव्यापक, (शुक्रम्) वीर्यवान्, सर्वशक्तिमान्, तेजस्वी (अकायम्) शरीर रहित, निराकार, (अव्रणम्)

किसी प्रकार के घाव अथवा छिद्र आदि से रहित, अक्षत, (अस्नाविरम्) स्नायु तन्तु आदि से रहित, (शुद्धम्) पवित्र, निर्मल, (अपापविद्धम्) पाप रहित, (कविः) क्रान्तदर्शी, सर्वज्ञ, सर्वदृष्टा, त्रिकाल दृष्टा, (मनीषी) मन पर शासन करने वाला, समस्त प्राणियों के मन की वृत्तियों को जानने वाला, (परिभूः) सर्वोपरि, सर्वनियन्ता, (स्वयम्भूः) स्वयं ही प्रकट होने वाला, स्वयं अपनी ही सत्ता तथा शक्ति से स्थित रहने वाला है (शाश्वतीभ्यः समाभ्यः) और शाश्वत रूप से अनादि काल से (याथातथ्यतः) ठीक ठीक, यथायोग्य, यथार्थ भाव से (अर्थान् व्यदधात्) समस्त पदार्थों अथवा कार्यों की व्यवस्था करने वाला है।

अन्धतमः प्र विंशन्ति येऽविंद्यामुपासंते।
ततो भूयं इव ते तमो य उं विद्यायांꣳ रताः।।

यजु. काण्व.सं. ४०।९

(ये अविद्यां उपासते) जो अविद्या की उपासना करते हैं अर्थात् जो अविद्या अर्थात् सांसारिक ज्ञान में लिप्त रहते हैं, वे (अन्धं तमः प्रविशन्ति) घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं। (ते ततः भूयः इव तमः) किन्तु वे उनसे भी अधिक घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं, (ये उ विद्यायां रताः) जो केवल विद्या अर्थात् आत्मविद्या या ब्रह्मविद्या ही में रत रहते हैं।

अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्यदांहुरविंद्यया।
इतिं शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विंचचक्षिरे।।

यजु. काण्व.सं. ४०।१०

वाजसनेयि संहिता में 'विद्याया' शब्द आया है।

(विद्यया अन्यद् एव आहुः) विद्या का फल भिन्न ही कहा जाता है और (अविद्यया अन्यद् आहुः) अविद्या का फल उससे भिन्न कहा जाता है। (इति धीराणां शुश्रुम) ऐसा हम ने उन धीर पुरुषों से सुना है (ये नः तद् विचचक्षिरे) जिन्होंने हमें उस विषय में विशेष रूप से बताया है, उपदेश दिया है।

विद्या चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयंꣳ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।।

यजु. काण्व. सं. ४०।११

(यः विद्यां च अविद्यां च तत् उभयं सह वेद) जो विद्या तथा अविद्या इन दोनों को साथ साथ जानता है अर्थात् दोनों का साथ साथ ज्ञान रखता है, वह (अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा) अविद्या से प्रकृति एवं सांसारिक विषयों जैसे साहित्य, इतिहास, गणित, भूगोल, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, इलेक्ट्रानिक्स आदि के ज्ञान से मृत्यु को पारकर अर्थात् इस मृत्यु लोक में सुखपूर्वक जीवन बिताकर (विद्यया अमृतं अश्नुते) विद्या से, ब्रह्मज्ञान से अथवा आत्मज्ञान से अमृतत्व को, मोक्ष को प्राप्त करता है।

यहाँ पर अविद्या का अर्थ कर्म अथवा उल्टी या गलत विद्या नहीं है, जैसा कि अनेक भाष्यकारों ने लिखा है।

संसार में आर्थिक उन्नति के लिये उन विषयों का ज्ञान आवश्यक है जिनसे धन, शक्ति तथा ऐश्वर्य प्राप्त किया जा सकता है।

मन्त्र से ही स्पष्ट है कि जिससे मोक्ष प्राप्त किया जाय वह विद्या, शेष सभी अविद्या।

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽसंम्भूतिमुपासंते।
ततो भूयं ऽ इव ते तमो यऽउ सम्भूंत्याꣳ रताः।।

यजु. काण्व. सं. ४०।१२

(ये असम्भूतिं उपासते) जो लोग असम्भूति की उपासना करते हैं, उसमें रत रहते हैं, वे (अन्धं तमः प्रविशन्ति) घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं। (ते ततः उ भूयः इव तमः) किन्तु वे उनसे भी अधिक घोर अन्धकार में जाते हैं, (ये उ सम्भृत्यां रताः) जो केवल सम्भूति में रत रहते हैं।

अन्यदेवाहुः संम्भवादन्यदाहुरसंम्भवात्।
इतिं शुश्रुम धीरांणां ये नस्तद्विंचचक्षिरे।।

यजु. काण्व. सं. ४०।१३

(सम्भवाद् अन्यद् एव आहुः) अविनाशी तत्व की उपासना से अर्थात् भगवान् को प्राप्त करने के लिये की जा रही योग साधना आदि से दूसरा ही फल कहते हैं, (असम्भवाद् अन्यद् आहुः) तथा नाशवान् पदार्थों को प्राप्त करने के प्रयास से दूसरा अर्थात् भिन्न फल कहते हैं। (इति धीराणां शुश्रुम) ऐसा हमने उन धीर पुरुषों से सुना है (ये नः तद् विचचक्षिरे) जिन्होंने उस विषय में हमें विशेष रूप से बताया है, उपदेश दिया है।

सम्भूंतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयंꣳ सह।
विनाशेनं मृत्युं तीर्त्वा सम्भूंत्याऽमृतंमश्नुते।।

यजु. काण्व. सं. ४०।१४

(यः सम्भूतिं च विनाशं च तत् उभयं सह वेद) जो अविनाशी परमात्मा का ज्ञान तथा नाशवान् संसार से सम्बन्धित ज्ञान, इन दोनों को साथ साथ जानता है, वह (विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा) वह नाशवान् धन सम्पत्ति आदि सांसारिक ऐश्वर्य से मृत्यु को तैरकर अर्थात् इस मृत्यु लोक में सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करके (सम्भूत्या अमृतं अश्नुते) अविनाशी परमेश्वर की भक्ति से अमृतत्व को, मोक्ष को प्राप्त करता है।

सम्भूति तथा असंभूति का अर्थ अनेक भाष्यकारों ने भ्रामक तथा काल्पनिक लिखा है जब कि मन्त्र से स्वयं ही यह स्पष्ट है कि असंभूति का अर्थ नाशवान् पदार्थ है और संभूति का अर्थ इसके विपरीत अविनाशी तत्व है।

हिरण्मयेंन पात्रेंण सत्यस्यापिंहितं मुखंम्।
तत्त्वं पूंषन्नपावृंणु सत्यधंर्माय दृष्टये।।

यजु. काण्व. सं. ४०।१५

(सत्यस्य मुखम् हिरण्मयेन पात्रेण अपिहितम्) सत्य का मुख हिरण्मय पात्र से ढंका हुआ है, (पूषन्) हे पालन पोषण करने वाले प्रभो! (सत्यधर्माय दृष्टये) सत्य धर्म को देखने के लिये (तत् त्वं अपावृणु) आप उस स्वर्णिम ढक्कन को हटा दीजिये।

मन्त्र से स्पष्ट है कि जो सत्य है वही धर्म है। शतपथ १४।४।२४ तथा १४।४।२६ में इस तथ्य को और भी स्पष्ट किया गया है। कितना दुःखद है कि आज धर्म में सत्य का कोई स्थान ही नहीं रह गया है।

यो वै स धर्मः सत्यं वै तत् तस्मात् सत्यं वदत्तमाहुर्धमं वदतीति धर्मं वा वदतं सत्यं वदतीत्येतद्येवै तदुभयं भवति।

शतपथ. १४।४।२।२६

जो धर्म है वही सत्य है। इसीलिये जो सत्य बोलता है, उसको कहते हैं कि धर्म बोलता है। जो धर्म बोलता है उसको कहते हैं कि सत्य बोलता है क्योंकि ये दोनों एक ही हैं।

पूषंन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजांपत्य व्यूंह रश्मीन्त्समूंह। तेजो यत्तें रूपं कल्यांणतमं तत्तें पश्यामि योऽसावसौ पुरुंषः सोऽहमंस्मि।।

यजु. काण्व. सं. ४०।१६

(पूषन्) हे पोषण करने वाले! (एक ऋषे) हे एक मात्र दृष्टा तथा ज्ञाता! (यम) हे सर्व नियन्ता! (सूर्य) हे परम तेजस्वी! सर्व प्रकाशक, (प्राजापत्य) हे जनक तथा प्रजापालक प्रभो! (रश्मीन् व्यूह समूह) अपनी किरणों को एकत्र करके, एक ओर कर दीजिये, हमारे सामने से हटा दीजिये, (यत्ते कल्याणतमं तेजो रूपम्) जिससे आपका जो परम कल्याणकारी तेजोमय रूप है, (तत्ते पश्यामि) उसे मैं देख सकूँ। (यः असौ असौ पुरुषः) जो यह प्राणों में रहने वाला पुरुष अर्थात् जीवात्मा है, (सः अहं अस्मि) वह मैं हूँ।

नेत्रों के सामने प्रकाश की तेज किरणों के समूह के आ जाने पर हम प्रकाश की ओर नहीं देख सकते। इसीलिये भगवान् से प्रार्थना की गयी है कि अपनी तेजस्वी किरणों को हटा लीजिये ताकि मैं आपके कल्याणकारी रूप का दर्शन कर सकूँ। कैसी सुन्दरं है यह प्रार्थना।

अनेक भाष्यकारों ने इसके भ्रामक अर्थ किये हैं।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम्।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मरं कृतꣳ स्मर।।

यजु. काण्व. सं.४०।१७

मृत्यु के उपरान्त (वायुः अनिलम्) प्राण वायु, समष्टि अविनाशी वायु तत्व में विलीन हो जाता है, (अथ इदं शरीरं भस्मान्तं) और इस शरीर का अन्त भस्म के रूप में हो जाता है अर्थात् यह पार्थिव शरीर जलाकर भस्म कर दिया जाता है अथवा अन्य प्रकार से मिट्टी में मिल जाता है।

(क्रतो ओ३म् स्मर) हे कर्म करने वाले जीव! ओ३म् का स्मरण करो, (क्लिबे स्मर) अपने सामर्थ्य की वृद्धि के लिये ओ३म् का स्मरण करो, (कृतं स्मर) अपने किये हुये कर्मों का स्मरण करो।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ।।

गीता, ८।१३

जो पुरुष 'ॐ', इस एकाक्षर ब्रह्म का उच्चारण करते हुये तथा (माम्) मुझको अर्थात् भगवान् को स्मरण करते हुये शरीर त्याग करके जाता है, वह परम गति को प्राप्त करता है।

पुरुषः सर्वासु पूर्षु पुरिशयो नैनेन किं चननावृतम् नैनेन किं चनानावृतम्।

शतपथ. १४।५।५।१८

इसको पुरुष कहते हैं क्योंकि यह सब पुरों में शयन करता है। इससे कुछ छिपा नहीं है।

वेद का स्पष्ट आदेश है कि हमें ओ३म् की ही उपासना, उसी का जप करना चाहिये, अन्य किसी का नहीं, जब कि आजकल अनेक मूर्ख लोग तथा कथित महापुरुषों की उपासना करते हैं।

अग्ने नयं सुपथा राये अस्मा-
न्विश्वानिदेव वयुनानि विद्वान्।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो
भूयिष्ठां ते नमं उक्तिं विधेम ।।

यजुर्वेद. ४०।१६, ५।३६ तथा ७।४३, यजु. काण्व.सं. ४०।१८
ऋग्. १।१८९।१

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म ! (अस्मान् राये सुपथा नय) हमें धन, ऐश्वर्य तथा सर्वतोमुखी अभ्युदय के लिये सुपथ अर्थात् अच्छे मार्ग से ले चलिये । हे देव ! आप हमारे (विश्वानि वयुनानि विद्वान्) समस्त कर्मों, विचारों तथा मन के भावों को जानने वाले हैं (अस्मत् जुहुराणम् एनः युयोधि) हम से कुटिलता पूर्ण पापों को अलग कर दीजिये (ते भूयिष्ठां नम उक्तिं विधेम) हम आपको बारम्बार प्रणाम करते हुये आपकी श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक स्तुति तथा उपासना करते हैं ।

नासदीय सूक्त

नासंदासीन्नो सदांसीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावंरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमांसीद्गहंनं गभीरम्।।

ऋग्. १०।१२९।१

(न असत् आसीत् न सत् आसीत्) प्रलयावस्था में न सत् था, न असत् था, (तदानीं) उस समय (न रजः आसीत्) न लोक था (व्योमा परः यत् न) और आकाश से परे जो कुछ है, वह भी नहीं था। उस समय (आवरीवः किं) सब को ढ़कने वाला क्या था? (कुह कस्य शर्मन्) कहाँ किसका आश्रय था? (गहनं गभीरम् अम्भः किं आसीत्) गहन और गभीर अर्थात् अगाध जल क्या था? अर्थात् नहीं था।

किमासीत् तदपि नैवासीदित्यर्थः।

सायणभाष्य

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास।।

ऋग्. १०।१२९।२

(तर्हि) उस समय (न मृत्युः आसीत् न अमृतं) न मृत्यु थी, न अमृत था, (न अह्नः प्रकेतः आसीत्) रात्रि और दिन का ज्ञान भी नहीं था, (अवात) वायु से रहित उस दशा में (एकं तत् स्वधया आनीत) एक अकेला ब्रह्म ही अपनी प्राण अर्थात् जीवन दायिनी शक्ति के साथ विद्यमान था, (तस्मात् परः) उसके सिवाय (अन्यत् किंचन न आस) कुछ भी नहीं था।

कुछ विद्वानों ने (आनीत) का अर्थ लिखा है कि- एक अकेला ब्रह्म ही प्राण धारण कर रहा था, जो स्पष्ट रूप से भ्रामक है। निराकार ब्रह्म के प्राण धारण का प्रश्न ही कहाँ उठता है।

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः।।

मनु.१।५

प्रलयकाल में यह समस्त जगत् अन्धकार से आच्छादित, अप्रज्ञात अर्थात् जिसे जाना न जा सके, अलक्षण अर्थात् सभी लक्षणों से रहित (अ प्रतर्क्य) अनिर्देश्य अर्थात् जिसके विषय में कोई तर्क अथवा निर्देश न दिया जा सके, सब ओर प्रसुप्त अर्थात् सोया हुआ सा था, किसी प्रकार की कोई हलचल नहीं थी।

तम॑ आसी॒त् तम॑सा गू॒ळ्हमग्रे॑ऽप्रके॒तं स॑लि॒लं सर्व॑मा इ॒दम्।
तु॒च्छ्येना॒भ्वपि॑हितं॒ यदासी॒त् तप॑स॒स्तन्म॑हि॒नाजा॑य॒तैक॑म्।।

ऋग्. १०।१२९।३

(अग्रे) सृष्टि से पूर्व (तमसा गूढ़ं तमः आसीत्) केवल अन्धकार से आच्छादित घोर अन्धकार था, (अप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्) यह सब अज्ञात, अवर्णनीय तथा ब्रह्म में लीन था। (यत् आसीत्) जो कुछ था, वह (तुच्छयेन आभु अपिहितम्) तुच्छ अर्थात् शून्य से आच्छादित था, अज्ञात था, (तत् एकं) केवल एक वह ब्रह्म ही (तपसः महिना आजायत) तप के प्रभाव से, तप की महिमा से विद्यमान था।

प्रकेतः-प्रज्ञानं, अप्रकेतं अप्रज्ञायमानं
सलिल- सद्भावे लीनं सलिलम्। (ब्रह्म में लीन।)

महिना-महिम्ना। (सायण भाष्य)

मन्त्र में प्रकृति का कोई उल्लेख नहीं है, फिर भी कुछ विद्वानों ने पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर उस समय प्रकृति के स्वतन्त्र रूप से उपस्थित होने का उल्लेख किया है।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा।।

ऋग्. १०।१२९।४

(तत् अग्रे) उस सबसे पहले अर्थात् सृष्टि से पूर्व परमात्मा के (यत् मनसा) जिस मन से (कामः सं अवर्तत) सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा उत्पन्न हुयी, तत्पश्चात् उसी मन से (प्रथमं रेतः आसीत्) सर्व प्रथम रेत अर्थात् संकल्प रूपी बीज उत्पन्न हुआ। (कवयः) बुद्धिमानों ने, क्रान्तदर्शी ऋषियों ने (मनीषा हृदि प्रति इष्य) बुद्धि द्वारा हृदय में विचार कर (बन्धुं असति) बन्धन के कारण भूत असत् अर्थात् अव्यक्त कारण प्रकृति को (सतः सत्वेन) सत् ब्रह्म से उत्पन्न हुआ (निर् अविन्दन्) जाना।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त्। रेतोधा आसन् महिमानं आसन् त्स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्।।

ऋग्. १०।१२९।५

(तिरश्चीनः विततः रश्मि) उत्पन्न हुयी सृष्टि किरणों के समान तिरछी तथा ऊपर नीचे विस्तृत होती हुयी सब ओर फैलती गयी। (एषां अधः स्वित् आसीत् उपरि स्वित् आसीत्) इस में छोटा कौन था और (उपरि) अर्थात् उससे ऊपर कौन था? (रेतोधाः आसन् महिमानः आसन्) इस सृष्टि में रेत अर्थात् बीज को धारण करने वाले नर अर्थात् पितृ शक्ति और महिमानः, नारी अर्थात् मातृ शक्ति थी। इसमें (स्वधा) अन्न अर्थात् भोज्य पदार्थ (अवस्तात्) अवर था और (प्रयतिः परस्तात्) भोक्ता उससे श्रेष्ठ था।

सृष्टि में दो प्रकार का वर्गीकरण है, भोक्ता तथा भोग्य और पितृ

शक्ति तथा मातृ शक्ति। इनमें भोक्ता प्रवर अर्थात् श्रेष्ठ और बलवान् है, भोग्य अवर अर्थात् उससे छोटा है और कम शक्ति वाला है। शरीरों की रचना भी इसी प्रकार की गयी है।

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव।।

ऋग्. १०।१२९।६

(को अद्धावेद) कौन निश्चय से जानता है, (कः इह प्र वोचत्) यहाँ कौन बतायेगा, (इयं विसृष्टिः कुतः कुतः आ जाता) कि यह सृष्टि कहाँ से और किस प्रकार उत्पन्न हुयी। (देवाः अस्य विसर्जनेन अर्वाक्) सभी विद्वान् इस सृष्टि के उत्पन्न होने के बाद ही उत्पन्न हुये हैं, (अथा कः वेद यतः आबभूव) अतः यह सृष्टि जिससे उत्पन्न हुयी, उसे कौन जानता है।

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद।।

ऋग्. १०।१२९।७

(इयं विसृष्टिर्यत् आबभूव) यह सृष्टि जिससे उत्पन्न हुयी (यदि वा दधे यदि वा न) और कौन इसे धारण करता है, कौन नहीं। (अंग) हे प्रिय! यो अस्य अध्यक्षः परमे व्योमन् स वेद) इसका जो अध्यक्ष अर्थात् परब्रह्म परम व्योम में स्थित है, वही इस तथ्य को जानता है, (यदि वा न वेद) उससे भिन्न अन्य कोई नहीं जानता।

जागृत तथा निष्पाप रहना

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः।।

ऋग्. ५।४४।१४

साम. १८२६,

(यः जागारः) जो अपने कर्तव्यों के प्रति जागरुक रहता है, (तं ऋचः कामयन्ते) ऋचायें उसी की कामना करती हैं, (यः जागारः) जो जागृत रहता है, (तं उ सामानि यन्ति) उसी के पास साम जाते हैं, उसी को साम मन्त्रों का लाभ प्राप्त होता है, (यः जागार) जो जागृत रहता है, (तं अयं सोमः आह) उसी से यह सोम कहता है कि (अहं तव अस्मि) मैं तेरा हूँ

(तव सख्ये नि ओकः) और तेरी मित्रता में रहूँगा।

अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद्भ्रातरं वा।
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा यत्सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत्॥

ऋग्. ५।८५।७

(वरुण) हे वरुण देव! (अर्यम्यं) श्रेष्ठ पुरुष के प्रति, (मित्र्यं) मित्र के प्रति (सखायं वा) अथवा अपने सखा एवं सहायता करने वाले के प्रति, (सदं इत् भ्रातरं वा) सदा भाई के समान व्यवहार करने वाले के प्रति, (नित्यं वेशं वा) सदा समीप रहने वाले के प्रति, (अरणं वा) अपने नेता के प्रति, (यत्) जो (सीं आगः चकृम) कोई अपशब्द किया हो (तत् शिश्रथः) उससे हमें मुक्त कर दीजिये।

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये॥

ऋग्. १०।६३।८

(देवासः) हे देव! (प्रचेतसाः मन्तवः ये विश्वस्य जगतः स्थातुः) उत्कृष्ट, ज्ञानवान् तथा मननशील देव जो समस्त चराचर जगत् तथा (भुवनस्य ईशिरे) समस्त लोकों के स्वामी हैं, (ते) वे देवगण (नः कृतात् अकृतात् एनसः) हमारे द्वारा किये हुये पापों तथा न किये हुये पापों अर्थात् आवश्यक कर्म न करने से उत्पन्न हुये पापों से (अद्य स्वस्तये परि पिपृत) आज हमारे कल्याण के लिये हमारी सब ओर से रक्षा करें, हमारे पापों का नाश करें तथा हमारा परिपालन करें।

न तं जिनन्ति बहवो न दभ्रा उर्वस्मा अदितिः शर्म यंसत्।
प्रियः सुकृत्प्रिय इन्द्रे मनायुः प्रियः सुप्रावीः प्रियो अस्य सोमी॥

ऋग्. ४।२५।५

(तं) उस मनुष्य को (दभ्राः बहवः) बहुत से शत्रु (न जिनन्ति) नहीं जीत सकते, (अदितिः अस्मै उरु शर्म यंसत्) देव माता अदिति अथवा पृथिवी एवं प्रकृति उसे महान् सुख देती हैं, (इन्द्रे सुकृत् मनायुः सुप्रावीः प्रियः) ऐसा उत्तम कर्म करने वाला, उत्तम मन वाला, श्रेष्ठ मार्ग से जाने

वाला (सोमी अस्य प्रियः) तथा सोम यज्ञ करने वाला मनुष्य इन्द्र के लिये प्रिय होता है।

अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे।
विश्वा वामानि धीमहि।।

ऋग्. ५।८२।६

(देवस्य सवितः सवे) सविता देव की इस सृष्टि में हम (अनागसः) निरपराध एवं निष्पाप होकर (अदितये) अपनी माता एवं मातृभूमि के लिये (विश्वा वामानि धीमहि) समस्त प्रकार के श्रेष्ठ धनों को धारण करें।

धन एवं कामना पूर्ति की प्रार्थना

शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः।।

ऋग्. १।५३।३

(शचीव पुरुकृत् द्युमत्तम इन्द्र) हे शक्तिमान्, बहुत से कर्म करने वाले, अत्यन्त तेजस्वी इन्द्र! (अभितः वसु) चारों ओर जो धन है, (तव इत्) वह आपका ही है, (चेकिते) यह हम जानते हैं, अतः (सं गृभ्य) इस धन को एकत्रित करके (अभिभूते आभर) शत्रु पर विजय प्राप्त करने वाले, हमारे लिये भरपूर दीजिये तथा (त्वायतः जरितुः) आपको प्रेम करने वाले, आपकी इच्छा करने वाले स्तोता की (कामं) कामना को (मा ऊनयीः) नष्ट मत कीजिये।

श्रेष्ठ कर्म करने के लिये वीरता

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददेऽध्वरकृतं देवेभ्य इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः।।

यजु. १।२४

(सवितुः देवस्य प्रसवे) सविता देव की इस सृष्टि में (अश्विनोः बाहुभ्याम्) अश्वनि देवों की बाहुओं से अर्थात् सूर्य तथा चन्द्रमा की

किरणों से और (पूष्णोः हस्ताभ्याम्) पूषा देव के हाथों से अर्थात् पोषण करने वाली वायु से (देवेभ्यः अध्वरं कृतम्) देवों के लिये यज्ञ करने वाले (त्वा आददे) तुम्हें ग्रहण करता हूँ, तुम्हारी सहायता एवं रक्षा करता हूँ। (इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः) तुम इन्द्र की दाहिनी भुजा हो, (सहस्रभृष्टिः) तुम सहस्रों दुष्टों का नाश करने वाले, (शततेजा) सैकड़ों प्रकार के तेजों से युक्त (तिग्मतेजाः) तीक्ष्ण अर्थात् असहनीय तेज को धारण करने वाले तथा (द्विषतो वधः) शत्रुओं का वध करने वाले हो।

पुरुष को श्रेष्ठ कर्म करने में कभी भी अपने को असहाय नहीं समझना चाहिये। हमें इन्द्र के समान पराक्रमी तथा शत्रुओं का नाश करने वाला बनना चाहिये। हमारी भुजायें अश्विनी कुमारों के समान निर्बलों की सहायता करने वाली तथा हमारे हाथ पूषा देव के समान दूसरों का पालन पोषण करने वाले होने चाहिये। भगवान् राम के जीवन से हमें यही प्रेरणा प्राप्त होती है।

महत्वपूर्ण निर्वचन तथा शब्दों के अर्थ

(पुरुषः)= (पुरस्+ उष्) इसने सबसे पहले पापों को (औषत्) दग्ध किया, इसलिये इसका नाम पुरुष हुआ। अतः जो श्रेष्ठ होना चाहता है, वह अपने पापों को दग्ध कर देता है।

शतपथ.१४।४।२।२

शर्म-सुख। निघण्टु. ३।४

शर्म- गृह। निघण्टु. ३।६

अश्विनौ- सूर्या चन्द्रमसौ। निघण्टु. १२।१

गन्धर्वा- गां पृथिवीं धारयतीति। निरुक्त.१।१

अश्विनौ द्यावापृथिव्यौ- सूर्याचन्द्रमसौ अहोरात्रे।

क्रतुदक्षौ ह वा अस्य मित्रा वरुणौ। शतपथ. ४।१।४।१

मित्र और वरुण क्रतु और दक्ष हैं।

मित्र	वरुण
क्रतु	दक्ष
ब्राह्मण	क्षत्रिय
विचार अथवा संकल्प	कर्म

जब वह मन में सोचता है कि मैं यह करूँ। तब यह क्रतु अर्थात् मित्र है और जब वह कर्म पूर्ण हो जाता है तब यह दक्ष अर्थात् वरुण है। ब्राह्मण सोचता है और क्षत्रिय करता है। ब्राह्मण और क्षत्रिय को मिलकर कार्य करना चाहिये तभी सफलता प्राप्त होती है।

सूर्य की अङ्गिरस नामक किरणों को वराह कहते हैं-

अङ्गिरसोऽपि वराहा उच्यन्ते। (निरु. ५।४)

विष्णु= सूर्य

सूर्य की किरणों से जल सूख जाने पर जल के अन्दर की पृथिवी निकल आती है। यही विष्णु के वराह अवतार की कथा का आधार है।

तेजो वा आज्यं। शतपथ. १४।५।४।५

घृत तेज है।

राक्षसों ने देवताओं को यज्ञ करने से रोका (ररक्षुः) इसलिये उनका नाम राक्षस है। रक्ष का अर्थ है- रोकना।

शतपथ. १।१।१।१६

हृदय-

तदेतत् त्र्यक्षरं हृदयमिति, हृ इत्येकमक्षरम्, द इत्येकमक्षरं, यम् इत्येकमक्षरं।

शतपथ. १४।८।४।१

हृदय शब्द हृञ् हरणे, दा दाने, इण् गतौ, इन तीन धातुओं से बना है। हृदय, अशुद्ध रक्त को हरण करने अर्थात् लेने वाला, शुद्ध रक्त को देने वाला तथा रक्त को शरीर में गति देने वाला है। इस प्रकार हृदय शब्द से ही Circulation of blood की पूरी प्रक्रिया, जिसके विषय में यह कहा जाता है कि इसकी खोज सबसे पहले इंग्लैण्ड में हुयी थी, स्पष्ट हो जाती है।

पुरुष-

पुरुषः पुरिषादः, पुरिशयः, पूरयतेर्वा।

निरुक्त. २।१।२

पुरिषाद- पुरिष, पुरुष

पुरि सीदतीति पुरिषादः- जीवात्मा शरीर में रहता है।

पुरिशय- पुरुष- पुरि में निवास करने वाला पुरुष।

'पूरी आप्यायने' धातु से 'कुषन्' प्रत्यय।

मनुष्य का पुरुषत्व इसी में है कि वह उन्नति करे।

'पूरयति अन्तः' पूरणार्थक 'पृ' धातु से पुरुष शब्द सिद्ध किया गया है। =पूर्ण व्यापक

एकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्।

उस पूर्ण पुरुष से यह सब स्थावर जंगम जगत् व्याप्त है।

असत्- अव्यक्त जो प्रकट नहीं होता।

सत्- व्यक्त-प्रत्यक्ष जगत्।

असद् वा इदमग्र आसीत्। तैत्ति. उप. २।७

पहले यह जगत् अव्यक्त था।

ततो वै सद् जायत। तैत्ति. उप. २।७

उससे ही यह प्रत्यक्ष जगत् उत्पन्न हुआ।

अग्नि में सब देवताओं के लिये आहुति दी जाती है, इसलिये कहा कि अग्नि सब देवता है, सोम की आहुति सब देवों के लिये दी जाती है, इसलिये कहा कि सोम सब देवता है। चूंकि इन्द्र में सब स्थित हैं, इसलिये इन्द्र सब देवता है। इस प्रकार देव तीन प्रकार से एक देवता के रूप में आ गये।

इन्द्र श्रेष्ठा देवा।

इन्द्र देवताओं में श्रेष्ठ है।

शतपथ. १।६।३।१९-२२

वृत्र-

एष एव वृत्रो यच्चन्द्रमाः। शतपथ. १।६।४।१३

यह जो चन्द्रमा है, वही वृत्र है।

एष वै सोमो राजा देवानामन्नं यच्चन्द्रमाः।

शतपथ. १।६।४।५

यह सोम राजा, जो देवों का अन्न है, चन्द्रमा ही है।

जो सूर्य है वह इन्द्र है। जो चन्द्रमा है वह वृत्र है। सूर्य चन्द्रमा को ग्रस लेता है, चूस लेता है, इसीलिये अमावस्या को चन्द्रमा नहीं दिखायी देता। फिर प्रतिपदा को पश्चिम में उदय होकर धीरे धीरे सूर्य की ओर (अपने शत्रु की ओर) चलता है और फिर सूर्य में प्रवेश कर जाता घुस जाता है। शतपथ. १।७।४।१८

अदिति

अदिंतिर्द्यौरदिंतिरन्तरिंक्षमदिंतिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वे देवा अदिंतिः पञ्च जना अदिंतिर्जातमदिंतिर्जनिंत्वम्।।

ऋग्. १।८९।१०, यजु. २५।२३

(अदितिः द्यौः) अदिति द्यौ है, (अदितिः अन्तरिक्षम्) अदिति अन्तरिक्ष है, (अदितिः माता) अदिति पृथिवी तथा प्रकृति रूपी माता है। (स पिता स पुत्रः) वही पिता है, वही पुत्र है, परमात्मा का पुत्र जीवात्मा भी अदिति है। (विश्वेदेवा) समस्त देव अदिति हैं, (पञ्च जनाः अदितिः), ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा इन चार वर्णों के बाहर जो लोग हैं, (जिन्हें निषाद कहा जाता है) वे भी अदिति हैं। (अदितिः जातम्) पञ्च महाभूतों से उत्पन्न यह जगत् अदिति है और (अदितिः जनित्वम्) जो भविष्य में उत्पन्न होने वाला है, वह भी अदिति है।

इयं वै पृथिवी अदितिः। (शतपथ. १।३।३।४)

दिति का अर्थ है खण्डित होना। अतः अदिति का अर्थ हुआ अखण्डित अथवा अविनाशी।

यह संसार अदिति अर्थात् अक्षय एवं अखण्डित परमात्मा की विभूति है।

अदिति का अर्थ अदीन भी होता है। अदितिरदीना देवमाता। (निरुक्त. ४।३।२२।४९)। यह मंत्र अदिति अर्थात् परमात्मा की विभूति का वर्णन करता है। संसार में सब कुछ परमात्मा का ही रूप है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'।

वही सब देवताओं का नाम धारण करता है अर्थात् सभी देवताओं अग्नि, वायु, आदित्य आदि के नाम परमात्मा के भी नाम हैं, किसी मन्त्र का अध्ययन करने पर ही यह ज्ञान होता है कि मन्त्र में प्रयुक्त अग्नि आदि शब्द परमात्मा के लिये प्रयोग किये गये हैं, अथवा भौतिक अग्नि, वायु आदि के लिये।

एते अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति।

अथर्व. १३।४।१३

ये सब देव उस परमात्मा में एक रूप हो जाते हैं।

शिर में ज्ञान तथा यश

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन्यशो निहितं विश्वरूपम्।
तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः।।

अथर्व. १०।८।९

(तिर्यग्बिलः ऊर्ध्व बुध्नः चमसः) नीचे की ओर मुँह वाला और ऊपर की ओर पेंदी वाला एक पात्र है (यहाँ मनुष्य के शिर का वर्णन पात्र के रूप में किया गया है।) (यस्मिन् विश्वरूपं यशः निहितं) उसमें नाना रूप वाला यश तथा ज्ञान रखा हुआ है। (तत् सप्त ऋषयः साकं आसते) वहाँ सात ऋषि साथ साथ स्थित हैं। (ये अस्य महतः गोपाः बभूवुः) जो इस महिमामय शिर तथा शरीर के रक्षक हैं।

यहाँ सात ऋषियों से तात्पर्य पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ आँख, कान, नाक,

जिह्वा तथा त्वचा और मन एवं बुद्धि अथवा दो आँख, दो कान, दो नासिका छिद्र तथा जिह्वा से है।

तिर्यग्बिलः- तिरछे इन्द्रिय छिद्रों वाला।

चमसः- पात्र अर्थात् शिर।

ऊर्ध्वबुध्नः ऊर्ध्व बोधनो वा। (निरुक्त. १२।४)

शरीर के ऊपर स्थित ज्ञान प्राप्त करने वाला।

यशः- ज्ञान, प्रकाश तथा कीर्ति। ज्ञान से ही यश प्राप्त होता है, इसीलिये सरस्वती को यश की बहिन **'सरस्वत्यै यशो भगिन्यै स्वाहा'** (यजु. २।२०) कहा गया है। यश की भगिनी सरस्वती के लिये यह आहुति है।

——0——

मन्त्र सूची

क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या	क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या
1.	अग्निमीले	4	27.	अन्ति सन्तं	151
2.	अग्न आयाहि	5,359	28.	अध्यवोचदधि	156
3.	अकामो धीरो	6	29.	असौ यस्ताम्रो	156
4.	अग्ने नय	7,375	30.	असौ योऽवसर्पति	157
5.	अग्ने व्रतपते	8,267	31.	अवतत्य धनुष्ट्वं	159
6.	अम्बितमे	14,128	32.	असंख्याता	162
7.	अग्निः परेषु	26	33.	अष्टाचक्रा	183
8.	अनेजदेकं	27	34.	अहं रुद्रेभिः	186
9.	अग्निहोत्रं च	48	35.	अहं सोमं	187
10.	अग्निरस्मि	80	36.	अहं राष्ट्री	187
11.	अहानि शं	92	37.	अहमेव स्वयमिदं	188
12.	अभित्यं देवं	101	38.	अहं रुद्राय	188
13.	अद्याद्या श्वः	105	39.	अहं सुवे	188
14.	अधा हीन्द्रं	120	40.	अहमेव वात	189
15.	अदृश्रन्नस्य	133	41.	अग्निर्देवता	189
16.	अयुक्त सप्त	134	42.	अप्सु मे सोमो	213
17.	अग्निर्मूर्धा	135	43.	अभि त्वा सिन्धो	215
18.	अन्तश्चरति	136	44.	अन्तरिक्षे पृथिभि	221
19.	अद्या देवा	136	45.	अर्यमाणं यजामहे	226
20.	अस्य वामस्य	137	46.	अघोरचक्षुः	230
21.	अग्न आयूँषि	141	47.	अमोऽहमस्मि	232
22.	अग्ने पवस्व	141	48.	अंहोमुचे	251
23.	अग्ने त्वं नो	144	49.	अहमस्मि	266
24.	अथर्वाणं पितर	149	50.	अहमस्मि सपत्न	276
25.	अनच्छये	150	51.	अयमस्मि जरितः	287
26.	अपाङ् प्राङेति	150	52.	अद्भ्यः सम्भृतः	298

क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या	क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या
53.	अनुव्रतः पितुः	304	82.	आन एतु मनः	166
54	अनृणा अस्मिन्	319	83.	आयुर्मे पाहि	167
55.	अपेहि मनसस्पते	328	84.	आचार्य उपनयमानः	196
56.	असुर्या नाम	332,368	85.	आचार्यो ब्रह्मचारी	197
57.	अन्धं तमः	334	86.	आयं गौः	205
58.	अन्यदेवाहुः	334	87.	आपो हिष्ठा	212
59.	अश्मन्वती	336	88.	आपः पृणीत	214
60.	अपि पन्थाम	337	89.	आप इद्वा उ	215
61.	अशितावत्यति	347	90.	आत्मा देवानां	222
62.	अस्येदिन्द्रो	348	91.	आशासाना	228
63.	अभयं नः	352	92.	आ ब्रह्मन्	302
64.	अभयं मित्रात्	352	93.	आ गावो	323
65.	अहमिद्धि	355	94.	आकूत्या नो	329
66.	अग्निं दूतं	361	95.	आ यद्यद्रिभिः	349
67.	अनेजदेकं	359	96.	आ जुहोता	362
68.	अन्धतमः	371	97.	इन्द्र श्रेष्ठानि	15
69.	अन्यदेवाहुर्विद्याया	371	98.	इन्द्रं मित्रं	24,12
70.	अन्धन्तमः	372	99.	इदं मे ब्रह्म	56
71.	अन्यदेवाहुः	372	100	इन्द्रमिद्गाथिनो	75
72.	अर्यम्यं वरुण	380	101.	इयं या परमेष्ठिनी	97
73.	अनागसो	381	102.	इदं यत्परमेष्ठिनं	97
74.	आनो अग्ने रयिं	59	103.	इमानि यानि	98
75.	आनो अग्ने सुचेतुना	59	104.	इन्द्राय साम	104
76.	आ ते वत्सो	65	105.	इद्रं वर्धन्तो	107
77.	आनो भद्राः	84	106.	इन्द्रो विश्वस्य	111
78.	आशुः शिशानो	108	107.	इन्द्रं धनस्य	113
79.	आत्वा रम्भं	121	108.	इन्द्र आशाभ्यस्परि	114
80.	आ कृष्णेन	132	109.	इन्द्रः सुत्रामा	115
81.	आ हिष्मा	154	110.	इन्द्रमीशानं	118

क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या	क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या
111.	इन्द्रो राजा	119	140.	उद्वयं तमसस्परि	66
112.	इन्द्रं विश्वा	121	141.	उत त्वा बधिरं	104
113.	इदं विष्णुर्वि	122	142.	उदुत्यं जातवेदसं	130
114.	इदं श्रेष्ठं	135	143.	उषस्तच्चित्रमा	145
115.	इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां	148	144.	उषा अप स्वसु	148
116.	इदाह्नः पीतिमुत	171	145.	उद्यानं ते पुरुष	169
117.	इहैव स्त	204	146.	उतेदानीं	193
118.	इदमापः	214	147.	उपस्थास्ते	211
119.	इमं मे गङ्गे	216	148.	उतवात पितासि	220
120.	इहेमाविन्द्र	232	149.	उदुत्तमं वरुण	236
121.	इडे रन्ते हव्ये	234	150.	उदेनमुत्तरं	250
122.	इमं मे वरुण	234	151.	उदेषां बाहू	253
123.	इन्द्रश्च सम्राड्	237	152.	उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते	254
124.	इन्द्रेमं प्रतरं	250	153.	उत त्वः पश्यन्	255
125.	इमे ये नार्वाङ्	257	154.	उत त्वं सख्ये	255
126.	इन्द्रवायू	280	155.	उप क्षरन्ति	260
127.	इन्द्र जहि	288	156.	उलूकयातुं	274
128.	इडा सरस्वती	310	157.	उभाभ्यां देव	284
129.	इहैव सन्तः	319	158.	उपह्वये सुदुघां	324
130.	इषत्वोर्जेत्वा	341	159.	उग्रो राजा	344
131.	इष्टं च वा	346	160.	उपह्वरे गिरीणां	352
132.	इयं नारी	355	161.	ऊर्ध्वो नु सृष्टा	182
133.	इयं विसृष्टिः	379	162.	ऊर्ध्वः सुप्तेषु	204
134.	ईशाना वार्याणां	213	163.	ऊर्जा च वा	346
135.	ईशावस्यमिदं	330,366	164.	एतावानस्य	29,291
136.	ईडेन्यो नमस्य	360	165.	एधोऽस्येधिषीमहि	55
137.	उच्छिष्टे नाम	48	166.	एन्द्र सानसिं	57,117
138.	उच्छिष्टे द्यावा	48	167.	एषा शुभ्रा	145
139.	उपत्वाग्ने	53	167.	एषा दिवो	146

क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या	क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या
168.	एवेदेषा पुरुतमा	147	197.	चत्वारि श्रृङ्गा	242 तथा 8 (भूमिका)
169.	एतन्ते रुद्रावसं	162	198.	चत्वारि वाक्	281
170.	एते अस्मिन्	191	199.	चन्द्रमा मनसो	295
171.	एष वा अतिथि	347	200.	जनं बिभ्रती	211
172.	एको देवः सर्व	12	201	जातवेदसे	64
173.	ओषधयो भूतभव्य	198	202	जाया तपते	366
174.	कृतं मे दक्षिणे	59,110	203.	जिह्वा मे	335
175.	कन्येव तन्वा	146	204.	जिह्वया अग्रे	356
176.	कृष्णं नियानं	224	205.	ज्यायस्वन्तः	305
177.	कामस्तदग्रे	306	206.	तद् वा अथर्वणः	182
178.	कामेन मा काम	308	207.	तच्चक्षुर्देवहितं	16,164
179.	कामो जज्ञे	309	208.	तमीशानं	17,85
180.	कः स्विदेकाकी	315	209.	तदेवाग्निस्तदा	22
181.	किꣳ स्वित्सूर्य	316	210.	तदेजति	27,369
192.	केन पार्ष्णी	320	211.	ततो विराड	51,292
183.	कस्मान्नु गुल्फा	320	212.	तमु ष्टुहि	74
184.	केनेयं भूमिः	321	213.	तत्सवितुर्वृणीमहे	101
185.	कः सप्त खानि	321	214.	तस्य वयꣳ	116,194
186.	कुर्वन्नेवेह	331,367	215.	तथा तदस्तु	118,153
187.	कीर्तिं च वा	347	216.	तम्वभिप्र गायत	119
188.	कामस्तदग्रे	378	217.	तद्विष्णोः परमं	121
189.	को अद्धा	379	218.	तद्विप्रासो	124
190.	गणानां त्वा	52	219.	तदस्य प्रियमभि	126
191.	गायन्ति त्वा	108	220.	तमु स्तोतारः	126
192.	गृह्णामि ते	328	221.	तनूपा अग्ने	138,165
193.	गौरमीमेदभि	326	222.	तं त्वा शोचिष्ठ	144
194.	गावो भगो	327	223.	तव चतस्रः	163
195.	चोदयित्री	128	224.	तपश्चैवास्तां	174
196.	चित्रं देवानां	131	225.	तस्माद्वै विद्वान्	178

क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या	क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या
226.	तमिदं निगतं	191	255.	त्वामग्ने पुष्करा	139
227.	तस्मा अरंग	213	256.	त्वां दूतमग्ने	142
228.	तत्वायामि	235	257.	त्वमग्ने व्रतपा	143
229.	तमिद् वोचेमा	259	258.	त्वं त्येभिरा	145
230.	तस्माद्यज्ञात्	293,6	259.	त्वं जामिर्जनानां	152
231.	तस्मादश्वा	294	260.	त्वं हि विश्वतो	336
232.	तं यज्ञं	294	261.	त्वमग्ने द्युभिस्त्वं	78
233.	तद्वै राष्ट्रमा	345	262.	त्वं नः सोम	351
234.	तं त्वा समिद्	360	263.	त्वं सोमासि	350
235.	तम आसीत	377	264.	त्वं नः सोम	349
236.	ता अपः शिवः	214	265.	त्वं नो अग्ने	235
237.	तान् पूर्वया	280	266.	दश साकम	175
238.	ता एव यज्ञ	345	267.	दक्षिणावता	261
239.	तिरश्चीनो	378	268.	दंष्ट्राभ्यां	278
240.	तिस्रो देवीः	312	269.	दविद्युतस्या	348
241.	तिर्यग्बिलशच	184	270.	दिवो विष्ण	15,124
242.	तुभ्यं वातः	168	271.	दिव्यो गन्धर्वो	30
243.	तेजोऽसि तेजो	16	272.	देवाः पितरो	49
244.	त्वं स्त्री त्वं	26	273.	देवानां भद्रा	84
245.	त्वमग्न इन्द्रो	78	274.	देवस्य चेततो	100
246.	त्वमग्ने राजा	79	275.	देव सवितः	103
247.	त्वमग्ने रुद्रो	79	276.	देवस्य वयं	103
248.	त्वं हि नः	11,152	277.	देवस्य त्वा	109,381
249.	त्वं न इन्द्रा	111	278.	देवो देवानां	138
350.	त्वयेदिन्द्र	112	279.	देवानामेतत्	199
251.	त्वमिन्द्राभि	115	280.	देवस्य सवितुः	215
252.	त्वां हि सत्य	120	281.	देवा यज्ञमृतवः	252
253.	त्वं न इन्द्र	120	282.	देवीं वाचम	283
254.	त्वमग्ने यज्ञानां	139	283.	देवस्य त्वा	306

क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या
284.	दैवीं पूर्ति	261
285.	दोषो गाय	74
286.	द्वा सुपर्णा	315
287.	द्वादशारं	365
288.	द्वादश प्रधय	365
289.	दृते दृꣳह मा	167
290.	दृष्ट्वा रूपे	269
291.	द्रप्सश्चस्कन्द	241
292.	द्यावा चिदस्मै	119
293.	द्यौः शान्ति	21,98
294.	द्यौर्नः पिता	314
295.	धाता दधातु नो	14
296.	धाता विश्वा	61,195
297.	धाता दधातु	194
298.	धाता रातिः	251
299.	धूरसि धूर्व	276
300.	नमः शम्भवाय	2
301.	नमः सायं	52
302.	नमस्ते अस्तु	52
303.	नतं विदाथय	77
304.	नमस्ते हरसे	141
305.	नमस्ते रुद्र	154
306.	नमोस्तु नील	157
307.	नमस्त आयुधा	160
308.	न देवानामति	168
309.	न वै तं	183
310.	नमस्ते अस्त्वायते	200
311.	न त्वदन्यः	238
312.	न यातव	241
313.	न भोजा	261
314.	न वा उ देवाः	262
315.	न स सखा	263
316.	न वा उ सोमो	268
317.	नमो महद्भ्यो	279
318.	न वा उ एतन्	340
319.	न ब्राह्मणो	344
320.	न मृत्युरासीद	376
321.	न तं जिनन्ति	380
322.	नाकस्य पृष्ठे	260
323.	नाभ्याआसीद	296
324.	नासदासीन्नो	376
325.	नित्यश्चाकन्यात्	62,195
326.	नृचक्षसो	90
327.	परीत्य भूतानि	68
328.	परिद्यावा	68
329.	परः सो अस्तु	273
330.	परो पेहि	272
331.	परिमाऽग्ने	279
332.	पवित्रेण पुनीहि	284
333.	पवमानः सो	284
334.	पवमानः पुनातु	285
335.	पञ्चारे चक्रे	364
336.	परि ते धन्वनो	159
337.	पार्थिवा दिव्याः	199
338.	पावका नः सरस्वती	13,128
339.	प्रियं मा कृणु	173
340.	पुरुष एवेदꣳ	28,290
341.	पुनस्त्वाऽदित्या	252

क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या	क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या
342.	पुनन्तु मा पितरः	283	371.	प्राणमाहुर्मात	202
343.	पुनन्तु मा देवजनाः	283	372.	बण्महाँ असि	134
344.	पूषन्नेकर्षे	374	373.	बाहू मे बलं	65
345.	पूर्वापरं चरतो	137	374.	बोधश्च त्वा	170
346.	पूर्णात्पूर्णमुदचति	33	375.	ब्रह्म जज्ञानं	21
347.	प्रेतो मुञ्चामि	227	376.	ब्रह्मणा भूमिः	25,322
348.	पौरो अश्वस्य	54,105	377.	ब्रह्मचर्येण तपसा	197
349.	प्र बुध्यस्व	233	378.	ब्रह्मचर्येण कन्या	198
350.	प्रति तिष्ठ	230	379.	ब्रह्मचर्येण तपसा देवा	198
351.	प्रनूनं ब्रह्मणस्	259	380.	ब्रह्मचारी ब्रह्म	200
352.	पृष्ठात् पृथिव्या	67	381.	ब्रह्म सूर्यसमं	316
353.	पृणीयादिन्ना	264	382.	ब्राह्मणोस्य मुखं	295
354.	प्र तद्विष्णुस्त	125	383.	बृहन्तो नाम ते	47
355.	प्रत्युष्टꣳ रक्षः	276	384.	बृहता मन	172
356.	प्रसोऽअग्ने	139	385.	भद्रं कर्णेभिः	19,86
357.	प्रमुञ्च धन्व नः	158	386.	भवा नो अग्ने	64
358.	प्रथक् सर्वे	199	387.	भरेष्विन्द्रं	90
359.	प्र सु स्तोमं	287	388.	भद्रं भद्रं न	112
360.	प्रजापतिश्चरति	299	389.	भवा मित्रो	127
361.	प्रजावतीः सूयवसे	324	390.	भग एव	194
362.	प्रजां च वा	347	391.	भद्रो नो अग्नि	250
363.	प्र वाता वान्ति	223	392.	भद्रमिच्छन्त	302
364.	प्र वो वाजा	358	393.	भारती पवमानस्य	310
365.	प्राता रत्नं	260	394.	भूर्भुवः स्वः	3,43
366.	प्राणापानौ	175	395.	भूरित इन्द्र	116
367.	प्रातः प्रातर्गृहपति	285	396.	भोजमश्वाः	262
368.	प्राणाय नमो	200	397.	भोजायाश्वं	264
369.	प्राणः प्रजा	201	398.	मह्यं यजन्तां	54
370.	प्राणो विराट्	201	399.	मधुमतीरोषधी	357

क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या	क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या
400.	मधुमन्मे	357	431.	मृगो न भीमः	117
401.	मधुमान्नो	356	432.	य आत्मदा	9
402.	मधुनक्तं	356	433.	यज्ञेन यज्ञं	244
403.	मयोभूर्वातो	327	434.	यस्य भूमिः	1
404.	मम त्वा दोषणि	319	435.	यस्य सूर्यश्चक्षुः	1
405.	ममाग्ने वर्चो	245	436.	यस्य वातः	1
406.	ममेयमस्तु	229	437.	यः प्राणतो	10
407.	महान्तं कोश	223	438.	यस्येमे हिमवन्तो	10
408.	मयो सो अन्न	187	439.	यन्मे छिद्रं	19
409.	महे नो अद्या	146	440.	यस्मान्न जातः	23
410.	महो अर्णः	129	441.	यस्य त्रयस्त्रिंशत्	45
411.	महे चन त्वा	118	442.	यस्मादृचो	46
412.	महीरस्य प्रणीतयः	114	443.	यत्रादित्याश्च	46
413.	मनसः काम	58	444.	यच्च प्राणति	49
414.	मामा हिꣳ	11	445.	यत्र देवा ब्रह्म	52
415.	मा प्र गाम	109	446.	यथा मधु	57
416.	मा नस्तोके	160	447.	यदिन्द्र चित्र	57
417.	मानो हिंसी	163	448.	यस्मै त्वमायजसे	63
418.	मा गतानामा	169	449.	यज्जाग्रतो दूर	81
419.	मा भ्राता	304	450.	यत्प्रज्ञानमुत	82
420.	माता रुद्राणां	326	451.	यस्मिन्नृचः	83
421.	मित्रावरुणा	240	452.	यन्मे छिद्रं	91
422.	मीढुष्टम शिवतम	161	453.	यद्याव इन्द्रो	105
423.	मुमक्तमस्मान्	338	454.	यत्ते दिक्षु	107
424.	मूर्धाहं रयीणां	57	455.	यस्योरुषु	124
425.	मूर्धानमस्य	181	456.	यस्य त्री पूर्णा	125
426.	मेधामहं प्रथमां	353	457.	यदङ्ग दाशुषे	143
427.	मोघमन्नं	265	458.	यदग्ने स्यामहं	153
430.	मुग्धा देवा	249	459.	यथाहान्यनुपूर्वं	168

क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या	क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या
460.	यदा त्वष्टा	176	488.	यत्रेन्द्रश्च	317
461.	यदा प्राणो	202	489.	यथा वृक्षं	317
462.	यस्यां पूर्वे	207	490.	यथा सुपर्णः	318
463.	यस्ते गन्धः	207	491.	यथेमे द्यावा	318
464.	यन्ते गन्धः	208	492.	यस्तु सर्वाणि	332
465.	यच्छयानः	209	493.	यस्मिन्त्सर्वाणि	333
466.	यस्यां गायन्ति	210	494.	यद् विद्वांसो	338
467.	यस्याः पुरो	210	495.	यदि जाग्रद्य	338
468.	यद् वदामि	211	496.	यद्देवा देव	338
469.	यददो वात	221	497.	यदि दिवा	339
470.	यत्पर्जन्य	223	498.	यदि जाग्रद्य	339
471.	यस्तिष्ठति	238	499.	यद् ग्रामे	339
472.	यद्देवा देवान्	248	500.	य एनं हन्ति	344
473.	यत्पुरुषेण	248,296	501.	यद्वा अतिथि	345
474.	यस्य कृण्मो	250	502.	यदभि वदति	345
475.	यज्ञेन वाचः	255	503.	यथा द्यौश्च	351
476.	यथेमां वाचं	257	504.	यत इन्द्र	351
477.	य आध्राय	263	505.	यस्तु सर्वाणि	370
478.	यत्ते पवित्र	284	506.	यस्मिन्त्सर्वाणि	370
479.	यत्पुरुषं	295	507.	य ईशिरे	380
480.	यस्य भूमिः	296	508.	यास्ते अग्ने	58
481.	यत्काम कामय	308	509.	याते रुद्र	155
482.	यशाइन्द्रो	313	510.	यामिषुं गिरिशन्त	155
483.	यशो मा	313	511.	याते हेतिर्मीढुष्टम	159
484.	यशसं मेन्द्रो	313	512.	याते रुद्र शिवा	161
485.	यथेन्द्रो द्यावा	314	513.	या आपो	177
486.	यस्मिन् वृक्षे	315	514.	यास्ते शिवा	309
487.	यत्र ब्रह्म च	317	515.	या मां लक्ष्मीः	330

क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या	क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या
516.	यामृषयो भूत	354	545.	योगे योगे	115,152
517.	याः सेना	278	546.	यो अग्नौ	164
518.	यां मेधां देव	354	547.	यो वै तां	183
519.	यां मेधामृभवो	353	548.	यो अस्य विश्व	203
520.	यां प्रच्युता	50	549.	यो अस्य सर्व	204
521.	युञ्जानः प्रथमं	70	550.	यो वः शिव	212
522.	युक्तेन मनसा	70	551.	यो अस्मभ्यम्	275
523.	युक्त्वाय सविता	71	552.	यो देवेभ्य	299
524.	युञ्जते मन उत	72	553.	यो जागार	379
525.	युजे वां ब्रह्म	73	554.	रायस्कामो	120
526.	युञ्जन्ति ब्रध्नं	75	555.	रुचं नो धेहि	56
527.	युवं भगं	227	556.	रुचं ब्राह्मं	299
528.	यूयं गावो	324	557.	रूपं रूपं प्रति	106
529.	येन द्यौरुग्रा	11	558.	रुक्मप्रस्तरणं	232
530.	ये पुरुषे ब्रह्म	45	559.	ऋतं सत्यं तपो	48
531.	ये त्रिषप्ताः	60	560.	ऋचः सामानि	49
532.	येन कर्माण्यपसो	82	561.	ऋषी बोधा	170
533.	येनेदं भूतं	82	562.	ऋजीत्येनी	220
534.	ये देवानां	89	563.	ऋतेन या वृता	240
535.	येभ्यो माता	89	564.	ऋचां त्वः	242
536.	येऽन्नेषुविविध्यन्ति	163	565.	ऋतावानं	270
537.	येते पाशा	239	566.	ऋतस्य हि	271
538.	ये जनेषु	275	567.	वसुरग्निर्	144
539.	ये रूपाणि	277	568.	वरुणः प्राविता	240
540.	येन देवा	304	569.	वायुरनिलम्	36
541.	यो भूतं च	1	570.	वात आ वातु	220
542.	यो विद्यात्सूत्रं	25	571.	वातस्य नु	221
543.	यो नः पिता	29	572.	वाजस्येमां	253
544.	यो देवेभ्य	54	573.	वाञ्छ मे	318

क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या	क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या
574.	वाचस्पतये	322	601.	शतं तेऽयुतं	263
575.	वायुरनिलम्	335,375	602.	शास इत्था	116,152
576.	विश्वतश्चक्षुः	6	603.	शान्तानि पूर्व	96
577.	विश्वानि देव	8,99	604.	शिवा नः	13,127
578.	विश्वे देवा नो	88	605.	शिवेन वचसा	156
579.	विभक्तारꣳ हवामहे	100	606.	शिला भूमि	208
580.	विदा मघवन्	113	607.	शिवा नारी	229
581.	विष्णोः कर्माणि	123,154	608.	शुची ते चक्रे	226
582.	विश्वा रूपाणि	129	609.	शुक्रोऽसि भ्राजोसि	62
583.	विभ्राजज्योतिषा	136	610.	शं नो मित्रः	19
584.	विधुंदद्राणं	148	611.	शं नो वातः	20,92
585.	विज्यं धनुः	158	612.	शं नः सूर्य	20,93
586.	विद्याश्च वा	177	613.	शं नो मित्रः	91
587.	विश्वस्वं मातरं	207	614.	शं नो अदिति	93
588.	वि न इन्द्र	279	615.	शं नो देवा	94,212
589.	विद्यां चा	334,372	616.	शं नो ग्रहाश्	94
590.	व्युषा आवो	145	616.	शं रुद्राः	95
591.	वेदाहमेतं	5,298	617.	शं नो भगः	95
592.	वेनस्तत्पश्यन्	23	618.	श्रद्धयाग्निः	271
593.	वैश्वानरस्य	193	619.	श्रद्धां प्रातर्हवामहे	272
594.	व्रतेन दीक्षा	268	620.	श्रियं च वा	347
595.	वृषो अग्निः	361	621.	श्रीश्चते लक्ष्मीश्च	300
596.	वृष्णं त्वा	361	622.	षट् त्वा	50
597.	शतमिन्नु शरदो	166	623.	स घा यस्ते	245
598.	शतहस्त समाहर	265	624.	समञ्जन्तु विश्वे	234
599.	शचीव इन्द्र	381	625.	स त्वं नो	236
600.	शर्कराः सिकता	49	626.	सर्व तद्राजा	238

क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या	क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या
627.	सहस्रधार एव	239	655.	सक्तुमिव	254
628.	सम्राज्येधि	228	656.	स इ्भ्दोजो	263
629.	सत्यं बृहदृत	206	657.	स पचामि	267
630.	सप्त ऋषयः	179	658.	सत्येनोत्तभिता	269
631.	सर्वे देवा	176	659.	सप्त मर्यादाः	272
632.	सहस्राणि सहस्रशो	162	660.	सहस्र साकम्	287
633.	सह वामेन	147	661.	सप्तास्यासन्	297
634.	स नो बोधि	144	662.	सायं सायं	285
635.	सप्त त्वा	133	663.	स हि दिवः	31
636.	सविता पश्चातात्	99	664.	सा नो भूमिरा	209
637.	सनः पवस्व	96	665.	सुजातं जातवेदसं	337
638.	स पर्यगाच्छुक्र	28,370	666.	सुमित्रियान	278
639.	स नः पितेव	17	667.	सुजातं सुजातं जात	142
640.	सनो बन्धुर्जनिता	13	668.	सुत्रामाणं	91
641.	सहस्रशीर्षा	5,290	669.	सुषारथिरश्वानिव	83
642.	सम्भूतिं च	373	670.	सुकिं शुकं	229
643.	सप्त युञ्जन्ति	364	671.	सुमङ्गली प्रतरणी	231
644.	समिद्धो अग्न	362	672.	सुमङ्गलीरियं	232
645.	समिध्यमानो	362	673.	सूर्यश्चक्षुर्वातः	177
646.	स नः पृथु	360	674.	सूर्य एकाकी	316
647.	स आगमदिन्द्रो	349	675.	सूयवसाद्	326
648.	सनः सिन्धुमिव	337	676.	सूर्यो मे	171
649.	सवितुस्त्वा	323	677.	सोऽर्यमा स	164
650.	सरस्वती साधयन्ती	311	678.	सोमो वधूयुर	225
651.	स हृदयं	303	679.	सोमꣳ राजानं	281
652.	समानी व	302	680.	सोमं मन्यते	350
653.	समानो मन्त्रः	301	681.	सं सिचो	175
654.	सꣳ शितं मे	253	682.	सं गच्छध्वं	301

क्र. सं.	मन्त्र	पृष्ठ संख्या
683.	सं ते शीर्ष्णः	322
684.	सं सं स्रवन्तु नद्यः	343
685.	सं सं स्रवन्तु पशवः	343
686.	सं नः पुनान	350
687.	स्वस्ति न इन्द्रो	18,85
688.	स्तुता मया	42
689.	स्कम्भे लोकाः	47
690.	स्वयंभूरसि	55
691.	स्वर्यन्तो ना पेक्षन्त	67
692.	स्वस्ति नो	87
693.	स्वस्तये वायु	87
694.	स्वस्ति मित्रा	88
694.	स्वस्ति पन्थां	88
695.	स्योना पृथिवि	95,206
696.	स्वस्ति मात्र	167
697.	स्वयं वाजिंस्तन्वं	173
698.	स्योना भव	231
699.	स्वादिष्ठया	348
700.	हिङ्कृण्वती	325
701.	हिरण्यगर्भः	9
702.	हिरण्मयेन	41,267,373
703.	हिरण्यपाणि	100
704.	हृदा तष्टेषु	256
708.	क्षपो राजन्	275
709.	त्रया देवा	65
710.	त्रातारमिन्द्र	114
711.	त्रिपादूर्ध्व	29,291
712.	त्रीणि पदा	123
713.	त्र्यम्बकं यजामहे	3
714.	त्र्यायुषं जमदग्नेः	62,20

श्रीमती चम्पा देवी वैदिक संस्थान के अन्य प्रकाशन

1. यजुर्वेद अन्तिम अध्याय- ईशावास्योपनिषद्

100 पृष्ठों की भूमिका वाली 550 पृष्ठों की यह पुस्तक अत्यन्त उच्चकोटि की है। इसमें अनेक श्रेष्ठ विद्वानों के भाष्यों का उल्लेख किया गया है तथा वेद मन्त्रों, उपनिषदों, मनुस्मृति, रामायण तथा गीता आदि के श्लोकों की सहायता से मन्त्रों की विस्तृत, सरल एवं रोचक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।

2. यज्ञानुराग

इस पुस्तक की 60 पृष्ठों की भूमिका में यज्ञों के विषय में सभी आवश्यक जानकारियाँ देते हुये यज्ञों के महत्व का विस्तृत उल्लेख किया गया है। तत्पश्चात् प्रार्थना, स्वस्ति वाचन, शान्ति पाठ के मन्त्रों के साथ यज्ञ प्रक्रिया एवं यज्ञ से संबन्धित 250 मन्त्रों का अर्थ सहित समावेश किया गया है। इस पुस्तक की सहायता से प्रत्येक व्यक्ति द्वारा सरलता से विधिपूर्वक यज्ञ सम्पन्न किया जा सकता है।

3. सावित्री अथवा गायत्री महामन्त्र

विस्तृत भूमिका के साथ 450 पृष्ठों की इस पुस्तक में गायत्री मन्त्र से संबन्धित सभी श्रेष्ठ श्लोकों को सम्मिलित करते हुये विभिन्न विद्वानों द्वारा की गयी गायत्री मन्त्र की व्याख्या के साथ, ब्रह्म, ओ३म्, ब्रह्मचर्य एवं उपासना की वेद एवं शास्त्रों के अनुसार विस्तृत व्याख्या एवं गायत्री ब्राह्मण, गायत्री उपनिषद्, गायत्री रामायण तथा गायत्री मञ्जरी का समावेश किया गया है। पुस्तक के प्रारम्भ में प्रार्थना एवं स्तुति के लगभग 40 श्रेष्ठ मन्त्र अर्थ सहित दिये गये हैं।

4. प्रेमामृत

वैदिक धर्म एवं भारतीय संस्कृति की यह श्रेष्ठ पुस्तक प्रत्येक विद्यार्थी एवं प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा अवश्यमेव पठनीय है। इसमें 75 महत्वपूर्ण वेद मन्त्रों के साथ जीवन का मार्गदर्शन कराने वाले लगभग 400 श्रेष्ठतम श्लोक दिये गये हैं, जिनका ज्ञान प्रत्येक पुरुष के लिये अत्यन्त आवश्यक है। हर घर में यह पुस्तक अवश्य रहनी चाहिये।